श्रीमान ।
पंडित मुरली धरे मिश्र
डिप्यूटी इन्सपेक्टर आफ् इस्कूलस्, कानपुर को
भामिनी विलास नामक सुप्रसिद्ध संस्कृत
काव्य का यह देवनागरी
भाषान्तर
महावीर प्रसाद द्विवेदी ने
नम्रता पूर्वक अर्पण किया।

उपर्युक्त अवतरण में 'श्रीमान' का 'न' हलन्त होना चाहिए और उसके बाद पूर्ण विराम नहीं होना चाहिए। 'इन्सपेक्टर आफ इस्कूलस्' की अधोरेखा का प्रयोग व्यर्थ है। 'इस्कूलस्' क्यों ? स्कूल्स होना चाहिए। 'कानपुर' के बाद भी एक अल्प विराम अपेक्षित है। नामक सुप्रसिद्ध के नीचे रेखा क्यों ? देवनागरी' और 'भाषान्तर' के बीच संयोजक-चिन्ह होना चाहिए। 'नम्रता' और 'पूर्वक' की एक ही शिरोरेखा या उनके मध्य संयोजक-चिन्ह की अपेक्षा है। 'अर्पण' के बदले अर्पित होना चाहिए। अन्तिम शब्दों को रेखांकित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। द्विवेदी जी की अनेक रचनाओं में अवच्छेदन-कला की भी कमी मिलती है। 'किरातार्जुनीय' का एक अवच्छेद तो पचीसवें पृष्ठ पर प्रारंभ और अट्ठाइसवें पर समाप्त होता है। 'रघुवंश' में, विशेषकर दूसरे सर्ग में, चार चार पाँच-पाँच श्लोकों का अनुवाद एक ही अवच्छेद में किया गया है। एक अवच्छेद में तो उन्होंने तेरह श्लोकों तक का अर्थ भरने का प्रयास किया है।[1]

उनकी भाषा में मुहावरों की त्रुटियों का भी बाहुल्य है। 'इस प्रकार की प्रशंसा सुवासित तैलके समान सब ओर शीघ्र फैल जाती है। सुवासित पुष्पों की उपमा न देकर सुवासित तैलकी उपमा दी है।' (बे० वि० र० ४८) में 'उपमा'के पहले 'की'के स्थान पर 'से' होना चाहिए। 'विद्योपार्जन में यह दत्तचित्त से लगा रहता था।' (बे० वि० र० ५२) में 'से' अप्रचलित है, प्रचलित है 'होकर'। 'उसने अपना सारा वय सार्वजनिक कार्यों में शतशः भूल करने और तज्जनित पश्चात्ताप पाने में व्यतीत किया।' (बे० वि० र० ४०) इस वाक्य में 'पश्चात्ताप पाने' अशुद्ध प्रयोग है, 'पाने' के स्थान पर 'करने' ही व्यावहारिक है। यदि 'पाने' का प्रयोग 'करने' की पुनरावृत्ति बचाने के लिए किया गया है तो प्रथम 'करने' का बहिष्कार किया जा सकता था। 'जिस समय में' (भा० वि० १६), 'वह फूला अंग न समाया' (बे० सं० १०), 'आपत्ति उत्थापन करते हैं' (बे० वि० र० ४१), 'शंकोत्थान' (बे० वि० र० ६२)

1. 'रघुवंश', द्वितीय सर्ग, श्लोकसंख्या १६ से २८ तक

और 'भीम बेचारे की क्या मजाल जो दुश्शासन के शरीर पर हाथ भी तो लगा सके' (बे० सं० ५५) में प्रयुक्त क्रमशः 'में', 'अङ्ग', 'उत्थापन', 'उत्थान' और 'तो' अनपेक्षित हैं। 'आपत्ति उत्थापन' जैसे प्रयोग तो अंगरेजी के (raise objection) आदि के अनुवाद जान पड़ते हैं। 'अनुभव लेने को' (भा० वि० १६६), 'स्वतः की अनुकूलता' (बे० वि० र० ८५), 'बुद्धि को निरोगता आती है' (बे० वि० र० १०१), 'उनका धिक्कार नहीं करते' (स्वा० भू० १२), 'स्वार्थ लेने वाले' (स्वा० ५), 'राज पाट हार दिया था'[1] (वे० सं० ५), 'पांचाली आज माता गांधारी को नमस्कार करने गई थी' (वे० सं० ११)[2] आदि प्रयोग मुहावरे की दृष्टि से अशुद्ध हैं। उनके स्थान पर क्रमशः 'अनुभव करने को', 'स्वानुकूलता या अपनी अनुकूलता', 'बुद्धि नीरोग रहती है या बुद्धि में नीरोगता आती है', 'उनको धिक्कारते नहीं', 'स्वार्थ चाहने वाले या स्वार्थ-साधन करने वाले', 'राजपाट हार गए थे', 'पाञ्चाली आज माता गान्धारी के पैर छूने गई थी' आदि होने चाहिएं।

द्विवेदी जी की भाषा में, विशेषकर वक्तृतात्मक शैली में, शब्दों, वाक्यांशों और वाक्यों तक की पुनरावृत्ति का अतिरेक है। वक्तृत्वकला की दृष्टि से वे प्रयोग अवश्य समर्थनीय हैं, परन्तु 'कुलक्रमागत चली आई है' (बे. वि. र. १०६), 'क्या जैसे तू भी अभी भाग आया है वैसे ही क्या मैं भी भाग आया हूँ ?' (बे. सं० ५१) आदि में शब्दों की पुनरावृत्ति अव्यावहारिक है। पहले वाक्य में 'आगत' का अर्थ ही है 'आई हुई', दूसरे में 'क्या' और 'भागआया' की आवृत्ति ने वाक्य के सौन्दर्य को एकदम नष्ट कर दिया है।

उनकी आरंभिक रचनाओं में कटुता, अर्थहीनता, जटिलता और शिथिलता की मात्रा भी कम नहीं है। 'ऊंचा उड्डान भरते हैं' (बे. वि. र. ४३)'···उसके ग्रन्थों तथा उसकी इन आख्यायिकों से जो आजपर्यन्त श्रुतिपथ प्रवाहित हो रही हैं···'(भा. वि. ५), 'यह इससे समूह सेंचु चुहाते कमूलों को भी महामान्य' (भा. वि. ४), 'हे कोकिल ! तू अकेला इस बन में कदापि शब्द न कर जिससे तुझे अपना सजातीय समझे ये निर्दई काक तुझे न मारें' (भा. वि. १३), 'तेरे दुष्यकृत्य का उल्लेख भी बस है अर्थात् वैसा स्वमुख से कहना भी मुझे असह्य है।' (भा. वि.५४), 'परन्तु जो मनुष्य अत्यन्त नीच स्वभाव के हैं उनसे इस प्रकार का वर्ताव करना चाहिए, क्योंकि उन्हें यह समझ जाने पर कि हमारे ऊपर संशय

१. वहीं पर उन्होंने 'राजपाट हार गए थे' का शुद्ध प्रयोग किया है।

२. भारतीय सभ्यता के उस युग की पुत्रवधू द्वारा पूजनीय सास को आज की भांति नमस्कार करवाना शोभा नहीं देता। 'वेणी संहार' के मूल लेखक भट्टनारायण ने 'पादवन्दन' शब्द का प्रयोग किया है।

आया है, कि वे कदापि प्रामाणिक व्यवहार नहीं करते।' (बे. वि. र. २६), 'वस्तुतः पंडितराज के विषय में चार अक्षर लिखने का मार्ग रहा ही नहीं यह कहना अयथार्थ है ऐसा नहीं'[1] (भा. वि. भू.) आदि का शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास अत्यन्त भद्दा एवं दूषित है। 'भामिनी-विलास' में पंडिताऊपन के कारण भी उन्होंने खड़ीबोली के विरुद्ध प्रयोग किए हैं। 'उपमा देवे योग्य' (१५), 'सर्व और बरसाय' (२२) 'प्रवेश करती भई' ७०), 'दोनों ओर धावन करती हैं' (७१) 'सेवने योग्य' (११०), 'दो कार्य भए' (११७), आदि पंडिताऊ प्रयोग सत्यनारायण की कथा बांचने वाले पंडितों का अनायास ही स्मरण दिलादेते हैं।

द्विवेदी जी के जिन दोषों की उपर्युक्त अवच्छेदों में समीक्षा की गई है वे और उसी प्रकार के अन्य दोष तत्कालीन अन्य लेखकों की रचनाओं में अपेक्षाकृत कहीं अधिक थे। द्विवेदी जी ने अपनी और दूसरो की भाषा का सुधार किया। उनका सुधार आलोचना और उपदेश तक ही सीमित नहीं रहा। उन्होंने हिन्दी-लेखकों के समक्ष साधुभाषा का आदर्श भी रखा। 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' लिखने पर किसी ने उनपर व्यंग्य किया कि भला आप ही कुछ लिखकर बतलाइए कि हिन्दी-कविता में कालिदास के भाव कैसे प्रकट किए जायँ। तब पद्य में खड़ीबोली का आदर्श उपस्थित करने के लिए उन्होंने 'कुमारसम्भवसार' के नाम से कालिदास-कृत 'कुमारसम्भव' के प्रथम पांच सर्गों का अनुवाद किया।[2] भाषा के अनेक चिन्त्य प्रयोगो के होते हुए भी उसमें भाषण का-सा सहज प्रवाह है।

द्विवेदी जी ने चार प्रकार से भाषा-सुधार करके खड़ीबोली के परिष्कृत और परिमार्जित रूप की प्रतिष्ठा की। उन्होंने दूसरों के दोषों की तीव्र, आलोचना की, सम्पादक-पद से 'सरस्वती' के लेखकों की रचनाओं का संशोधन किया और कराया, अपने पत्रों, सम्भाषणों, भाषणों, भूमिकाओं और सम्पादकीय निवेदनों द्वारा कवियों और लेखकों को उनके दोषों के प्रति सावधान किया और साहित्यकारों के ग्रन्थों की भाषा का भी समय समय पर संशोधन किया।[3]

द्विवेदी जी द्वारा आलोचित लेखन, व्याकरण, रीति और शैली के दोषों की पूर्ण सूची यहाँ देना असम्भव है। 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना' (१९९९ई०) में

---

१. इसप्रकारके दूषित प्रयोग 'भामिनी-विलास, और 'बेकन-विचार-रत्नावली' में भरे पड़े हैं।

२ 'सरस्वती', भाग ४०, सं० २, पृ० २०१।

३. नागरी-प्रचारिणी सभा और दौलतपुर में रक्षित श्यामसुन्दर दास, मैथिली शरण गुप्त, डा० रघुबीर सिंह, निराला आदि के पत्र।

भाषा-दोष पर उन्होंने एक अध्याय ही लिख डाला। पहला प्रहार उसके नाम-विवरण पर ही किया—

"हिन्दी शिक्षावली
तृतीय भाग
जो
पश्चिमोत्तर देश के हिन्दी पाठशालाओं की दफा
प्राइमरी २ के लिए बनाई गई

यह कर्म प्रधान वाक्य है। इसमें बनाई गई क्रिया का कर्म हिन्दी शिक्षावली माना गया है। यह नितान्त अशुद्ध है। यदि हिन्दी शिक्षावली की क्रिया बनाई गई है, तो तृतीय भाग का अन्वय कहां होगा? कहीं हो ही नहीं सकता। संशोधक महाशयों को समझना चाहिए कि हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग यह एक ही सामासिक शब्द है। अलग अलग लिख देने से इसका समासत्व नहीं जा सकता। क्योंकि यहां हिन्दी शिक्षावली का तृतीय भाग इस अर्थ के अतिरिक्त और अर्थ आ ही नहीं सकता। समास के अन्त में जो शब्द आता है उसी के लिंग और वचन के अनुसार कार्य होता है। इस स्थल में भाग शब्द जो समास के अन्त में है वह पुल्लिंग है, अतः क्रिया भी पुल्लिंग अर्थात् बनाया गया होनी चाहिए, बनाई गई नहीं। यदि स्त्रीलिंग क्रिया ही का प्रयोग अभीष्ट था, तो तृतीय भाग को ब्रैकेट के भीतर रखना चाहिए था।"[१]

१६०१ ई० में उन्होंने 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' अत्यन्त ओजपूर्ण शैली में लिखी—

"अनुवादक महोदय ने व्याकरण के नियमों की बहुत कम स्वाधीनता स्वीकार की है। कहीं क्रिया है तो कर्त्ता नहीं और कर्त्ता है तो क्रिया नहीं। कारक चिन्हों की भी अतिशय अवहेलना हुई है। जहां कहीं मूल में समापिका क्रिया है वहां अनुवाद में मनमानी असमापिका और जहाँ असमापिका है वहां समापिका कर दी गई है। कहीं एक के स्थान में दो दो तीन तीन क्रियाएं रक्खी गई हैं और कहीं एक भी नहीं। काल और वचन विचार को भी अनेक स्थलों पर तिलांजलि मिली है। इन महान् दोषों के कारण भाषा पद्योंका ठीक ठीक अन्वय ही नहीं हो सकता। यह दशा प्रायः सारे अनुवाद की है, अतः सबके उदाहरण देना सम्भव नहीं।...

१. 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना', 'भाषा-दोष' अध्याय का आरंभ।

छुटितम नील धार की भाती।
सेवत विमल जोन्ह युतराती ॥
कहुँ गेहन महं चलत फुहारा।
कहुँ मनि ज्योति अनेक प्रकारा ॥
कहुँ चन्दन घसि अंग लगावत।
यहि रितु नर मन ताप नसावत ॥

" अब कहिए कि प्रथम दो पंक्तियों का अर्थ क्या समझें ? 'छुटि' यह जो असमापिका क्रिया है तत्सम्बन्धी समापिका क्रिया कहा है ? फिर इसमे अर्थ क्या निकलता है सो भी बतलाइए। हमारी बुद्धि में तो 'नील धार की भाति तम छुटकर जोन्हयुत विमल रात्रि का सेवन करता है' यही अर्थ भासित होता है। क्या कहना ? अश्रुतपूर्व अर्थ है। अन्धकार चादनी का सेवन करने लगा ! हम प्रार्थनापूर्वक पूछते हैं 'नील धार' क्या पदार्थ है जिसकी उपमा तम से दी गई है। 'सेवत' का कर्त्ता यदि 'नर' मानते हैं तो क्रिया काशी मे और कर्त्ता काश्मीर में, इस प्रकार की दशा होती है और फिर 'छुटि तम नीलधार की भाती' यह चरण विकिर पिंडवत् अलग ही रह जाता है। उसका अन्वय ही नही हो सकता। फुहारे आप ही आप चलते हैं। मणि ज्योतिया भी आप ही आप प्रकाशित होती हैं। परन्तु क्या चन्दन भी आप ही आप घिस जाता है ? यदि 'घसि लगावत' का कर्त्ता 'नर' है तो तीसरी और चौथी पंक्ति मे उस नर का कोई कर्तृत्व नही पाया जाता। 'नर' ने यदि फुहारा और मणि ज्योतियों से कुछ काम ही न लिया तो उनका होना निष्फल हुआ। अनुवादक जी के ईप्सित अर्थ को केवल योगी जन योगदृष्टि ही द्वारा जान सकते हैं, अन्य की गति नहीं जो जान सके।'

द्विवेदी जी ने भाषा-संस्कार ही की नही उसके परिष्कार की ओर भी ध्यान दिया—

''ठंढ' के झुंड को तो देखिए। शीत और शीतल को अर्द्धचन्द्र देकर जहा कहीं आवश्यकता पड़ी है प्राय: 'ठंड' ही का प्रयोग किया गया है। 'चंचु' अथवा 'चोच' शब्द नही आने पाया। आनेपाया है 'टांट'। 'पलाश' और 'किंशुक' का प्रयोग नहीं हुआ, हुआ है 'टेसू' का। 'पाथर ढेरी', 'धनु डोर', 'नेवाड़ी' की मधुरता को तो देखिए। 'कुमारसम्भव भाषा' में अनुवादक जी ने 'वजे जु टुटत सप्तऋषि हाथा'' 'टुटे तार की बीन समाना' लिखा था, इसमें 'टुटी माल बिखरी लटें बमे अगर सनकेस' लिख दिया। 'टूटना' क्रिया से अधिक स्नेह जान पड़ता है। 'अस्त होना' स्यात् कटु था जिससे 'डूबना' लिखा गया। अनुवादक जी अभी तक 'ठंढ' के पीछे पड़े थे, छोड़ते छोड़ते उसे छोड़ा तो उसके स्थान में 'जाड़ा' लिख दिया। ईट न सही पत्थर सही।'[1]

---

१. हिन्दी कालिदास की समालोचना, पृ० ४६।

पुस्तकाकार आलोचानओं के अतिरिक्त अपने भाषा और व्याकरण-सम्बन्धी लेखों एवं पुस्तक- परीक्षा के द्वारा भी उन्होंने भाषा-परिष्कार का प्रयास किया। उनके 'भाषा' और व्याकरण'-शीर्षक[1] दो लेखों ने हिन्दी-साहित्य में हलचल मचा दी। इसी निबन्ध में द्विवेदी जी ने बालमुकन्द गुप्त आदि को लक्ष्य करके उनके भाषा-दोषों पर तीव्र आक्षेप किया—

"ये अरबी फारसी और उर्दू के दास 'सत्य' को 'सत', 'पति', को 'पती' 'अनुभूति' को 'अनुभूती' 'लक्ष्मी' को लक्शमी', 'स्त्री' को 'इस्त्री' 'पांच सौ' को 'पान्सौ', मेषराशि को 'मेख (खूंटा) राशि' और 'सदिच्छा' को 'सदेच्छा' लिखकर अपनी जुबांदानी साबित करते हैं। यहां तक कि अपना नाम लिखने में वे 'नारायण' को 'नरायण' (न), 'प्रसाद' को 'परसाद' और 'गुप्त' को 'गुप्ता' तक कर डालते हैं। खुद तो वे 'नामोनिशान' या नामोनिशां' की जगह अक्सर 'नामनिशान' लिखते हैं, पर यदि कोई 'रद बदल' लिख दे तो उसे 'रद्दोबदल' कराने दौड़ते हैं गोया शब्दों के बनाने और बिगाड़ने के ठेकेदार आज़म यही हैं। उनकी कुटिल नीति ने चाणक्य की नीति को भी मात कर दिया।"[2] 'हिन्दीनवरत्न' आदि की विस्तृत समीक्षा करके उन्होंने हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ लेखकों की भाषा-त्रुटियों को रोकने का उद्योग किया।[3] पुस्तक-परीक्षा-खंड के 'अन्तर्गत केशव राम भट्ट के हिन्दी व्याकरण' में प्रयुक्त 'शास्त्री और वैज्ञानिक विषयों' एवं 'चाहिये'-जैसे प्रयोगों की आलोचना के निम्नांकित उद्धरण उनकी इस भाषासुधार-शैली को और भी स्पष्ट कर देंगे—

"शास्त्री' की जगह 'शास्त्रीय' क्यों नहीं ? यदि शास्त्री ही लिखना था तो 'वैज्ञानिक' की जगह 'विज्ञानी' क्यों नहीं लिखा ?···आप ने ईय प्रत्यय को गुण-अर्थ में लगाया है, और स्वर्गीय, भारतवर्षीय और योरपीय शब्दों का उदाहरण दिया है। हमारी समझ में यह प्रत्यय गुण-अर्थ में नहीं, किन्तु सम्बन्ध अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्वर्गीय का अर्थ है स्वर्ग का, भारतवर्षीय का भारतवर्ष का और योरपीय का योरप का। यही ईय प्रत्यय लगाने से शास्त्र से शास्त्रीय होता है, और शास्त्री की जगह उसका ही होना उचित था।[4]

"आप चाहिये की जगह चाहिए क्यों नहीं लिखते ? स्वर प्रधान है, व्यंजन अप्रधान। जहाँ तक स्वरों से काम निकले तहां तक व्यंजनों की आवश्यकता ? अकेले 'ए' का जैसा

---

१. सरस्वती, १९०५ ई०, पृ० ४२४ और १९०६ ई०, पृ० ६०।
२. सरस्वती, भाग ७ सं० २, पृ० ६६।
३. 'हिन्दी-नवरत्न' समीक्षा सरस्वती, १९१२ ई पृ० ६१ पर प्रारंभ हुई है।
४. 'सरस्वती', भाग ६, संख्या ७, पृ० २८३।

उच्चारण होता है वैसा ही य+ए=ये का होता है। फिर यह द्राविड़ी प्राणायाम क्यों ? यदि कोई यह कहे कि 'इये' का रूप 'इए' करने से संधि हो जायगी तो ठीक नहीं। हिन्दी में इस प्रकार की संधि करने मे बड़ा गड़बड़ होगा। 'आईन' इत्यादि शब्द फिर लिखे ही न जा सकेंगे।"[1]

[श्रीकंठ पाठक एम० ए० के नाम से पंडित सुधाकर द्विवेदी की भाषा को लक्ष्य करके उनकी 'रामकहानी' की आलोचना द्विवेदी जी ने इस प्रकार की—]

"इस पुस्तक की भाषा न हिन्दी है, न उर्दू है, न गंवारी है। वह इन सबकी खिचड़ी है। किसी की मात्रा कम है, किसी की अधिक। गेहूँ, चावल, तिल, उड़द आदि सात धान्य, कोई कम कोई अधिक, सब एक में गड्ड बड्ड कर देने से जैसे सतनजा हो जाता है वैसे ही इस पुस्तक की भाषा भी कई बोलियों की खिचड़ी है।[2]

इस प्रकार द्विवेदी जी समालोचनाओं द्वारा हिन्दी-लेखकों की वर्ण-और-शब्द-गत लेखन त्रुटियो, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, अव्यय, लिंग, वचन, कारक, संधि, समास, प्रत्यक्ष आकांक्षा, योग्यता, सन्निधि, वाच्य, प्रत्यक्ष और परोक्ष भाषण आदि की व्याकरणसम्बन्धी अशुद्धियों, विरामादि चिन्हो, अवच्छेद, मुहावरो, पुनरुक्ति, कटुता, जटिलता, शिथिलता, पंडिताऊपन आदि के दोषो का परिहार करके हिन्दी के अनिश्चित प्रयोगों को निश्चित रूप देने में बहुत कुछ कृतकार्य हुए।

भाषासुधार का ठोस कार्य उन्होंने संपादकरूप मे ही किया। उनके संशोधनकार्य की गुरुता का वास्तविक ज्ञान काशी ना० प्र० सभा के कलाभवन मे रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियो के निरीक्षण से ही हो सकता है। विरामादि चिन्हो के संशोधन की दृष्टि से गणपति जानकी राम दुबे का 'रायगिर अथवा रायटेक' (१९०६ ई०), सूर्य नारायण दीक्षित के 'टिड्डीदल' (०६ ई०), चंद्रहासका 'अद्‌भुत उपाख्यान' (०६ ई०) और 'शेक्सपियर का हैमलेट' (०६ ई०) मिश्रबन्धु का 'जोसफीना' (०६ ई०), बदरीनाथ भट्ट का 'महाकवि मिल्टन' (११ ई०) आदि लेख विशेष दर्शनीय है। इनमें विराम चिन्हों की अत्यन्त अवहेलना की गई है। उपर्युक्त हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर अधोलिखित लेखन त्रुटिया, व्याकरण की अशुद्धियों और रचनादोषों के परिमार्जन का उदाहरण द्विवेदी जी द्वारा किए गए भाषासुधार का दिग्दर्शनमात्र करा सकता है[3]—

१ सरस्वती भाग ६ संख्या ७ पृ० २८४।
२ रामकहानी की समालोचना, 'सरस्वती', १९०१ ई०, पृ० ४५०
३ संशोधनसूची में दी गई सन् ईसवी की संख्या उसी वर्ष की 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियोंका संकेत करती है और पृष्ठसंख्यामूल लेख के पृष्ठ का। ये सभी रचनाएं काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित हैं।

स्वर गत लेखन त्रुटियों का संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
निपत्व	नृपत्व	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	५	१६०६
एकलौता	इकलौता	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतानी	१	"
करेंगे	करेंगे	मिश्र बन्धु	जीवन बीमा	२	"
पढ़ें	पड़ें	"	"	"	"
आगामि	आगामी	"	"	"	"
जावै	जाय	"	"	"	"
करैगा	करेगा	"	"	"	"
जानैं	जानै	"	"	"	"
उन्हैं	उन्हें	"	"	"	"
मिलै	मिलें	"	"	"	"
पड़ैगा	पड़ेगा	वेंकटेशनारायण तिवारी	एक अशर्फीकी आत्मकहानी	"	"
हमैं	हमें	"	"	"	"
चंडाल	चांडाल	"	"	"	"
हुवी	हुई	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	"	"
उन्हैं	उन्हें	कामताप्रसाद गुरू	लैटिनी हिन्दी	"	"
अनौखा	अनोखा	"	"	"	"
तौ	तो	"	"	"	"
चाहिये	चाहिए	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	"	"
दशावों	दशाओं	"		२	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
हुये	हुए	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	२	१९०८
हुवा	हुआ	„	„	३	„
उस्के	उसके	„	„	३	„
इस्में	इसमें	„	„	३	„
प्रतिनिधी	प्रतिनिधि	सत्यदेव	अमरीका की स्त्रियाँ	७	„
आधीनता	अधीनता	गोविन्दवल्लभ पंत	कृषि सुधार	२	„
ऋणि	ऋणी	सत्यदेव	देश०के ध्यान देने योग्य कुछ बातें	५	„
बिचारे	बेचारे	„	अमेरिका में विद्यार्थिजीवन	३	„
संदेशा	सन्देश	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	४	१९०९
पाणिनी	पाणिनि	बाबूराव विष्णु पराड़कर	वररुचि का समय	१	„
मलयागिरी	मलयगिरि	„	„	१	„
अस्थिपिंजर	अस्थिपञ्जर	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है ?	२	„
शालिग्राम	शालग्राम	„	„	१४	„
यकायक	एकाएक	वृन्दावनलाल वर्मा	राखीबन्द भाई	४	„
दलीपसिंह	दिलीपसिंह	„	„	७	„
कीया	किया	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	„
वेह	वह	„	„	१	„
ग्रन्थी	ग्रन्थि	„	„	१	„
कुटलता	कुटिलता	„	„	१	„
कीये हुवे	किये हुए	„	„	१	„
यहि	यही	„	„	१	„

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अश्र धारा	अश्रुधारा	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	१९०६
लीये	लिए	,,	,,	१	,,
समाधो	समाधि	,,	,,	१	,,
मन्दर	मन्दिर	,,	,,	१	,,
भगनी	भगिनी	,,	,,	३	,,
चक्षुवां	चक्षुओं	,,	,,	३	,,
मान्ते	मानते	,,	,,	४	,,
लड़कीयां	लड़कियां	,,	,,	५	,,
प्रक्रया	प्रक्रिया	,,	,,	५	,,
नौज्वान	नौजवान	,,	,,	५	,,
गयी	गई	,,	,,	६	,,
कहानीयाँ	कहानियाँ	,,	,,	७	,,
पैहले	पहले	,,	,,	७	,,
चाहें	चाहिए	,,	,,	७	,,
बलीदान	बलिदान	,,	,,	७	,,
हुवे	हुए	,,	,,	८	,,
द्रष्टी	दृष्टि	,,	,,	९	,,
रीती	रीति	,,	,,	१२	,,
मैंहदी	मेंहदी	,,	,,	१३	,,
वायू	वायु	,,	,,	१४	,,
पत्नि	पत्नी	,,	,,	१५	,,

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
गंधारी	गान्धारी	पूर्णसिंह	कन्यादान	१६	१९०९
नर्क	नरक	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	८	१९११
दखिये	देखिए	"	"	८	"
युवति	युवती	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	६	"
घरणि	घरणी	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	२	"
जरूरी	जरूरी	"	"	२	"
बन्ने	बनने	"	"	५	"
हिन्दु	हिन्दू	गिरजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन शास्त्र	११	"
पायी जाती	पाई जाती	कामताप्रसाद गुरु	हिन्दी का व्याकरण	१०	"
इसलिये	इसलिए	"	"	१०	"
चाहिये	चाहिए	"	"	११	"
पहिले	पहले	"	"	११	"
हृदय	हृदय	रामचरित उपाध्याय	पवनदूत		१९०६
उपर	ऊपर	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग		१९११
उतपक्ति	उत्पत्ति	"	"		"
पशू	पशु	"	"		"
गेरुए	गेरुये	पूर्णसिंह	मजदूरी और प्रेम		"
निमाज	नमाज	"	"		"
खेति	खेती	श्रीमती बंग महिला	नीलगिरि पर्वतके निवासी टोडा लोग		१९०४
लाठि	लाठी	"	"		"
लेकीन	लेकिन	"	"		"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
मैसुर	मैसूर	श्रीमती बंग महिला	नीलिगिरिपर्वत केनिग्रामीटोडालोग		१९०४
मक्ली	सकली	सत्यदेव	राजनीति विज्ञान		१९०६
कर्नें	करने	गोविन्दबल्लभ पंत	कृषि सुधार	५	१९०६
चर्णों	चरणों	पूर्णसिंह	कन्यादान	३	१९०६

व्यंजन-गत लेखन-त्रुटियों का संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
वर्सना	बरसाना	काशीप्रसाद	एफ० एम० ग्राउस	५	१९०६
सर्कारी	सरकारी	,,	,,	५	,,
चार्लस	चार्ल्स	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डीदल	३	,,
झूंठा	झूठा	,,	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	,,
कदाच्चित	कदाचित	मिश्र बन्धु	जीवनबीमा	३	,,
उमर	उम्र	,,	,,	५	,,
वुही	वही	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	२	१९०८
सहाध्याई	सहाध्यायी	,,	,,	८	,,
प्रगट	प्रकट	कामताप्रसाद गुरु	लैटिनी हिन्दी		,,
वर्तमान	वर्तमान	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	१	,,
कर्त्ता है	करता है	,,	,,	१	,,

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सम्
बध	बध	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	१	१९०८
प्रतिबादी	प्रतिवादी	”	”	३	”
बर्ताओ	बर्ताव	सत्यदेव	अमेरिकन स्त्रियाँ	२	”
गाओं	गांवों	”	”	८	”
गवर्नमेन्ट	गवर्नमेंट	”	देश० के ध्यान देने योग्य कुछ बातें	४	”
आकास	आकाश	गिरजाप्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	१	”
जूहीं	ज्योंही	सत्यदेव	अमेरिका में विद्यार्थिजीवन	२	”
चुनाओ	चुनाव	”	”	१०	”
क्यूंकि	क्योंकि	”	राजनीति विज्ञान	७	१९०९
दुनियां	दुनिया	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	१	”
शूली पर	सूली पर	”	”	२	”
ठंडक	ठंढक	”	”	६	”
दुखदायी	दुखदायी	”	”	६	”
पूरन	पूर्ण	”	”	१५	”
नैन	नयन	”	कन्यादान	१	”
स्मशान	श्मशान	वृन्दावनलाल वर्मा	राखीबन्द भाई	३	”
साधारन	साधारण	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	”
बादर	बादल	”	”	२	”
सिंघासन	सिंहासन	”	”	५	”

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
प्रेममै	प्रेममय	पूर्णसिंह	कन्यादान	५	१९०९
साह्मने	सामने	"	"	६	"
जोत	ज्योति	"	"	६	"
झार	झाड़	"	"	७	"
पुरशोत्तम	पुरुषोत्तम	"	"	७	"
निवारनार्थ	निवारणार्थ	"	"	७	"
लोक	लोग	"	"	८	"
दुःखड़े	दुखड़े	"	"	८	"
कुच्छ	कुछ	"	"	१०	"
आशीरवाद	आशीर्वाद	"	"	११	"
शगुण	सगुन	"	"	१२	"
भैन	बहन	"	"	१५	"
प्रस्पर	परस्पर	"	"	१५	"
हां	यहाँ	"	"	१५	"
परबन्ध	प्रबन्ध	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण ।५।	४	१९११
पाओं	पावों	"	"	४	"
बनटन कर	बनठन कर	"	" ।४।	६	"
कोंठड़ी	कोठरी	"	" ।३।	१	"
प्रेखना	प्रेरणा	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	४	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ट	सन् .
तीव्र	तीव्र	विद्यानाथ (का० प्र० गु०)	कवि कर्त्तव्य '		१९११
अन्तर्ध्यान	अन्तर्धान	रामचन्द्र शुक्ल	हुएनसाँग		१९०४
हुएनस्याग	हुएनसांग	"	"		"
संदेशा	संदेसा	पूर्णसिंह	कन्यादान		१९०९
यग्य	यज्ञ	"	"		"
मलियामेट	मटियामेट	"	"		"
दच्छिन	दच्छिण	रामचरित उपाध्याय	पवनदूत		१९०६
सम्रण	स्मरण	पूर्णसिंह	कन्यादान		१९०९
पुरणे	प्राचीन (पुराने)	"	"		"
घन्टी	घंटी	"	मजदूरी और प्रेम		१९११
किमदन्ति	किंवदन्ती	श्रीमती वंग महिला	नीलगिरिपर्वतकेनिवासीटाडालोग		१९०४
आदमशुमारी	मर्दुमशुमारी	"	"		"
स्वच्च	स्वच्छ	"	"		"
ए	ये	मिश्र बन्धु	विज्ञापनों की धूम		१९०३
जठर	जरठ	"	"		"
विभ्राड़	विभ्राट	"	राजधर्म		१९०४
जलजान	जलयान	"	"		"

संज्ञा सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
प्रथम मिलने का स्थान मेला'' तक	प्रथम समागम के स्थान मेले''''तक	प्रमथ नाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	१३	१९०६
फासला पर	फासले पर	सत्यदेव	अमेरिकन स्त्रियाँ	४	१९०८
प्राकृति परिचय ! हीनता	प्रकृति-परिचय-हीनता	बद्रीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	१०	१९११
आज कल की संस्कृत भरी कविता संस्कृत छन्दों में रची जाकर और भी अधिक हानिकारक है।	आजकल की संस्कृत भरी कविता का संस्कृतोपयुक्त छन्दों में रचा जाना और भी हानिकारक है।	विद्यानाथ । का प्र. गु.	कवि कर्तव्य		,,

सर्वनाम सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
यह रेल की सड़क पर है	वह रेल की सड़क पर है	सत्यदेव	अमेरिका के खेतो पर मेरे कुछ दिन	३	१९०८
क्या क्या विषय अध्ययन किये हैं	कौन कौन विषय अध्ययन किये हैं	,,	देश हितैषियों के ध्यान देने योग्य बातें	२	,,
'''इनसे	उनसे	बृन्दावन लाल वर्मा	राखीबन्द भाई	५	१९०९
पाठक,'''तुझे	पाठक,'''आपको	पूर्णसिंह	कन्यादान	४	,,

सर्वनाम-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
मेरा मित्र···टहलने लगे	मेरे मित्र···	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (४)	८	१९०६
कुछ एक ने···	कई एक ने···	"	"	१०	"

विशेष्य-विशेषण-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अपना ताजा मे ताजा दोहे और चौपाई।	अपने ताज़े मे ताज़े दोहे और चौपाई।	पूर्णसिंह	कन्यादान	२	१९०६
इतना सब होने पर	यह सब······	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	७	१९११
उनके अभिमान का चकनाचूर होगया	उनका अभिमान चकनाचूर होगया	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (४)	६	"
यह निश्चय नहीं······	यह निश्चित नहीं	गिरिजा प्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शनशास्त्र	३	"
भाव······उदय होते हैं	भाव···उदित होते हैं	विद्यानाथ	कवि का कर्त्तव्य	५	"

क्रिया-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
न होगई	नहीं हुई	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर में अनेक आत्माएं	१४	१९०६
बढ़ाती चलने लगी	बढ़ाती हुई चलने लगी	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	२	,,
बदला लेवे	बदला ले	मिश्र बन्धु	न्याय और दया	३	१९०८
खड़ा होकर	खड़े होकर	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियां	४	,,
भेज दिई जावें	भेज दी जांय	गोविन्द बल्लभ पंत	कृषि सुधार	४	,,
हाथ पकड़	हाथ पकड़ कर	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	२६	,,
साथ ले	साथ लेकर	,,	,,	२६	,,
समझी जानी लगी है	समझी जाने लगी है	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	४	१९०९
होता आता है	होता आया है	,,	,,	८	,,
विवाह······ठेकेदारी होगई	विवाह···ठेकेदारी होगया	पूर्णसिंह	कन्यादान	८	,,
लड़ीं गा रही हैं	लड़ी गारही हैं	,,	,,	१२	,,
सम्बन्धी और सखियां हो रहे हैं	सम्बन्धी और सखियां···हो रही हैं	,,	,,	१४	,,
जावेंगे	जांयगे	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	२	१०११
अंगरेज़ी बोलनी नहीं आती थी	अंगरेजी बोलना नहीं आता था	,,	,,	३	,,

क्रिया सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
बुलाआ	बुलाया	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	७	१९११
जिस दिन आकाश शुद्ध हो ···चोटियाँ दीख पड़ती	···आकाश साफ रहता है··· चोटियां दीख पड़ती है	,,	,,	१२	,,
दिल में आया चलो आज आपको कष्ट दें	···चलूं आज आपको कष्ट दूं	,,	,,	१४	,,
···शहरको वही सुभीता है ······जो नगर को हो	···शहर को वही सुभीता है जो नगर को होता है	,,	,,	१४	,,
लड़के लड़कियां लगे थे	लड़के लड़कियां·· लगी थी	,,	,, (४)	८	,,
वह ऐसी बाते करे·· आने लगा	वह ऐसी बातें करता था कि ······लगा	,,	,,	५	,,
लोगों को · खड़े पाये	लोगों को····· खड़े पाया	,,	,,	९	,,
जाना पड़ता है···इस प्रयोग की सृष्टि हुई हो।	जान पड़ता है ··सृष्टि हुई है	कामता प्रसाद गुरु	हिन्द का व्याकरण	४	१९०६

अन्वय-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
कभी ……	कभी कभी……	सूर्यनारायण दीक्षित	टट्टू दल	१	१९०६
जब……तो	जब…… तब		„	१	„
वाह भारत,	वाहरे भारत,	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियां	२	१९०८
आपको कष्ट ही होगा	आपको व्यर्थ कष्ट होगा	„	„	१०	„
वहीं पर	वहीं	„	आश्चर्यजनक घंटी	२०	„
वा	या	गिरजा प्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	३	१९०६
अशांति व अधिकार	अशांति और अधिकार	सत्यदेव	राजनीति विज्ञान	७	„
हर एक मनुष्य मात्र	हर एक मनुष्य	पूर्णसिंह	कन्यादान	३	१९०९
यद्यपि…परन्तु	यद्यपि…… तथापि	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (५)	८	१९११
कहते व सुनते	कहते और सुनते	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	४	„

लिंग-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
उनके स्पर्शेन्द्रिय	उनकी स्पर्शेन्द्रिय	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	४	१९०६
पन्ना……सकते है	पन्ना…… सकती हैं	„	„	५	„
के बातचीत	की बातचीत	„	„	७	„

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
जैसी घी पड़ जाती है	जैसे घी पड़ जाता है	लाला पार्वतीनन्दन	एक के दो दो	५	१६०६
के शाखों	की शाखाओं	उदयनरायण वाजपेई-वेंकटेशनरायण तिवारी ।	प्राचीन भारतके विश्वविद्यालय	१	"
के शुद्धि	की शुद्धि	"	"	१	"
तक्षशिला·· वैसी···बनी रहीं	तक्षशिला· वैसाही···बनारहा	"	"	३	"
चलती समय	चलते समय	"	"	३	"
मंजु श्री···विद्याके देवता हैं	मंजु श्री विद्याकी देवता हैं	"	"	५	"
आठवें शताब्दी	आठवीं शताब्दी	"	"	५	"
के ओर	की ओर	मिश्र बन्धु	जीवन बीमा	७	"
शंव···थी	शव···था	वेंकटेशनरायण तिवारी	एक अशर्फीकी आत्मकहानी	१३	१६०६
के बदौलत	की बदौलत	"	"	१४	"
हमारे सन्तान	हमारी सन्तान	काशीप्रसाद जयसवाल	हमारा सम्वत्	२	१६०८
ऐसी समय	ऐसे समय	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	२	"
की सामर्थ्य	का सामर्थ्य	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	२	१६०६
की लालच	का लालच	"	"	३	"
के अवस्था	की अवस्था	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	"
अपनी माता पिता	अपने माता-पिता	"	"	५	"
मीठी सुरों	मीठे सुरों	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	१२	१६११
धूल नहीं उड़ता	धूल नहीं उड़ती	"	"	७	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
चर्चा था	चर्चा थी	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (४)	४	१९११
ऐसी मदान्ध	ऐसे मदान्ध	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	४	"
अहिल्या का पाषाण देह	अहल्या की पाषाण देह	गिरजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन शास्त्र	२	"
का स्नायु	के स्नायु	"	"	१०	"
पूर्वजों के पूजा	पूर्वजों की पूजा	श्री मती बंग महिला	टोड़ा जाति		१९०४
अपनी भाग्य	अपना भाग्य	मिश्रबन्धु	विज्ञापनों की धूम		१९०३
शत्रु के प्रजावों	शत्रु की प्रजा	"	राजधर्म		१९०४
मैं(पंडितानी)कोठरीका कैदीहूँ	···कोठरी की कैदी हूँ	गिरजादत्त बाजपेई	पंडित और पंडितानी		१९०३

वचन सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
बीमाओं	बीमों	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	१	१९०६
बारह रूपया	बारह रूपये	"	"	२	"
वह नहीं सोचते	वे नहीं सोचते	"	न्याय और दया	४	१९०८
जितनी स्त्री समाजें हैं	जितने स्त्री-समाज हैं	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	६	"
यह सब बातें	ये सब बातें	"	आश्चर्यजनक घंटी	१६	"
यह दोनों	ये दोनों	"	"	२१	"
अनेक बाधा	अनेक बाधाएँ	गोविन्द बल्लभ पंत	कृषि-सुधार	१	१९०६
कुछ शब्द सुनाई दिया	कुछ शब्द सुनाई दिये	सत्यदेव	अमेरिकाके खेतोंपरमेरेकुछदिन	१३	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
यह देश भक्त क्या करेंगे	ये देश भक्त क्या करेंगे	सत्यदेव	देश०केध्यान देनेयोग्यकुछबातें	४	१९०८
यह सब लोग	ये सब लोग	,,	आश्चर्यजनक घंटी	२९	,,
यह जितनी एशासिएशन चल रही हैं	ये जितनी एशोसियेशनें चल रही हैं	,,	अमेरिका में विद्यार्थी जीवन	८	,,
कानूनके क्या अर्थ हो सकते हैं	कानूनका क्या अर्थ हो सकता है	,,	राजनीति-विज्ञान	९	१९०९
कन्दरों	कन्दराओं	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	७	,,
लालचयाधमकी ऐसीहैंजिनमें	लालचया धमकीऐसीहैजिससे	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है?	३	,,
योद्धों	योद्धाओं	वृन्दावनलाल वर्मा	राखी बन्द भाई	८	,,
धन्य है वह नैन	धन्य हैं वे नयन	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	,,
वह······है	वे······हैं	,,	,,	३	,,
···कहानियाँ · जिसमें	···कहानियां···जिनमें	,,	,,	७	,,
वह किससे······.	वे किसके······	,,	,,	७	,,
मनों को	मन को	,,	,,	१४	,,
यह मजदूर लोग थे	ये मजदूर लोग थे	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	५	१९११
चोटियां	चोटियाँ	,,	,,	१२	,,
इतना ही रुपया लगा है	इतने ही रुपये लगे हैं	,,	,,	१२	,,
पाठक गणों	पाठक	,,	शिकागो का रविवार		१९०७
यह लोग	ये लोग	श्री बंग महिला	टोड़ा जाति		१९०४
वह बढ़ती	वे···बढ़ातीं	गिरजादत्त बाजपेई	पंडित और पंडितानी		१९०३

कारक सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
शरीर में…रगड़ने लगा	शरीर मे…रगड़ने लगा	प्रमथ नाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	८	१९०६
…भेष में…भूषित कर…	…भेष मे…भूषित कर	”	”		”
जन्म दिन को	जन्मदिन पर	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	२	”
भाग को वर्णन करूंगी	भागका वर्णन करूँगी	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफीकी आत्मकहानी	१८	”
जन्म भर को कालापानी भोगता है	जन्म भरके लिए कालापानी भोगता है	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	१	१९०८
मुझे हंसकर कहा	मुझ मे…कहा	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	२	”
संक्षेप से	संक्षेप में	”	”	१०	”
हमने कह चुके	मैं कह चुका	”	”	१०	”
मेरे मे	मुझमे	”	अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछ दिन	३	”
मुझे बोला	मुझसे बोला	”	”	४	”
इन लोगों के मत से	इन लोगों के मत मे	लक्ष्मीधर बाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	१	”
दो भाग…हमारे वैद्यक में भी है	…वैद्यक के भी हैं	”	”	३	”
शास्त्र के ही भरोसे पर न रहें	शास्त्र ही के भरोसे न रहें	”	”	३	”
परिपक्व दशा में पहुँच गया था	परिपक्व दशाको पहुँच गया था	”	”	१५	”
बजाने को कहा	बजाने के लिए कहा	काशीप्रसाद जायसवाल	महाराजा बनारस का कुआँ	५	”
सुन्दरता को करने वाले	सुन्दरता बढ़ाने वाले	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	शरद्विलास	१	”
भूमि में अधिक जल नहीं है	भूमि पर अधिक जल नहीं है	”	”	२	”

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
हमको	हमें	सत्यदेव	अमेरिका में विद्यार्थी जीवन	६	१६०८
हम लोगोंने सीखनी हैं	हम लोगों को सीखनी है	"	"	११	"
बोलने में स्वतंत्रता	बोलने की स्वतंत्रता	सत्यदेव	राजनीति-विज्ञान	६	१६०६
उसको	उसे	"	"	११	"
तिनका की तरह	तिनके की तरह	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	४	"
किसानों में बाटा जाय	किसानों को बांटा जाय	"	"	१२	"
रनवास को ले गये	रनवास में ले गये	वृन्दाबनलाल वर्मा	राखीबन्द भाई	६	"
धारा को स्मरण करना	धारा का स्मरण करना	पूर्णसिंह	कन्यादान	१	"
अवस्था को अनुभव करता है	अवस्थाका अनुभव करता है	"	"	२	"
माता पिता के घरको छोड़कर	माता पिता का घर छोड़कर	"	"	५	"
सभी जाती को पूजा करने	सभी जाति की पूजा करने	"	"	६	"
कमीनापन के लालचों मे	कमीनेपन के लालचों में	"	"	१०	"
पत्थरों मे खुदी हुई	पत्थरों पर खुदा हुई	"	"	११	"
कन्या के हाँथ कंगना बान्ध देता है	कन्या के हाथ में कंकण बांध देता है	"	"	१२	"
योगी के हाथों को कोई कुच्छ करे	योगी के हाथों पर चाहे··· करे	"	"	१३	"
देखने को आये हैं	देखने आये हैं	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारत में राज्याभिषेक	१	१६११
मैंने दूर जाना है	मुझे दूर जाना है	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	२	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
आपके पसन्द है	आपको पसन्द है	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण (५)	१०	१९११
इस पर तीस लाख	इसमें तीस लाख	,,	,,	१२	,,
जो…बस के नहीं हैं	जो…वश में नहीं हैं	,,	,,	१४	,,
उद्दंडता को सिद्ध किया	उद्दंडता सिद्ध की	,,	,, (४)	३	,,
वेंकोवर में पहुँच कर	वेंकोवर पहुँच कर	,,	,,	८	,,
अनुरोध पर	अनुरोध से	,,	,,	८	,,
जानने के उत्सुक थे	जानने को उत्सुक थे	,,	,,	६	,,
साहस होना परमावश्यक है	साहस का होना परमावश्यक है	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	१	,,
गुणों को होते हुये	गुणों के होते हुए	,,	,,	३	,,
मिथिला से न्याय दर्शन का अध्ययन करके	मिथिला में न्याय दर्शन…	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन शास्त्र	३	,,
सांख्य दर्शन के आधार से न्याय दर्शन बना है	सांख्य दर्शनके आधार पर…	,,	,,	४	,,
उसकी वृत्ति बनाई	उस पर वृत्ति बनाई	,,	,,	५	,,
ज्ञान के साथ में नाम, रूप…	ज्ञान के साथ नाम और रूप	,,	,,	६	,,
चैतन्य प्रभु के मत से जन्म, जन्मान्तर को पाकर	चैतन्य प्रभु के मत में जन्म जन्मान्तर पाकर	,,	,,	१०	,,
स्नायु में आघात होने पर	स्नायु पर आघात होने से	,,	,,	१०	,,
नाटकों को अतिरिक्त	नाटकों को छोड़कर	सत्यदेव	शिकागो का रविवार		१९०७
आधी संख्या हमारे देश की मूर्खा स्त्रियों की है	आधी संख्या हमारे देश में मूर्खा स्त्रियों की है	,,	,,		,,

सन्धि सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
हरेक	हर एक	गोविन्द वल्लभ पंत	कृषि-सुधार	२	१६०८
सुश्रुतादि	सुश्रुत आदि	लक्ष्मीधर बाजपेई	हमारा वैद्यक शास्त्र	१३	„
विद्यऽभ्यास	विद्याभ्यास	सत्यदेव	राजनीति-विज्ञान	६	१६०६
अन्तष्करण	अन्तःकरण	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	२	„
भाग्य उदय हुये	भाग्योदय हुआ	„	„	४	„
परम अवस्था	परमावस्था	„	कन्यादान	२	„
देह अध्यास	देहाध्यास	„	„	१२	„
वर आमदे में	बरामदे में	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण ।५।	११	१६११

समास-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
भारत शासन की बागडोर	भारत के शासन की बागडोर	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्मकहानी	४	१६०६
वायु रोगी	वायु के रोगी	लक्ष्मीधर बाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	४	१६०८
अर्द्धांग वायु मृत	अर्द्धांग वायु मे मृत	„	„	५	„
अविकृत	विकारहीन	„	„	७	„
विद्यार्थी जीवन	विद्यार्थिजीवन	सत्यदेव	अमेरिका में विद्यार्थिजीवन	१	„

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
एकाधिक	एक से अधिक	बाबूराव विष्णु पराड़कर	वररुचि का समय	४	१९०९
कविताद्वारा	कविता द्वारा	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	२	"
नललीन हो गई	नल में लीन हो गई	पूर्णसिंह	कन्यादान	७	"
एकराय हुए	एक मत हुए	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारतमें राज्याभिषेक	४	१९११
सयस्त्री के उपवास	सस्त्रीक उपवास	"	"	४	"
निर्दोषी	निर्दोष	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण ।४।	३	"
कुइच्छाओं	कुत्सित इच्छाओं	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	२	"
निर्वाण का लाभ होता है	निर्वाण लाभ होता है	गिरिजाप्रसाद द्विवेदी	भारतीय दर्शन		"

उपसर्ग-प्रत्यय सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अतीत कीजिए	व्यतीत कीजिए	सूर्यनारायण दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान		१९०६
एकत्रित	एकत्र	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	१	"
उद्देश्य	उद्देश	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियां	७	१९०८
अनपहचाने	बेपहचान	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	१	१९०६
कपाली	कापालिक	"	"	३	"
अजीत हो गया	अजेय······	"	"	१३	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
चैतन्यता	चेतनता	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	६	१९०९
अध्यात्मक	आध्यात्मिक	पूर्णसिंह	कन्यादान	२	"
सौन्दर्यता	सौन्दर्य	"	"	३	"
प्रज्वलत	प्रज्वलित	"	"	११	"
महात्मता	महत्ता	"	"	१४	"
परज्वलित	प्रज्वलित	"	"	१५	"
संमति	सम्मति	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारत में राज्याभिषेक	४	१९११
सुमद्रा रमणी	भद्रारमणी	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण।५।	५	"
पुस्तकों को…… …चैतन्य समझना चाहिए	पुस्तकों को……चेतन…	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	५	"
वाशिंगटन को · विभाग करती है	वाशिंगटन को · विभक्त…	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण।३।	४	"
उतपत्रि	उत्पत्ति	गणेशशंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	२	"
आहुति हो गए	आहुत हो गए	"	"	३	"
पीटर्सवर्गीय घोषणा	पीटर्स वर्ग की घोषणा	मिश्रबन्धु	राजधर्म		१९०४
श्यामवर्णी	श्यामवर्ण	सैंट निहालसिंह	पाताल देश के…हबसी…		१९११

आकांक्षा सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
·· में पैदा हुए···	···मं ये पैदा हुए	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१	१९०६
संकलन कर	इकट्ठा करके	"	"	४	"
इनमें मोहिनी सी	इनमें एक मोहनी शक्ति सी	"	"	६	"
रस भरी	रस से भरी हुई	"	"	६	"
लोग मार कर	लोग उन्हें मार कर	सूर्यनारायन दीक्षित	टिड्डीदल	५	"
घोड़े पर चढ़	वह घोड़े पर चढ़कर	"	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	"
दूसरीको (ऊपर रत्नके प्रति)	दूसरे को	लाला पार्वतानन्दन	एक के दो दो	२	"
वहां न देखी थी	वहां मैंने न देखी थी	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	२	१९०८
कथन सुन	कथन सुनकर	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	५	"
दोनोंमें मानवहृदय पर किसका	मानव हृदयपरदोनोंमेंसे किसका	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	२	१९०९

योग्यता सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अक्षुण्ण यशः शरीर	अच्युत्य यशः शरीर	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१५	१९०६
यद्यपि·· किन्तु	यद्यपि···तथापि	"	"	१५	"

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
शकुन	अपशकुन	सूर्यनारायन दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान	१०	१९०६
वे लोग	ये लोग	मधुमंगल मिश्र	एकही शरीर में अनेक आत्माएँ	२	,,
स्त्री	कुमारिका	,,	,,	१४	,,
चित्र…जागृत हैं	चित्र… विद्यमान है	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	१	,,
प्राणप्यारी	प्रियतमा	वैंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफीकी आत्मकहानी	८	,,
घंटी बहुत प्यारी मालूम हुई	घटी बहुत रसद आई	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घटी	५	१९०८
…घंटी को आगे देखा है	घंटी पहले कमी देखी है	,,	,,	८	,,
कार्योत्पत्ति	कार्य प्रवृत्ति	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	१	१९०९
बिजली की गज और चमत्कार है	बिजली की गरज और चमक है	पूर्णसिंह	कन्यादान	३	,,
कुटोल	कुटिलतापूर्ण	,,	,,	११	,,
खडरात	खंडहरों	,,	,,	,,	,,
विवाह वाली आय कन्या	पतिवरा	,,	,,	१३	,,
मनुष्यातीत परिश्रम	मनुष्यातिगपरिश्रम	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	१	१९११
विचारों में लिप्त बैठा था	विचारों में मग्न	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण ।४।	८	,,

सन्निधि-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
यह द्वन्द निराश हो त्यागना पड़ा	निराश होकर यह विवाद छोड़ना पड़ा	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	३	१६०६
अपने साहब कलेक्टर का	अपने कलेक्टर साहब का	,,	,,	६	,,
टिड्डी कृषि का क्षय करने वाली	कृषि का क्षय करने वाली टिड्डी	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डी दल	१	१६०६
उसकी और भी शोभा बढ़गई	उसकी शोभा और भी बढ़ गई	,,	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	,,
जीवन का बिना अन्त किये	जीवन का अन्त किए बिना	,,	,,	६	,,
एक लकड़ी का टुकड़ा	लकड़ी का एक टुकड़ा	गुरुदेव तिवारी	गुरुत्वाकर्षण शक्ति	२	,,
उतनी ही आकर्षण शक्ति में न्यूनता हो जाती है	आकर्षण शक्ति में उतनी न्यूनता हो जाती है	,,	,,	३	१६०६
भारतके प्राचीनविश्वविद्यालय	प्राचीन भारतकेविश्वविद्यालय	वेंकटेश नारायण तिवारी	प्राचीन भारतके विश्वविद्यालय	१	१६०६
मूल या सिद्धांत था	मूल सिद्धांत यह था	,,	,,	१	,,
बिम्बसार मगध नरेश	मगध-नरेश बिम्बसार	,,	,,	३	,,
तत्काल रुपया कम्पनी को अदा करना पड़े	तत्काल कम्पनी को रुपया अदा करना पड़े	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	२	,,
शरीर ज्ञान यथार्थ	यथार्थ शरीर ज्ञान	लक्ष्मीधर वाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	३	१६०८
हमारे जैसे ही विचार है	हमारे विचार वैसे ही है	,,	,,	१४	१६०८
शास्त्रों की हमारे देश में उन्नति·······	शास्त्रों की उन्नति हमारे देश में···	,,	,,	१६	१६०८

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
चारों ओर इसके	इसके चारों ओर	काशीप्रसाद जायसवाल	महाराजा बनारस का कुवाँ	४	१९०८
किसी पास के गांव में	पास के किसी गांव में	”	”	४	”
पूरा निश्चय अपनी बात का	अपनी बातका पूरा निश्चय	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	२८	”
किसने जगाया	जगाया किसने	”	”	३१	”
लेखक कैसे पैदा हों	लेखक पैदा कैसे हों	”	अमेरिका में विद्यार्थीजीवन	५	”
पैसे सभी	सभी पैसे	”	राजनीति विज्ञान	”	१९०९
हानि समाज की ही है	समाज ही की हानि है	”	”	”	”
...आदि ऐसे ही शब्द हैं	...आदि शब्द ऐसे ही हैं	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	८	”
उनसे चलते समय भेंट कर	चलते समय उनसे भेंट कर	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण ।५।	१	१९११
परिणाम इसका	इसका परिणाम	”	” ।४।	५	”
एक अंग्रेजी में अखबार	अंग्रेजी में एक अखबार	”	”	१०	”
आप एक की मिसाल से	एक आपकी मिसाल से	”	” ।५।	३	”
बहुत से हमारे पाठक	हमारे बहुत से पाठक	”	शिकागो का रविवार		१९०७
हमारा इससमय क्या कर्त्तव्य है	इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है	”	”		”
प्रथम इसके कि	इसके प्रथम कि	रामचन्द्र शुक्ल	ग्यारह वर्ष का समय		१९०३
ग्रामीण सब	सब ग्रामीण	”	”		”

वाच्य-सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
हवादार मकान शहर में बनाये हुये हैं	हवादार मकान शहर में बने हुए हैं	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रिया	७	१६०८
कोई वस्तु चोरी हुई है	कोई चीज चोरी गई है	,,	आश्चर्यजनक घंटी	२०	,,
पूले इस प्रकार खड़े करते थे	पूले इस प्रकार खड़े कियेजाते थे	,,	अमेरिकाके खेतां पर मेरे कुछ दिन	१०	,,
उनको भी काटा गया	वे भी काटे गए	,,	,,	१०	,,
इन विद्यार्थियों को अध्यापक बनाया जावे।	ये विद्यार्थी अध्यापक बनाये जाँय	,,	देश०के ध्यान देने योग्त कुछ बातें	५	,,
यहाँ कुछ चोरी नहीं हुवा	यहाँ कुछ चोरी नहीं गया	,,	आश्चर्यजनक घंटी	३०	,,
इस खेत को अमरीकन बना दिया है	यह खेत अमरीकन बना दिया गया है	,,	अमेरिका में विद्यार्थि-जीवन	७	,,
बातचीत होनी थी	बातचीत होने को थी	,,	,,	६	,,
दुष्टों का मारना देखकर	दुष्टों को मारा जाना देखकर	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है	१४	१६०६
इसे स्नानागार में लाया जाता	वह स्नानागार में लाया जाता	गिरिधर शर्मा	प्राचीन भारत में राज्याभिषेक	५	१६११
उद्दंड बालकों को रखा जाता है	उद्दंड बालक रक्खे जाते हैं	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण। ३।	१३	,,
उन लड़कों को लिया जाता है	वे लड़के लिये जाते हैं	,,	,,	१४	,,

प्रत्यक्ष-परोक्ष-कथन सम्बन्धी संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
राजा साहब समझते थे कि उनका माणिक कीमती था	राजा साहब समझते थ कि हमारा माणिक कीमती है	लाला पार्वतीनन्दन	एक के दो दो	२	१९०६
वहाँ पहुँचे तो देखते क्या हैं कि पांच चार जने शराब के नशे में गुट्ट थे	वहा पहुँचे तो देखते क्या हैं कि चार पांच आदमी नशे में चूर हैं	सत्यदेव	अमेरिका-भ्रमण (४)	८	१९११
उनको समझाया कि यदि उनसे कोई मांगे	उनको समझाया कि तुमसे कोई मांगे	,,	,,	१२	,,

मुहावरों का संशोधन

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
विषय को छुवा···	विषय में हाथ लगाया	काशी प्रसाद	एफ एस. ग्राउस	१३	१९०६
···काम को उठा	·· काम को आरम्भ किया	,,	,,	१३	,,
युक्ति विचारी	युक्ति निकाली	सूर्यनारायण दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान	६	,,
सीधे पड़े	चित लेटे	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ	४	,,
बच्चा आदमी	बालक	,,	,,	४	,,
बोध हुई	जांन पड़ी	,,	,,	५	,,

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
आँखे दिलाई	आँखे खोली	मधुमगल मिश्र	एक ही शरीर मे अनेक आत्माएँ	५	१९०६
नाम का हिज्जे किया	नाम बतलाया	,,	,,	६	,,
वह आश्चर्यित हुआ	उसे आश्चर्य हुआ	,,	,,	८	,,
परिचय जान सकते हैं	परिचय पा सकती हूँ	प्रमथनाथ भट्टाचार्य	राजपूतनी	५	,,
नीच ऊँच लगी हो रहती है	सुख दुख का जोड़ा है	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्म कहानी	१०	,,
पत्र के पढ़ने पर	पत्र पढ़ने पर	,,	,,	१५	,,
आप को क्या काम है	आप क्या चाहते हैं	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटा	६	१९०८
मूर्ति के आगे झुक गया	मूर्ति को प्रणाम किया	,,	,,	८	,,
ठंडी साँस भरी	ठंडी सांस ली	,,	,,	२८	,,
सृष्टि के बीच	सृष्टि में	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है ?	१	१९०९
अपनी आँखों से देखा है	अपनी आँखों देखा है	पूर्णसिंह	कन्यादान	४	,,
प्रियावर	प्रियतमा	,,	,,	७	,,
पुत्री के विवाह को देखने	पुत्री का विवाह देखने	,,	,,	१४	,,
धूल में उड़ गये	धूल में मिल गए	बदरीनाथ भट्ट	महाकवि मिल्टन	६	१९११
मेहनत फल लावेगी	परिश्रम सफल होगा	सत्यदेव	अमेरिका भ्रमण ।५।	३	,,
शराब का दौर लगा रहे हैं	शराब का दौर चल रहा है	,,	,, ।४।	८	,,
उनमें से होकर निकल जाना	उनके बीच से होकर निकल जाना	गणेश शंकर विद्यार्थी	आत्मोत्सर्ग	३	,,

कठिन संस्कृत शब्दों के स्थान पर सरल शब्द

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
कृतविद्य	विद्वान	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१	१६०६
चारु कार्य और शिल्प	कारीगरी	,,	,,	२	,,
आधुनिक	आजकल की	,,	,,	२	,,
एकान्ततः	सिर्फ	,,	,,	२	,,
त्यागना	छोड़ना	,,	,,	३	,,
प्रबन्ध	लेख	,,	,,	३	,,
प्रथम	पहले	,,	,,	५	,,
शीर्ष देश पर	उसके ऊपर	,,	,,	५	,,
निम्न देश	नीचे	,,	,,	८	,,
दक्षिण पार्श्व	दाहिनी तरफ	,,	,,	८	,,
वाम पार्श्व	बाईं तरफ	,,	,,	८	,,
परिणाम	फल	,,	,,	१४	,,
प्रायश्चितार्थ	प्रायश्चित के लिए	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्मकहानी	४	,,
एक मात्र सुत	एक मात्र पुत्र	,,	,,	६	,,
स्वच्छन्दानुरागेण	स्वच्छन्दता पूर्वक	,,	,,	१०	,,
कारणवशात्	कारणवश	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	२	१६०८
बाह्य	बाहरी	लक्ष्मीधर बाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	८	,,
तदंशभूत	उन शक्तियों के अंशभूत		,,	१०	,,

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
सर्वथैव	बिल्कुल ही	लक्ष्मीधर बाजपेयी	हमारा वैद्यक शास्त्र	११	१९०८
अर्वाचीन	नवीन	"	"	१३	"
प्रचारार्थ	प्रचार के लिए	सत्यदेव	देश०के ध्यान देने योग्य बातें	४	"
वैराग्यवान्	विरक्त	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	५	१९०९
द्रव्यगत सौन्दर्य	पार्थिव सौन्दर्य	रामचन्द्र शुक्ल	कविता क्या है ?	७	,,

अरबी-फारसी शब्दों के स्थानापन्न शब्द

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
अंगरेज़ी दां	अंगरेजी जानने वाले	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१३	१९०६
ज्यादः	बहुत	सूर्यनारायण दीक्षित	चन्द्रहास का उपाख्यान	१३	"
गुज़र गया	बीत गया	वेंकटेश नारायण तिवारी	एक अशरफी की आत्मकहानी	६	"
ख्याल	खयाल	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	३	१९०८
आईन	कानून	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	१	"
हुनर की तरक्की	कला-कौशल की उन्नति	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	८	"
क़द दरम्यान है	कद मंझोला है	"	अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछदिन	४	"
फ़रज़	कर्तव्य	"	देश०के ध्यान देने योग्य कुछ बातें	४	"
इस्तमाल	प्रयोग	"	"	४	"
मसाल	उदाहरण	"	राजनीतिक विज्ञान	१०	१९०९
फ़रज़ करो	कल्पना करो	,,	,,	१०	,,

अंग्रेजी शब्दों के स्थानापन्न शब्द

मूल	संशोधित रूप	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
मिस्टर बीम्स	बीम्स साहब	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	३	१९०६
यूनीवर्सिटी	विश्वविद्यालय	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ	१	"
बोस	वसु	माधवराव सप्रे	स्वर्गीय आनन्द मोहन वसु	१	"
डेस्क	मेज	सत्यदेव	आश्चर्यजनक घंटी	१	१९०८
मिस	कुमारी	"	अमेरिका की स्त्रियाँ	४	"
मैगज़िनों	मासिक पुस्तकों	"	"	६	"
टैक्स	कर	"	राजनीति-विज्ञान	९	१९०९
आरटिस्टिक	कौशलमयी	पूर्णसिंह	सच्ची वीरता	९	"

अन्य शब्दों के संशोधन

अब लौं	अब तक	मधुमंगल मिश्र	एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ	३	२९०६
वा	या	"	"	३	"
जब लौं…तब लौं	जब तक…तब तक	"	"	१९	"
सो	इससे	मिश्रबन्धु	न्याय और दया	४	१९०८
आँखें उघाड़ो	आंखें खोलो	सत्यदेव	अमेरिका की स्त्रियाँ	१	"
जब…तो एक जना	जब…तब एक आदमी	"	अमेरिकाके खेतों पर मेरे कुछदिन	१७	"
दिखायी गयी है	दिखाय गया है	"	शिकागो का रविवार		१९०७

परिशिष्ट संख्या ३ में दी हुई संशोधित लेख की प्रतिलिपि उनके संशोधन-कार्य को और भी स्पष्ट कर देगी। स्वयं श्रान्त हो जाने पर वे मैथिलीशरण गुप्त आदि के द्वारा 'सरस्वती'-लेखकों की भ्रष्ट भाषा का सुधार कराते थे। इसकी चर्चा 'सरस्वती–सम्पादन' अध्याय में हो चुकी है।

आचार्य द्विवेदी जी पत्रों और सम्भाषणों में भी भाषा–संस्कार का उद्योग करते थे। एक बार मैथिलीशरण गुप्त की 'क्रोधाष्टक' तुकबन्दी पर क्षुब्ध होकर उन्हें पत्र में लिखा —

"हम लोग सिद्ध कवि नहीं। बहुत परिश्रम और विचारपूर्वक लिखने से ही हमारे पद्य पढ़ने योग्य बन पाते हैं। आप दो बातों में से एक भी नहीं करना चाहते हैं। कुछ लिख कर उसे छपा देना ही आपका उद्देश्य जान पड़ता है। आपने 'क्रोधाष्टक' थोड़े ही समय में लिखा होगा, परन्तु उसे ठीक करने में हमारे चार घंटे लग गये। पहला ही पद्य लीजिये—

होवे तुरन्त उनकी बलहीन काया
जानें न वे तनिक भी अपना पराया
होवें विवेक वर बुद्धि विहीन पापी
रे क्रोध, जो जन करें तुझको कदापि

क्या आप क्रोध को आशीर्वाद दे रहे हैं जो आपने ऐसी क्रियाओं का प्रयोग किया? इसे हम अवश्य 'सरस्वती में छापेंगे परन्तु आगे से आप सरस्वती के लिए लिखना चाहें तो इधर-उधर अपनी कविताएं छापने का विचार छोड़ दीजिए। जिस कविता को हम चाहें उसे छापेंगे। जिसे न चाहें उसे न कहीं दूसरी जगह छपाइए, न किसी को दिखाइए। ताले में बन्द करके रखिए।"[1]

पंडित विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक की तीन-चार कहानियां तथा लेख प्रकाशित करने के बाद एक बार वार्तालाप के सिलसिले में द्विवेदी जी ने उनसे कहा—

'आप 'सरस्वती' ध्यान से नहीं पढ़ते। पढ़ते होते तो 'सरस्वती' की लेखन शैली की ओर आपका ध्यान अवश्य जाता। 'सरस्वती' की अपनी निजी लेखन शैली है। वह मैं आप को बताता हूँ। देखिये लेने के अर्थ में जब लिये शब्द लिखा जाता है तब यकार से लिखा जाता है और जब विभक्ति के रूप में आता है तब एकार से लिखा जाता है। जो

1. 'सरस्वती' भाग ४०, सं० २, पृ० २००

शब्द एक बचन में यकारान्त रहते हैं वे बहुवचन में भी यकारान्त ही रहेंगे। जैसे 'किया-किये', 'गया–गये', परन्तु स्त्री लिंग में 'गयी' न लिखकर ईकार से 'गई' लिखा जाता है। 'कहिए', 'चाहिए', देखिए' इत्यादि में एकार लिखा जाता है। अकारान्त शब्दों का बहुवचन एकारान्त होता हैं। जैसे 'हुआ' का बहुवचन 'हुए'। जहाँ पूरा अनुस्वार बोले वहाँ अनुस्वार लगाया जाता है। जैसे 'संस्कार' और जहां आधा अनुस्वार, जिसे उर्दू में नूनगुन्ना कहते हैं, बोले वहां चन्द्रविन्दु लगाया जाता है—जैसे काँपना। सम्भव है, मेरी इस शैली से आपका मतभेद हो, परन्तु प्रार्थना यह है कि 'सरस्वती' के लिए जब लिखिए तब इन बातों का ध्यान रखिए।"[1]

अपने लेखों और वक्तव्यों में उन्होंने समय-समय पर अपने भाषा सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति की है। 'हिन्दी की वर्तमान अवस्था'[2] में उसकी शब्द-ग्राहकता पर लिखा था—

"आज कल कुछ लेखक तो ऐसी हिन्दी लिखते हैं जिसमें संस्कृत शब्दों की प्रचुरता रहती है। कुछ संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, अरबो सभी भाषाओं के प्रचलित शब्दों का प्रयोग करते हैं। कुछ विदेशीय शब्दों का बिलकुल ही प्रयोग नहीं करते, ढूंढ़–ढूंढ़ कर ठेठ हिन्दी शब्द काम में लाते हैं। मेरी राय में शब्द चाहे जिस भाषा के हों, यदि वे प्रचलित शब्द हैं और सब कहीं बोलचाल में आते हैं तो उन्हें हिन्दी के शब्द-समूह के बाहर समझना भूल है। उनके प्रयोग से हिन्दी की कोई हानि नहीं, प्रत्युत लाभ है। अरबी, फारसी के सैकड़ों शब्द ऐसे हैं जिनको अपढ़ आदमी तक बोलते हैं। उनका बहिष्कार किसी प्रकार सम्भव नहीं।" साहित्य सम्मेलन (कानपुर अधिवेशन) में स्वागताध्यक्ष पद से दिये गए भाषण में भी उन्होंने हिन्दी की इस ग्राहिका-शक्ति का मंडन किया।[3]

अपने उसी भाषण में उन्होंने हिन्दी भाषा और व्याकरण के अनेक विवाद-ग्रस्त विषयों का भी स्पष्टीकरण किया।[4] कारक-विभक्तियों के सम्बन्ध में उनका वक्तव्य था कि जिस शब्द के साथ जिस विभक्ति का योग होता है वह उसी का अंश हो जाती है। यह सत्य है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि विभक्तियों को शब्दों से जोड़ कर लिखा जाय।

---

१. 'सरस्वती' भाग ४०, संख्या २, पृ० १६२।
२. 'सरस्वती' भाग १२, संख्या १०, पृ० ४७३।
३. साहित्य-सम्मेलन के कानपुर-अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष-पद से भाषण, पृ० ४६-५०
४. साहित्य-सम्मेलन के कानपुर-अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष-पद से भाषण, पृ० ५० से ६१

संस्कृत व्याकरण में भी इस नियम का निर्देश नहीं उसमें विभक्तियां पृथक रह ही नहीं सकतीं क्योंकि उनकी सन्धि से शब्दों में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु हिन्दी में ऐसी बात नहीं। विभक्तियों को सटा कर या हटाकर लिखना रूढ़ि, शैली या सुभीते का विषय है, व्याकरण का नहीं। शब्द अलग-अलग होने से पढ़ने में सुभीता होता है, भ्रम की सम्भावना कम रह जाती है। अतः विभक्तियों का अलग लिखना ही अधिक श्रेयस्कर है। व्याकरण का कार्य केवल इतना ही है कि भाषा प्रयोगों की संगति मात्र लगा दे। उसे विधान बनाने का कोई अधिकार नहीं। अपप्रयोग तभी तक माना जा सकता है जब तक भ्रम या अज्ञान के वशवर्ती होकर, कुछ ही जन किसी शब्द, वाक्य, मुहावरे आदि को प्रचलित रीति के प्रतिकूल बोलते या लिखते हैं। अधिक जन-समुदाय, शिष्ट लेखकों या वक्ताओं द्वारा प्रयुक्त होने पर वही साधु प्रयोग हो जाता है। शब्दों का लिंग भी प्रयोग पर ही अवलंबित है। जब संस्कृत में 'दारा' शब्द पुल्लिंग में और अंग्रेजी में देशों के नाम स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होते हैं तब प्रयोगानुसार हिन्दी में 'दही' शब्द भी उभयलिंगी हो सकता है। हिन्दी के कुछ हितैषी चाहते हैं कि क्रियाओं के रूपों में सादृश्य रहे। वे 'गया' का स्त्रीलिंग 'गयी' चाहते हैं, 'गई' नहीं। कुछ लोग 'लिया' और 'दिया' का स्त्रीलिंग 'लिई' और 'दिई' चाहते हैं, 'ली' और 'दी' नही। सरलता के कुछ पक्षपातियों की राय है कि क्रियाओं को लिंग-भेद के झमेले से एकदम ही मुक्त कर दिया जाय। परन्तु वक्ताओं का मुंह और लेखकों की लेखनी वय्याकरण बन्द नहीं कर सकते।

द्विवेदी जी की प्रारंभिक रचनाओं की रीति और शैली[1] भी उनके भाषा प्रयोगों की ही भाँति चिंत्य है। शब्दों की योजना में वे एक ओर तो संस्कृत से और दूसरी ओर अरबी-फारसी-मिश्रित उर्दू से बुरी तरह प्रभावित हैं। कहीं-कहीं तो अनेक भाषाओं के शब्दों की विचित्र खिचड़ी रेल-यात्रा या बाजार के योग्य होते हुए भी साहित्यिक रचनाओं में अत्यन्त असुन्दर जँचती है।

रोमन, वारनिश, नम्बर, लैम्प, बेहिसाब, मरहम, वकील, कैंची, बटन, मोजा, फीता, नमूना आदि शब्द हिन्दी में खप गए हैं और उनका प्रयोग सर्वथा संगत है, परन्तु क्रिश्चियन (वे वि. र. ३), क्राइस्ट (वे. वि. र. १), फुटनोट्स (वे. वि र. भू ७), पैराग्राफ (हि. शि. तृ. भा. स. २८), आदि एवं 'स्वाधीनता' में प्रयुक्त जरूरत (१) शाइस्तगी (२) दारमदार (६) जमात (१४) तहम्मुल (१६), मुस्तसना (२३), खयालात (२७,) मदाखिलत (२६), तकरीर (३४), पेशबन्दी (३५) आदि का प्रयोग हिन्दी के प्रति सरासर अत्याचार है। यह

१. रीति पद-रचना की प्रणाली और शब्द धर्म है।

तो फुटकर शब्दों का उदाहरण हुआ। निम्नांकित अवच्छेद तो उर्दू ही है—

"कागजी रुपये से सम्बन्ध रखने वाले महकमे का काम काज चलाने के लिये एक कानून है। उसका नाम है एक्ट २ जो १६१० ईस्वी में पास हुआ था। उसके पहले भी कानून था। पर १६१० ईस्वी में वह फिर से पास किया गया, क्योंकि पहले के कानून में कुछ रद्दोबदल करना था। इसी कानून की रू से इस महकमे का सारा काम होता है।

....

१६२७ ईस्वी में गवर्नमेंट ने एक और कानून बना कर एक्ट २ में कुछ तरमीम कर दी है।"[1] अपने पत्रों में भी कहीं-कहीं फारसी की छारसी उड़ाने में उन्होंने चमत्कार दिखाया है, यथा 'अदालत आलिया में मुकदमाजेर तजवीज़ था'[2] कुछ शब्दों के समर्थन में यह कहा जा सकता है कि वे हिन्दी समाज में व्यवहृत होते हैं, परन्तु हिन्दी-जनता में प्रचलित तद्भव और द्विवेदी जी द्वारा प्रयुक्त तत्सम रूपों का समुचित निरीक्षण इस भ्रान्ति को दूर कर देगा। हिन्दी ने 'कागज', 'कानून', 'जरूरत', 'जबान', 'कबूल' आदि को अपनाया है, 'काग़ज़', 'क़ानून', 'ज़रूरत', 'ज़बान', या 'क़बूल' आदि को नहीं। द्विवेदी जी को चाहिए था कि उर्दू शब्दों के ग्रहण में गोस्वामी तुलसीदास जी की आदर्श-पद्धति पर अनुगमन करते।[3]

उनकी हिन्दी की पहली किताब की भाषा राजा शिवप्रसाद और वर्तमान रेडियो की हिन्दुस्तानी की अपेक्षा कम उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं है। उसके निम्नांकित नामवाचक विवरण में प्रयुक्त 'सुबह' 'मदरसों', 'दफ़अ,' 'मुआफ़िक', 'रोज़मर्र:' आदि शब्द किसी मुल्ला या मौलवी की वाणी की शोभा निस्सन्देह बढ़ा सकते हैं, परन्तु द्विवेदी जी की नहीं—

"हिन्दी की पहली किताब

---

१. शैली भावाभिव्यंजन की प्रणाली और अर्थ धर्म है।

२. पद्मसिंह शर्मा को पत्र

'सरस्वती', दिसम्बर, १६४० ई०

३. तुलसीदास जी ने भी विदेशी शब्दों को अपनाया है, परन्तु उनकी शुद्धि करके—

सत्य कहहुँ लिखि कागद कोरे।

—रामचरित मानस

या

रावरी पिनाक में सरीकता कहां रही।

—कवितावली

जिसे

सूबह आगरा व अवध के मदरसों की प्रिपैरेटरी गवर्नमेंन्ट रेज़ोल्यूशन

न०·············ता० १६ मई १६०३ ई० के मुआफ़िक, हिन्दुस्तानियों

की रोज़मर्रः की बोली में पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने बनाया।

देवनागरी लिपि में लिखित इस उर्दू पुस्तक में 'अक्षर', 'ईश्वर', 'भोजपत्र', 'विद्या' 'श्रम' और 'समुद्र' को छोड़कर संस्कृत हिन्दी शब्दो का बहिष्कार किया गया है। ये भी वाध्य होकर लिखे गए हैं क्योंकि उदाहरणार्थ 'क्ष', 'त्र', 'द्य', 'श्र' और 'द्र' का प्रयोग करना अनिवार्य था। पुस्तक भर में 'सदा', 'दुःख', 'दंड', 'आकाश', और 'पाठशाला या विद्यालय', 'बार', 'सुन्दर', 'बहुत', 'भारतवर्ष', 'बलवान्', 'हानि', 'लाज', 'क्रोध', 'दया', 'मूर्ख' 'मधुमक्खी', 'बिना', 'विद्या', 'जीवन भर', 'समय', 'शरीर' 'मामा जी नमस्ते' आदि के स्थान पर क्रमशः 'हमेशा', 'तकलीफ', 'सज़ा', 'आसमान', 'तरफ', 'मदरसा', 'दफ़ा', 'खूबसूरत', 'ज़ियादा', 'हिन्दुस्तान', 'ताकतवर', 'नुकसान', 'शरम', 'गुस्सा', 'रहम', 'बेवक़ूफ', या 'कम अक्ल', 'शहद की मक्खी', 'बग़ैर', 'इल्म', 'उमर भर', 'वक़्त', 'बदन', 'मामू साहब सलाम' आदि का ही प्रयोग हुआ है। इस पुस्तक मे अरबी-फारसीपन के लिए द्विवेदी जी उत्तरदायी नहीं हैं। उनकी मूल पुस्तक की भाषा हिन्दी थी, शिक्षा-विभाग के अधिकारियो ने उसका हिन्दीत्व नष्ट कर दिया है। यह बात मुखपृष्ठ पर अन्य पुरुष के प्रयोग से भी सिद्ध हो जाती है। सम्भवतः इसी कारण द्विवेदी जी ने शिक्षा-संस्थाओं के लिए फिर कोई पुस्तक नहीं लिखी।

भाषा की रीति के विषय में उनका निश्चित मत था कि हिन्दी एक जीवित भाषा है। उसे किसी परिमित सीमा के भीतर आबद्ध करने में उसके उपचय की हानि है। दूसरी भाषाओं के शब्दों और भावो को ग्रहण कर लेने की शक्ति रखना ही सजीवता का लक्षण है। सम्पर्क के प्रभाव से हिन्दी ने अरबी, फारसी और तुर्की तक के शब्द ग्रहण कर लिए हैं और अब अँगरेजी तक के शब्द ग्रहण करती जा रही है। इसमें हिन्दी की वृद्धि है, ह्रास नहीं। विदेशी भाव, शब्द और मुहावरे ग्रहण करने में केवल यह देखना चाहिए कि हिन्दी उन्हें पचा सकती है या नहीं, उनका प्रयोग खटकता तो नहीं, वे उसकी प्रकृति के प्रतिकूल तो नहीं, हिन्दी हिन्दी ही बनी है या नहीं। मकान, मालिक, नोट, नम्बर आदि शब्द हिन्दी में खप गए हैं, विदेशी नहीं रहे। हां, खटकने वाले भावो या मुहावरों का प्रयोग करना ठीक नहीं। दृष्टिकोण (Angle of vision) लागू होना (to be applied) नंगी प्रकृति (naked nature) आदि के प्रयोग से हिन्दी की विशेषता को धक्का पहुँचता है।[1]

---

1. साहित्य सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में दिए गए भाषण (पृ० ४६—४८) के आधार पर।

द्विवेदी जी ने इस सिद्धान्त का उचित पालन नहीं किया। इसकी समीक्षा ऊपर हो चुकी है। सम्पादक-पद से 'सरस्वती' को लोक-प्रिय बनाने के लिये वे अन्य लेखकों की संस्कृत-पदावली के स्थान पर उर्दू शब्दों का सन्निवेश कर दिया करते थे, उदाहरणार्थ—[1]

मूल	संशोधित	लेखक	रचना	पृष्ठ	सन्
वास्तु शिल्प	मकान वगैरह बनाने की विद्या	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	१	०६
अभ्यन्तर	दरमियान	,,	,,	४	,,
पुष्ट	मुतमौव्वल	मिश्रबन्धु	जीवन बीमा	२	,,
स्फुट	ज़ाहिर	काशीप्रसाद	एफ० एस० ग्राउस	६	,,
पश्चात्	बाद	,,	,,	७	,,
कदाचित्	शायद	,,	,,	१४	,,
अन्तत:स्वास्थ्य-हीनता	आखीर में तबियत अच्छी न रहने	,,	,,	,,	,,
भूमि	ज़मीन	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डीदल	१	,,
वय:क्रम	उमर	काशीप्रसाद	एफ० एस ग्राउस	१५	,,
कुछ ही क्षण	ज़रा देर	सूर्यनारायण दीक्षित	टिड्डीदल	३	,,
प्रत्येक व्यक्ति	हर आदमी	,,	,,	४	,,
न्याय प्रचलित	कानून जारी था	,,	,,	४	,,

उनके सुधार से अनेक लेखक और पाठक असन्तुष्ट थे। इस कथन की पुष्टि कामता प्रसाद गुरु के निम्नांकित पत्र से हो जाती है—

"अरबी फारसी के कम उपयोग के अनुरोध का सबसे बड़ा कारण यह है कि आप आदर्श लेखक हैं, इसलिये आप भाषा को ऐसा रूप न दें जो या तो पाठकों को न रुचै या हमारी हिन्दी को बीबी बना दे। आप थोड़ा लिखा बहुत समझिए।

---

१. निम्नांकित सूची काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्त-लिखित प्रतियों के आधार पर है। सूची में दी गई पृष्ठ-संख्या हस्तलिखित रचनाओं की है।

आपका[१]

कामताप्रसाद गुरू"

'वेणी-संहार' और 'कुमार-सम्भव' में तो उर्दू शब्दों की योजना और भी गर्हित हुई है—

(क)'······सहदेव—भाई साहब, शर्त यह है कि दुर्योधन आदि हमें पांच गांव दे दें तो हम राज्य पाने का दावा छोड़ दें।'[२]

(ख)'······रानी साहबा। घबराइए। नहीं।'[३]

(ग)'······परन्तु उमा ऐसी उस्ताद निकली कि उसने इन प्रसन्नमुखी पतिव्रताओं के आशीर्वाद फल से भी अधिक फल प्राप्त कर लिया।'[४]

उपर्युक्त उद्धरणों में भीम के लिये 'भाई साहब', द्रौपदी के लिए 'रानी साहबा' और उमा के विशेषण रूप में 'उस्ताद' शब्दों का प्रयोग करके द्विवेदी जी ने शाहंशाह दशरथ और 'बेगम सीता' वाले हिन्दुस्तानी भक्तों के भी कान काट लिए हैं।

'कपटता', 'कुशलता', 'प्रवीणता', 'ब्रह्मा की', 'विष्णु का' आदि के बदले 'कापट्य' (वे. वि. र. १७), 'कौशल्य' (वे. वि. र. ८४), 'प्रावीण्य' (वे वि. र. ११०), 'ब्राह्म' (वे. वि. र. १२३), 'वैष्णव' (वे. सं. १३) आदि प्रयोग उचित नहीं जँचते। 'तरुप्रत्यन्योक्ति' (भा. वि. १८), 'शब्दालंकारान्तर्गत' (भा. वि. २५) 'हिमतु'' (भा. वि. १३४), 'नूतनोत्पन्न मृणाल' (भा. वि. ६५) 'त्वत्तुल्य' (भा. वि. १०६) 'एतद्देशीय' (वे. वि. र भू. ६), 'तद्द्वारा' (वे. वि. र. १५), 'अल्पज्ञजानलवदुर्विदग्ध' (वे. वि. र १२३), 'आसमन्तात्' (भा. वि. २), 'शिरसावंद्य' (भा. वि. १०), 'किं बहुना' (भा. वि. २४), 'यद्यापि' (भा. वि. १०२), 'इतस्ततः' (वे. वि. २६), 'इत्थंभूत' (वे. वि. र. १०५), 'नामनिःशेष' (वे. सं. ६१), आदि में क्रमशः संस्कृत की संधियों, समासों और मुहावरों के प्रति उन्होंने हिन्दी की शुद्धता का तिरस्कार करके, अनुचित पक्षपात किया है। 'अवसर' के अर्थ में 'संधि' (वे. वि. र. ६५) का प्रयोग मराठी प्रभाव का सूचक है। 'ठौर ठौर पै' (भा. वि. प्र. ३) 'दूजिए' (हि. शि. तृ. भा. स. ३७), 'जाव' (सं. शा. २) 'मोरै' (भा. वि. १०), 'हसनि' (भा. वि. ६६), 'द्वारी' (भा. वि.७१) 'पुरषों' (भा. वि. १२०) 'कुछ पै कुछ' (वे. वि. र ८), कठपुतरी' (वे.र. ६७) 'चलन बलन' (वे.वि.र.१०३) 'दीजियो' (कु.सं०.)

१. कामता प्रसाद गुरू का पत्र, 'ईर्षा', कविता के साथ, सरस्वती की १९०८ ई० की हस्तलिखित प्रतियों का बंडल, कला भवन, काशी नागरी प्रचारणी सभा।

२. वेणी-संहार १०१

३ „ २१

४. 'कुमार-संभव', पृ० १२२

'पढ़ियो' (कु. सं.) आदि अवधी और ब्रज के प्रयोगों ने उनकी भाषा को और भी संकर बना दिया है।

उनकी प्रारंभिक रचनाओं की भाव-प्रकाशन-शैली में पंडिताऊपन अधिक है, उदाहरणार्थ—'उपमेय जो साधु और उपमान जो सर्प उनके धर्म में समानता कहने से प्रतिवस्तूपमा अलंकार हुआ।' (भा. वि. ५५), 'मेरे आगमन से अधिक हुआ है सन्तोष जिसको और जागरण से व्यतीत की है सारी रात जिसने ऐसी वह नायिका प्रातःकाल मुखोत्पन्न सुगंध के लोभी मधुपों के जगाने से भी न जगी।' (भा. वि ११०) "मुक्ति का मार्ग दिखाने वाला ऐसा वह विनय सौशील्य सज्जनों को क्यों न प्रिय हो"? (बे. वि. र. ३४), आदि वाक्य आज हास्यास्पद जँचते हैं। कहीं-कहीं वाक्यदीर्घता अर्थप्रकाशन में बाधक हुई है। लेखक को अपनी भावव्यंजना पर स्वयं विश्वास नहीं है, इसी कारण वह पग-पग पर अर्थात् या उसके पर्याय, कोष्ठक, अल्पविराम या समानाधिकरण, निर्देशक-चिन्हों द्वारा कथा-वाचकों की भांति अपने अस्पष्ट अर्थ का स्पष्टीकरण करता है —

"हे मातः! भीतर एक और बाहर एक ऐसे दो प्रकार के स्वरूप युक्त होने ही के कारण मानों जिस तेरे जल में शिर से स्नान करके मनुष्य तत्काल ही पवित्र हरिहरात्मक दो रूपों को धारण करते हैं अर्थात् स्नान करनेके साथ ही हरि (विष्णु), (हर) महादेव रूप हो जाते हैं वह अन्तर में मुक्ता के समान स्वच्छ और बाहर इन्द्रनील मणि के समान कृष्ण तुम्ह करुणावती का जल हमें आनन्ददायक होवे।"[1]

'अर्थात्' की सर्वोपरि धूम 'स्वाधीनता' में है। उसके २६ पृष्ठों के पहले अध्याय में ही 'अर्थात्' और उसके पर्यायों का एक सौ दो बार प्रयोग हुआ है। व्यापक शैली, मूल रचनाओं की भाव-गहनता के कारण अनुवादों में ही है। 'स्वाधीनता' में ही अपनी स्वतंत्र भाव-व्यंजना के समय उनकी भाषा की गति धारावाहिक है।[2]

द्विवेदी जी की आरंभिक कृतियां, निस्सन्देह, निश्चित रीति और शैली से विशिष्ट हैं। 'अमृत लहरी', 'भामिनी-विलास' और 'बेकन विचार-रत्नावली' में आद्योपान्त संस्कृत-पदावली और पंडिताऊ भावाभिव्यंजन है। 'स्वाधीनता'[3] की खिचड़ी और बोलचाल की

---

१. 'अमृत-लहरी' पद ४

२. उदाहरणार्थ, 'स्वाधीनता' की भूमिका, पृ० १३ द्रष्टव्य है।

३. "हमारी राय यह है कि इस समय हिन्दी में जितनी पुस्तकें लिखी जायँ खूब सरल भाषा में लिखी जायँ। यथासम्भव उनमें संस्कृत के अधिक शब्द न आने पावें। क्योंकि जब लोग सीधी सादी भाषा की पुस्तकों ही को नहीं पढ़ते तब वे क्लिष्ट भाषा की पुस्तकों को क्यों छूने लगे, अतएव जो शब्द बोल चाल में आते हैं फिर चाहे

भाषा में टीकाकार का सा प्रधान स्वर है। "हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना" और 'हिन्दी कालिदास की समालोचना' की वक्तृत्व-प्रधान भाषा में अनुशासक समालोचक का भर्त्सनापूर्ण, तीखा और असह्य व्यंग्य है। किन्तु उनकी कोई भी प्रौढ़ गद्य-रचना ऐसी नहीं है जिसमें गोविन्दनारायण मिश्र, श्यामसुन्दर दास या चंडीप्रसाद 'हृदयेश' की भाति आद्योपान्त रीति और शैली की कोई निश्चित विशेषता हो और जिसके आधार पर हम यह साधिकार कह सकें कि यह कृति द्विवेदी जी की ही है।

उनकी भाषा का शब्द-चयन कहीं संस्कृत-बहुल, कहीं फारसी-बहुल और कहीं बोलचाल का है। कहीं मराठी के प्रभाव से परुषा, कहीं बंगला के प्रभाव से कोमला और कहीं अंग्रेजी के प्रभाव से उपनागरिका वृत्तियों का भी समावेश है। प्राक्तन और सामाजिक संस्कारों, प्रारंभिक गृह-शिक्षा और प्रौढ़ स्वाध्ययन ने द्विवेदी जी को स्वभावतः संस्कृत का प्रेमी बना दिया है। आरम्भ में तो उनकी भाषारीति संस्कृत-बहुल और मराठी के प्रभाव से परुष रही ही, भाषा का आदर्श बदल देने के बाद भी वे इस प्रभाव से मुक्त नहीं हुए। परन्तु इन दोनों में महत्वपूर्ण अन्तर है। पहली का क्षेत्र व्यापक है। उनकी प्रत्येक प्रारंभिक कृति, प्रत्येक अवच्छेद संस्कृत और मराठी से प्रभावित है। दूसरी की परिधि सीमित है। अपने कोमल भावों या अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए ही उन्होंने शुद्ध संस्कृत-पदावली का आश्रय लिया है—

"आनन्दवाष्पों से मैं आपके पैर धोता हूँ। मेरी इन उक्तियों में प्रयुक्त वर्णों में यदि कुछ भी माधुर्य हो तो मैं उसी को मधुपर्क मानकर आपको अर्पण करता हूँ। विनीत वचनों ही को फूल समझकर आप पर चढ़ाता हूँ, और नम्रशिरस्क होकर प्रार्थना करता हूँ—

वन्दे भवन्तं भगवन् प्रसीद।

त्रुटियों और न्यूनताओं के होने पर भी, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपके विषय में कानपुर नगर के निवासियों के हृदयों में हार्दिक भक्तिभाव और प्रेम की कमी नहीं, श्रद्धा और समादर की कमी नहीं, सेवा और शुश्रूषणा की कमी नहीं। आशा है,

---

वे फारसी के हों, चाहे अरबी के हों, चाहे अंगरेजी के हों उनका प्रयोग बुरा नहीं कहा जा सकता। पुस्तक लिखने का मतलब सिर्फ यह है कि उसमें जो कुछ लिखा गया है उसे लोग समझ सकें। यदि वह समझ में न आया अथवा क्लिष्टता के कारण उसे किसी ने न पढ़ा तो लेखक की मेहनत ही बरबाद जाती है। पहले लोगों में साहित्य-प्रेम पैदा करना चाहिए। भाषापद्धति पीछे से ठीक होती रहेगी।"

—'स्वाधीनता' की भूमिका
पृ० १०९–१०

आप हमारे आन्तरिक भावों से अनुप्राणित होकर हमारी त्रुटियों पर ध्यान न देंगे, क्योंकि–

भक्त्येव तुष्यन्ति महानुभावाः । [१]

भावनाओं की सुकुमारता के कारण इन संदर्भों में मराठी की परुषता कम हो गई है । बंगला की सी कोमलता का प्रायः सर्वत्र अभाव है । कोमल भावों की व्यंजना में एकाध स्थलों पर उर्दू-पदावली का प्रयोग उपर्युक्त सिद्धान्त का अपवाद है—

"परन्तु मेरी दरख्वास्त नामंजूर हो गयी । काम ऐसे लोगों से पड़ गया जिन्होंने मेरी दलीलों की धज्जियां उड़ा दीं, मेरे बहस मुबाहसे को ज़रा भी दाद न दी, मेरी मिन्नत आरज़ू को धता बता दिया । मैं हार गया और आज यह हार ही का नतीजा है जो मै आपके सामने हाज़िर किया गया हूँ ।"[२]

गम्भीर-विचार-व्यंजना के समय उन्होने संस्कृत-प्रधान भाषा का व्यवहार किया है ।[३] भावावेश में दूसरों पर कठोर आक्षेप करते समय उन्होंने अरबी-फारसी-प्रचुर भाषा का प्रयोग किया है । स्वभाव, संस्कार और शास्त्रीय अध्ययन के कारण बीच-बीच में संस्कृत का पुट भी अनायास ही आ गया है, यथा—

"अगर ऐसा न हो तो बेरहम और ज़बरदस्त जुबादाँ लोग अपनी जुबादानी की खेज़ तलवार से भाषा को अल्प काल ही में बेमौत मार डालें, क्योंकि वाजिदअली शाह के मकतब के मुरीद प्रान्तिक बोलियों और देहाती मुहावरों से अज़हद नफ़रत करते हैं । दुहाई है हकीम महमूद खां देहलवी की, मुद्दत तक देहली में शागिर्दी करके भी आपको नब्ज़ पकड़ना न आया । हुजूर मुझे 'का' की ही बीमारी नहीं 'के' की भी है और 'की' की भी । यह कमबख्त बीमारी संक्रामक मालूम होती है । हकीम साहब, इसे पाप ही की काया ने फैलाया है ।"[४]

द्विवेदी जी की अधिकाश रचनाएँ स्थायी साहित्य की उच्चकोटि में नही आतीं । वे जनसाधारण के ज्ञान-वर्धन के लिए की गई हैं; अतएव भाषा-सांकर्य से व्याप्त हैं । लोकोपयोगी विषयो के प्रतिपादन में संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, अँग्रेजी आदि के प्रचलित शब्दों का उन्होने निस्संकोच भाव मे प्रयोग किया है—

"उत्तरी ध्रुव तक पहुँचने की कोशिश बहुत समय मे हो रही है । पीरी, अमन्दसन,

---

१ साहित्य-सम्मेलन के कानपुर-अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष पद से भाषण, पृ० ४-५

२. द्विवेदी-मेले के समय भाषण, पृ० ६

३. इसका स्पष्टीकरण 'विवेचनात्मक शैली' के अन्तर्गत होगा ।

४. 'सरस्वती' भाग ७, संख्या २, पृ० ६६

नानसन आदि कितने ही यात्री, समय-समय पर उसका पता लगाने के लिये उस तरफ जा चुके हैं। अभी हाल में भी एक साहब ध्रुव पर चढ़ाई करने गए थे। पर सुनते हैं, बीच ही में कहीं वे अटक रहे और बहुत दिन बाद वहां के बर्फ से छुटकारा पाने पर अब वे लौट रहे हैं।"[1]

कहीं-कहीं संस्कृत और अरबी आदि विदेशी शब्दों की एकत्र योजना बड़ी भद्दी जँचती है "संस्कृत के किसी पंडित ने कहा है—

इन्द्रोपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितगुणैः

परन्तु वैयाकरण रामदत्त जी शायद इस क़ौल के क़ायल नहीं। सम्भव है यह वाक्य किसी आचार्य का न हो। इधर पुस्तकारम्भ में भी अपनी तारीफ़ के ज़टल क़ाफ़िये, उधर पुस्तकान्त में भी। जिसके सिर सनक सवार हो जाती है, वही ऐसी बातें लिख सकता है।"[2]

युग-निर्माता द्विवेदी की भाषा में वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, मूर्तिमत्तात्मक, वक्तृतात्मक संलापात्मक, विवेचनात्मक और भावात्मक शैलियाँ बीजरूप में विद्यमान हैं। किसी एक ही शैली का विकसित रूप उनकी किसी भी रचना में आद्योपान्त व्याप्त नहीं है। शैलियों की संकरता से उनका भाषा-सौन्दर्य बढ़ गया है, घटा नहीं है। उपर्युक्त वर्गीकरण के दो आधार हैं। एक तो द्विवेदी जी की प्रत्येक रचना में इनमें से कोई न कोई शैली अपेक्षाकृत अधिक प्रधान है और दूसरे, ये ही विकसित होकर द्विवेदी-युग के सिद्ध लेखकों की विभिन्न गद्य शैलियाँ बन गई हैं।

'सरस्वती' में 'आख्यायिका', 'ऐतिहासिक विषय', 'जीवनचरित', 'देशनगर स्थल, जात्यादि वर्णन', 'फुटकर विषय', 'विचित्र विषय' और 'वैज्ञानिक विषय' खंडों के अन्तर्गत प्रकाशित द्विवेदी जी की अधिकांश रचनाएँ और 'जलचिकित्सा' आदि पुस्तकें वर्णनात्मक शैली के वर्ग में आती हैं। इन रचनाओं में अन्य शैलियों का भी यत्र-तत्र पुट आ गया है, परन्तु गौणरूप से। विषयानुकूल संस्कृत या हिन्दी बोलचाल की पदावली के बीच-बीच में आवश्यकता और सुविधा के अनुसार अरबी, फारसी या अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है। लेखक एक कथा सी कहता हुआ चला जाता है—

"वार्ड साहब कई साल से अपने बगीचे में देख रहे थे कि एक नियत समय पर बहुत

---

१. 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा', लेखांजलि, ० ४८

२. 'विचार- विमर्श', पृ० १८६—सरस्वती, अगस्त १९१३ ई०

सी मक्खियां इतनी अधिक हो जाती हैं कि इनसे बगीचे के प्रायःसभी पेड़-पौधे ढक जाते हैं। वार्ड साहब इनकी बढ़ती पर बड़े चकित हुए। वे अनुसन्धान करने लगे कि एकाएक ये मक्खियां इसी समय यहां कैसे आ पहुँचती हैं और इनकी इतनी अधिक वृद्धि इतनी जल्दी कैसे हो जाती है। बहुत दिनों के बाद वार्ड साहब को इनके विषय में जो बातें मालूम हुईं वे बहुत ही कौतूहल-जनक हैं।"[१] इसी शैली में लक्षणा, व्यंजना या अलंकारिक सौन्दर्य का प्रभाव है। लेखक के मन की स्पष्ट बातें प्रसाद गुणसम्पन्न साधारण भाषा में व्यक्त की गई हैं। 'श्री हर्ष-का कलियुग',[२] 'वैदिक देवता',[३] आदि लेखों में वस्तु की प्राचीनता के कारण संस्कृत शब्दों की बहुलता है। अपंडित पाठकों की निर्बल मानसिक भूमिका के प्रति सावधान लेखक की रचना में अध्यापक का स्पष्ट स्वर स्थान-स्थान पर सुनाई पड़ता है। वे कहीं इतिहास, कहीं भूगोल, कहीं धर्म-शास्त्र, कहीं भाषा-साहित्य-प्रेम, कहीं व्यापक ज्ञान की बातों का पाठ-पढाते हुए दिखलाई देते हैं—

"कुशलपूर्वक ५० वर्ष बीत जाने के उपलक्ष्य में जो उत्सव किया जाता है, उसे अंगरेजी में जुबली कहते हैं। महारानी विक्टोरिया को जब राज्य करते ५० वर्ष हो गए थे, तब इस देश में जुबली का महोत्सव हुआ था। साठ वर्ष बीतने पर उससे भी बढकर उत्सव किया गया था। तार द्वारा खबरें भेजने का काम करने वाली एक कम्पनी विलायत में है। उसका नाम है रूटर्स टेलीग्राम कम्पनी। इसी कम्पनी की बदौलत भारत के दैनिक समाचार पत्र योरप के वर्तमान युद्ध की अधिकाश खबरें प्रकाशित करते हैं।"[४]

हिन्दी-साहित्य के रचनाकारों और हिन्दी-प्रचारिणी संस्थाओं के अधिकारियों की कलुषित कृतियों पर क्षोभ, पारस्परिक वाद-प्रतिवाद और अमर्ष आदि के अवसरों पर द्विवेदी जी की भाषा-शैली व्यंग्यात्मक है। इस श्रेणी की रचनाओं 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना', 'कौटिल्य-कुठार', 'भाषा और व्याकरण', 'भाषा पद्य व्याकरण'—सरीखी पुस्तकों की आलोचनाओं आदि में हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, अरबी तथा फारसी के शब्दों एवं मुहावरों का साधिकार प्रयोग और अभिधा की अपेक्षा लक्षणा तथा व्यंजना द्वारा पग-पग पर आक्षेप हुआ है।

कहीं रचनाकार को सम्बोधित करके उस पर हुल्लडबाजों का सा हास्य-मिश्रित व्यंग्य है —

---

१. 'लेखांजलि', पृ० २४—सरस्वती जून १९२५ ई०
२. 'साहित्य-संदर्भ' पृ० ७ से २६ तक—सरस्वती मार्च, १९२१ ई०
३. 'साहित्य-संदर्भ पृ० ३७ से ५० तक-सरस्वती जून १९२१ ई०
४. 'विचार -विमर्श',-पृ० ४१६—सरस्वती, मार्च, १९१५।

"वहवा । संशोधक महाशय । कृपा करके कहिए बड़े भाई का दुःख पाने पर भी इसका क्या अर्थ है ? बलिहारी इस वाक्य रचना की । 'का' सम्बन्ध का चिन्ह है, परन्तु निकट ही जो 'दुख' शब्द है उसमे उस विचारे को कोई सम्बन्ध नहीं । जब वह उड़कर अनादर शब्द के पहले जा बैठता है, तब मनुस्मृति के अनुवाद का अर्थ समझ पड़ता है । क्या खूब । अजी साहब ! यदि आपने अंगरेजी वाक्य रचना का अनुकरण किया था तो विराम के चिन्ह देकर आपको 'दुख पाने पर भी' इन शब्दो को पृथक कर देना था ।"[1]

कही इस प्रकार के व्यंग्य मे अतिशय तीव्रापन लाने के लिए विशेषणातिरेक और विरोध का सहारा लिया है—

"हा महाराज । आप विद्वान, आप आचार्य, आप प्रधान पंडित, आप विख्यात पंडित और हम अगाध अज्ञ और दुर्जन, क्योंकि हमे आप का व्याकरण तोषप्रद नहीं ।"[2] कहीं श्लेष के आधार पर व्यंजना का चमत्कार है—

"सभा के आज्ञानुसार उसका पत्र ऊपर छप गया । रही, शंका की बात, सो हम बिल्कुल निःशंक हैं । परन्तु लोगों के हृदय में किन किन शंकाओ का उठना सम्भव है यह हम नहीं जान सकते । इसका पता सभा ही कृपापूर्वक लगावे ।"[3]

कहीं व्याजनिन्दा के द्वारा कठोर व्यक्तिगत आक्षेप है । अधिक मानसिक उद्वेग की दशा में संस्कृत भाषा का भी प्रयोग किया गया है—

"अभी तक हम आपको हिन्दी और बंगला का विद्वान, अनेक पुस्तकों का अनुवादक और अनेक सामयिक पत्र और पत्रिकाओं का सम्पादक ही जानते थे, पर अब मालूम हुआ कि आप पुराने लेखकों के बहुत बड़े भक्त उनके लेखों के बहुत बड़े मर्मज्ञ और हिन्दी तथा संस्कृत के बहुत बड़े वैयाकरण भी हैं । आप से हमारा परिचय भी है और आप का हम में थोड़ा सा पूज्य भाव भी । इसी से आपके इन गुणों की खबर सुनकर हमें परमानन्द हुआ । मातृभाषे ! धन्यासि । ईदृशं विद्वद्रत्नं संस्कृत–प्राकृत–शब्द-समास-तद्धित-पारावार-पारगामिनं प्राप्य कृतार्थता याहि ।"[4]

कही अंग्रेजी और फारसी के ध्वन्यात्मक शब्दो और रूपकादि अलंकारों की योजना द्वारा व्यंग्य है—

---

१. 'हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना', पृ० १० ।

२. 'विचार-विमर्श', पृ० १८४—सरस्वती, अगस्त १९११ ।

३. सरस्वती, भाग ४, पृ० ४१७

४. सरस्वती, भाग ७, संख्या २, पृ० ८१

"समालोचना-सरोवर के हंस, हमारे समालोचक महाशय, ने हमारी तुलना एक विशेष प्रकार के जल-पक्षी से की है। इस पक्षी को किनारे के कीचड़ ही में सब मिल जाता है। थैंक यू, जलपक्षियों के परीक्षक और जुबांदानी का कीचड़ उछालने वाले वीर। आपने कभी उस जलचर को भी देखा है जो भूख के मारे अपने हाथ, पैर, सिर और आत्मा तक को अपने शरीर के कोटर में छिपा कर पानी में गोता लगा जाता है।"[1]

और कहीं सीधी-सादी सरल भाषा में अतीव मनोरंजक व्यंग्य है—

"हम नहीं जानते इसमें किस की भूल है। 'लिटरेरी इन्स्टीट्यूट' की, अथवा पं० दीनदयाल तिवारी की, अथवा बाबू सीताराम बी० ए० की? जिसकी हो वह अपनी ले ले। यदि सभी की हो, तो पहचान कर अपनी अपनी परस्पर में सब कोई बांट लें।"[2]

चित्रों के परिचय, स्थल, नगर, जात्यादि वर्णन, प्रभावोत्पादक व्यंग्य-पूर्ण लेखों आदि में मूर्तिमत्तात्मक शैली का सन्निवेश है। वर्णनात्मक शैली से इसके पृथकत्व का कारण इसकी दृश्यानुभावात्मकता है। इसके शब्द नेत्रों के सामने वर्ण्य विषय का एक चित्र सा उपस्थित कर देते हैं। 'चित्र-दर्शन' में संस्कृत-प्रधान या बोलचाल की भाषा का प्रयोग चित्रों की कलात्मकता, उनकी वस्तु की प्राचीनता या नवीनता के अनुसार हुआ है—

"संसार जलमय हो रहा है। ऊपर आकाश और नीचे अगम्य, अथाह, अचिन्त्य तथा अपरिमित जलराशि को छोड़ कर और कुछ नहीं। महाप्रलय हुए बहुत काल बीत चुका। क्षीरसागर में शेषशय्या पर यथेष्ट शयन करके भगवान् जागे हैं। लक्ष्मी जी उनकी पाद-सेवा कर रही हैं। भगवान लेटे लेटे सोच रहे हैं-जगत अपने आदि कारण में बहुत समय तक लीन रहा। अब उसके विकास का अवसर आ गया है। अतः फिर से सृष्टि रचना करनी चाहिए।"[3]

भौगोलिक या ऐतिहासिक वस्तु-वर्णन की भाषा प्रायः हिन्दुस्तानी है—

"दीवाने खास की लम्बाई ६४ फुट और चौड़ाई ३४ फुट है। वह २२ फुट ऊँचा है। उसके सामने एक पेशगाह में तीन मिहराबें हैं। दोनों किनारों में दो दो ताक से हैं। उन पर भी मिहराबें हैं। दक्षिण पूर्व की तरफ शाही महलों में जाने का रास्ता है। उत्तर और दक्षिण की तरफ की मिहराबों के ऊपर जालीदार खिड़कियाँ हैं।"[4] यह मूर्तिमत्तात्मक

---

१. सरस्वती, भाग ७, संख्या-२, पृ० ७७
२. 'हिन्दी-शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना' पृ० १०
३. सरस्वती, भाग १२, संख्या १, पृ० ६३
४. 'लेखांजलि', पृ० ८८, सरस्वती, मार्च १९२३

शैली व्यंग्योक्तियों में व्यक्ति-प्रधान और परिचय वर्णन आदि में विषय-प्रधान हो गई है। मुहावरेदार भाषा में अंकित लाक्षणिक मूर्त्तिमत्ता अधिक मनोहर है—

"लेखक ने पर सवर्ण—संबंधी नियम पर तो पानी फेर दिया है, परन्तु चन्द्र बिन्दु पर अत्यन्त कृपा की है। जिस पृष्ठ पर देखो उसी पर ढेर के ढेर टेढ़े चन्द्रमा अक्षरों की पीठ पर चढ़े हुए देख पड़ते हैं। जिसे इस बिन्दु के विन्यास का इतना ख़याल उसे परसवर्ण को एक दम ही अर्धचन्द्र देते देख आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता।"[1]

पाठक या श्रोता को विशेष रूप से प्रभावित करने के लिए द्विवेदी जी ने वक्तृतात्मक शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने आयासवेशित अलंकारों, शब्दाडम्बर, दीर्घसमस्त पदावली भाषा के अप्रचलित प्रयोगों, अहंभावना, प्रभावावरोह और निर्जीवता से रहित, ओजपूर्ण, सजीव और प्रवाहमयी भाषा में लक्षणा और व्यंजना की अपेक्षा अभिधा से ही अधिक काम लिया है। उन्नत विचारों के प्राभाविक अभिव्यंजन के लिये संस्कृत शब्द-की सहज प्रवृत्ति होते हुए भी उसके प्रति कोई आग्रह नहीं है। कहीं दो संतुलित पदार्थों की योजना प्रतिपक्षिता का चमत्कार है:—

'कहाँ भवभूति की सरस, प्रासादिक और महाआल्हाददायिनी कविता और कहा अनुवादक जी को नीरस, अव्यवस्थित, काव्य लक्षणहीन, दोषदग्ध अनुवाद माला? परस्पर दोनों में सौरस्य-विषयक कोई सादृश्य ही नहीं। कौड़ी-मोहर, आकाश-पाताल और ईख इन्द्रायण का अन्तर है।"[2]

कहीं भाषण या लेख के प्रभाव के बीच सहसा कौतूहलवर्धक वाक्य, तदनन्तर ज्वालामुखी के उद्गार की सी प्रश्नादि की झड़ी, उपधा में समयात्मक वचन और फिर अमोघ दिव्यास्त्र सा अन्तिमप्रभविष्णु वाक्य पाठक या श्रोता के हृदय को बरबस अभिभूत कर देता है—

"सभासे कुछ और पूछना है। वह यह कि समस्त हिन्दी अखबारों और मासिक पुस्तकों का अनादर करके किसने और क्या समझ कर बंगला मासिक पत्र 'प्रवासी' को खोज की रिपोर्ट भेजी? क्या 'प्रवासी' सभा का सभासद है? क्या उसने भवन बनाने के लिये चन्दा दिया है? क्या उसने सभा के लिए कोई लेख लिखे हैं? क्या उसने सभा के लिये कोई किताब लिखकर सभा की आमदनी बढ़ाई है? क्या उसने कोई वैज्ञानिक परिभाषा लिख-

---

१. सरस्वती, भाग १०, संख्या १०, पृ० ४८४।
२. सरस्वती भाग, ३ संख्या २, पृ० ५२

कर सभा को सहायता पहुँचाई है ? अथवा क्या उसने १६०१ ई० की रिपोर्ट की आलोचना, इस वर्ष की सरस्वती की तीसरी संख्या में १६०० ई० की रिपोर्ट की आलोचना से अच्छी की है ? यदि नहीं तो उस पर इस कृपा का कारण क्या ?"[1] कहीं एक ही पदार्थ के अनेक विरोधी विशेषणों और उसके पर्याय शब्दों की रमणीयता है—

"वह कौन सी वस्तु है जो एक होकर भी अनेक है, कुछ न होकर कुछ है, निराकार होकर भी साकार है, ज्ञानवान होकर भी ज्ञानहीन है, दूर होकर भी पास है, सूक्ष्म होकर भी महान् है.........

इस वस्तु का नाम है ब्रह्म, परब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर अथवा परमात्मा।"[2] कहीं शब्द-युग्मों का आकर्षक प्रयोग है—

"हनीबाल और सीजर, मैजिनी और गैरिबाल्डी, प्रिंस बिसमार्क और ग्लैडस्टन, नेल्सन और टोगो, शेक्सपियर और मिल्टन, रणजीतसिंह और प्रताप, कालिदास और भास्कर इसी शास्त्र के अध्ययन के फल थे।"[3] कहीं एक ही बात का विकल्प द्वारा अनेक प्रकार से सविस्तार उपस्थापन और भावों का क्रमशः आरोह है—

"जो मनुष्य अपनी सन्तति के जीवन को यथाशक्ति सार्थक करने की योग्यता नहीं रखते, अथवा जानबूझ कर उस तरफ ध्यान नहीं देते, उनको पिता बनने का अधिकार नहीं, उनको पुत्रोत्पादन करने का अधिकार नहीं, उनको विवाह करने का अधिकार नहीं।"[4] कहीं एक ही निश्चित मत का प्रतिपादन करने के लिये तत्सम्बन्धी अनेक बातों का अर्थ व्यंजक और सुगठित पदावली द्वारा सरपट वर्णन और अन्त में अनेक प्रश्नों के एक ही उत्तर का आवृत्त निरूपण उनकी सफल वक्तृत्व-कला को चरमावस्था पर पहुँचा देता है—

"योरप की हानिकारिणी धार्मिक रूढ़ियों का उत्पादन साहित्य ही ने किया है, जातीय स्वातन्त्र्य के बीज उसी ने बोये हैं, व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य के भावों को भी उसी ने पाला, पोसा और बढ़ाया है, पतित देशों का पुनरुत्थान भी उसी ने किया है। पोप की प्रभुता को किसने कम किया है ? फ्रांस में प्रजा की सत्ता का उत्पादन किसने किया है ? पादाक्रान्त इटली का मस्तक किसने ऊँचा उठाया है ? साहित्य ने, साहित्य ने, साहित्य ने।"[5] कहीं पाठकों को

---

१. सरस्वती, भाग ४, संख्या १२, पृ० ४१६
२. सरस्वती, भाग ७, संख्या ८, पृ० ३२१
३. सरस्वती, भाग १४, पृ० ४३८
४. 'शिक्षा' की भूमिका, पृ० ३
५ साहित्य सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष पद से भाषण, पृ० २१

कुछ सिखाने के लिये,[१] कहीं व्यंग्य-प्रहार करने के लिये,[२] कहीं कथा के बीच-बीचमें कुतूहल-वर्धन[३] और कहीं पाठकों से अभिन्नता स्थापित करने के लिये[४] उन्होंने संलापात्मक शैली का माध्यम स्वीकार किया है।

'शिक्षा', 'स्वाधीनता' और 'सम्पत्ति-शास्त्र' जैसे ग्रन्थों तथा 'नाट्य शास्त्र', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति', 'प्रतिभा' आदि विचारात्मक निबंधों की शैली विवेचनात्मक है। विषय और उसके अंगोंपागों का सम्यक् ज्ञान, विचार, वस्तु-योजना और अभिव्यक्ति में स्पष्टता, शब्द-शक्ति पर असाधारण अधिकार एवं भावित विचारों की क्लिष्टता, गूढ़ता और भ्रामकता से शून्य, अनुकूल, प्रांजल, प्रासादिक और प्रौढ़ भाषा में समंजस व्यक्तीकरण हुआ है। हिन्दी पाठकों के अध्ययन को सीमित और उनकी बुद्धि को अविकसित समझ कर द्विवेदी जी ने कहीं-कहीं, विशेषकर स्वाधीनता में, 'अर्थात्' या उसके-पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया है तथा एक ही बात को अनेक प्रकार से समझाया सा है—

"अपस्मार और विक्षिप्तता मानसिक विकार रोग हैं। उनका संबंध केवल मन और

---

१ "अच्छा, हंस रहते कहां हैं? हंस, बहुत करके इसी देश में रहते हैं। यदि हंस दूध पीते हैं तो दूध उनको मिलता कहाँ से है—यह पीने की बात हुई। अब खाने की बात का विचार कीजिए।

— हंस का नीरक्षीर विवेक'-सरस्वती भाग ७, संख्या ११, पृ० ४३३।

२. पढ़ें क्या हिन्दी में पढ़ने लायक पुस्तकें भी हों। और कालेजों में भी उक्त विषयों की शिक्षा हिन्दी द्वारा कैसे दी जा सकती है? पुस्तकें कहां से आवेंगी? दर्शन शास्त्र, सम्पत्तिशास्त्र और विज्ञान पर हैं भी कोई अच्छी पुस्तकें? नहीं साहब, एक भी नहा। और यदि, आपकी ऐसी ही कृपा बनी रही तो बहुत समय तक होने की सम्भावना भी नहीं।"

सरस्वती, भाग १८ खंड १, संख्या १, पृ० ४०।

३. "हम और सब कहीं की बातें तो बता गए, पर इंगलैंड के समाचार हमने एक भी नहीं सुनाये। भूल हो गई। क्षमा कीजिए। खैर तब न सही अब सही। सूद में अब हम भारतवर्ष का भी कुछ हाल सुना देंगे। सुनिये"

'लेखांजलि' पृ० ११४—

सरस्वती, मार्च १९२४ ई०।

४. "यदि यह पुस्तक हमें उस समय पढ़ने को मिलती जिस समय हम विद्यार्थी थे, या उसके बाद जब हमने पहले ही पहल सांसारिक व्यवहारों का जाल अपने गले में डाला था, तो हम अनेक दुस्सह व्याधियों से बच जाते। पाठक, विश्वास कीजिए, हम आपसे सर्वथा सच कह रहे हैं। इसमें कुछ भी मिथ्या नहीं।"

'शिक्षा' की भूमिका, पृ० ५।

मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। प्रतिभा में मनोविकार बहुत ही प्रबल हो उठते हैं, विक्षिप्तता में भी यही दशा होती है। जैसे विक्षिप्तों की समझ असाधारण होती है अर्थात् साधारण लोगों की सी नहीं होती, एक विलक्षण ही प्रकार की होती है, वैसे ही प्रतिभावानो की भी समझ असाधारण होती है।"[1]

संसार की सृष्टि करते समय परमेश्वर को मानव-हृदय में एक उपदेष्टा के निवासी की योजना करनी पड़ी थी। उसका नाम है विवेक। इस विवेक ही के अनुरोध से मानव जाति पाप से धर-पकड़ करती हुई आज इस उन्नत अवस्था को प्राप्त हुई है। इसी विवेक की प्रेरणा से मनुष्य, अपनी आदिम अवस्था में, हमारी सहायता से पापियो और अपराधियों का शासन करते थे। शासन का प्रथम आविष्कृत अस्त्र, दंड, हमी थे। परन्तु कालचक्र से हम अब नाना प्रकार के उपयोगी आकारों में परिणत हो गये हैं। हमारी प्रयोग प्रणाली में भी अब बहुत कुछ उन्नति, सुधार और रूपान्तर हो गया है।"[2]

इष्ट-मित्रों की मृत्यु पर शोकोद्गार, मर्मस्पर्शी परिस्थितियों मे आत्मनिवेदन, 'दमयन्ती का चन्द्रोपालम्भ' आदि में हृदय की मार्मिक अनुभूतियों के अभिव्यंजन की शैली भावात्मक है। इस प्रकार की रचनाओं में कटुता, जटिलता, शिथिलता, पुनरुक्ति, अनौचित्य, ग्राम्यता, आडंबर-प्रदर्शन, असंबद्धता आदि दोषों से हीन प्रसन्न, गंभीर, मधुर, कोमल और कान्त-पदावली में हृदय का सजीव चित्र अंकित किया गया है। स्थलविशेष पर अलंकारों की योजना भावों के अंग रूप मे ही हुई हैं—

"सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह, रूपवती भिखारिणि की तरह कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। अपनी मा को निःसहाय, निरुपाय और निर्धन दशा में छोड़कर जो मनुष्य दूसरे की मा की सेवा शुश्रूषा में रत होता है उस अधम की कृतघ्नता का क्या प्रायश्चित होना चाहिए, इसका निर्णय कोई मनु, याज्ञवल्क्य या आपस्तम्ब ही कर सकता है।"[1]

यह स्पष्ट हो गया कि द्विवेदी जी की रचनाओं में किसी व्यापक और निश्चित रीति या शैली का अभाव है। तो फिर उनकी रचनाओं में उनका व्यक्तित्व कहाँ है? सच पूछिये

---

१ 'प्रतिभा' सरस्वती, भाग ३, संख्या १ पृ० २६३।

२. 'लेखांजलि' 'दंडदेव का आत्म निवेदन', पृ० १८४।

३. कानपुर अधिवेशन हिन्दी साहित्य सम्मेलन में स्वागताध्यक्ष पद से भाषण, पृ० ११ और २३।

तो किसी निश्चित रीति या शैली का न होना ही उनकी भाषा की विशिष्टता है। उनकी शैली की वास्तविक विशेषता उनकी अमायिकता, उत्साह और पूजा-भाव में है। ये नखशिख ईमानदार हैं। उन्होंने मूल वस्तु का निःसंकोच स्वीकार और अपनी संवेदना की सच्ची अभिव्यक्ति की है। वे सर्वत्र ही अपने प्रशस्त पथ पर संसार के समस्त आक्रमणों को ठेलते हुये अदम्य वीर भाव से निश्चल खड़े हैं। जहाँ कहीं से भी जो कुछ भी मिला है, आत्म-विस्मृत पुजारी की भाँति भक्ति-भाव से हिन्दी-मंदिर मे चढ़ा दिया है।

रीति और शैली की दृष्टि से भी द्विवेदी जी ने दूसरों की भाषा का सुधार किया। काशीप्रसाद, सूर्यनारायण दीक्षित, वेंकटेश नारायण तिवारी, लक्ष्मीधर वाजपेयी आदि की भाषा मे संस्कृत शब्दों की बहुलता थी, 'सरस्वती'-सम्पादक द्विवेदी ने उनके कठिन संस्कृत शब्दों के स्थान पर उर्दू या बोलचाल की पदावली की योजना की। सत्यदेव आदि की भाषा उर्दू और अँग्रेजी से प्रभावित थी। मधु मंगल मिश्र आदि की भाषा बोलियों के प्रयोग मे रंजित थी। पूर्णसिंह आदि की भाषा मे पंजाबी, पाडुरंग खानखोजे आदि की भाषा मे बंगला का पुट था। उनकी विरामादि चिन्हों से हीन और संकर भाषा प्रायः शिथिलता, जटिलता, अयोग्यता आदि दोषों से व्याप्त थी। संशोधक द्विवेदी ने उसका संस्कार और परिष्कार करके उसे सजीवता, प्रसन्नता और समर्थता प्रदान की।[1]

---

१. नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन में रक्षित 'एफ. एस. ग्राउस' (१६०६ ई०) 'टिड्डी दल' (१६०६ ई०), 'एक अशरफी की आत्मकहानी' (१६०६ ई०), 'हमारा वैद्यक शास्त्र' (१६०८ ई०), 'अमेरिका की स्त्रियाँ' (१६०८ ई०), 'देश हितैषियों के ध्यान देने योग्य कुछ बातें' (१६०८ ई०), 'एक ही शरीर में अनेक आत्माएँ' (१६०६ ई०), 'कन्यादान' (१६०९ ई०), लिखने के साधन' (१६११ ई०), 'नीलगिरि के निवासी टोडा लोग' (१६०४ ई०) आदि संशोधित रचनाएँ विशेष दर्शनीय हैं।

नवाँ अध्याय

युग और व्यक्तित्व

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के छः स्थूल विभाग किए जा सकते हैं:—

१. प्रस्तावना-युग – सं० १९०० से १९२४ तक।
२. भारतेन्दु-युग—सं० १९२५ से १९४२ तक।
३. अराजकता-युग—सं० १९४३ से १९५९ तक।
४. द्विवेदी-युग—सं० १९६० से १९८२ तक।
५. वाद-युग—सं० १९८३ से १९९९ तक।
६. वर्तमान-युग—सं० २००० से .... ।

यद्यपि खड़ी बोली का आविर्भाव रीतिकाल मे हुआ था और उसके साहित्य की स्थायी परम्परा सम्वत् १९२५ के बाद से चली तथापि आधुनिक काल का प्रारम्भ सम्वत् १९०० से ही मान्य है क्योंकि रीतिकालीन विशेषताओं, रीतिग्रन्थरचना, घोर शृंगारिकता, अनुप्रासादि अलंकारों की बरबस भरमार ब्रजभाषा का एकाधिपत्य, गद्य साहित्य की उपेक्षा आदि के प्राधान्य की सीमा वहीं है। विक्रम की बीसवीं शती के प्रथम चरण मे महत्त्वपूर्ण साहित्य-सृष्टि नहीं हुई। लेखकों की बहुत कुछ शक्ति माध्यम-निर्माण में ही लगी रही। लल्लूलाल से लेकर राजा लक्ष्मणसिंह तक भाषा के अनेक प्रस्ताव कार्यरूप से उपस्थित किए गए। इसीलिए वह प्रस्तावना-युग था।

सम्वत् १९२५ से एक नवीन युग का आरम्भ हुआ। 'कवि-वचन-सुधा' सम्पादक के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पदार्पण आधुनिक हिन्दी-साहित्य के उत्थान का एक निश्चित सोपान है। उस युग ने रीतिकाल के अभावो की पूर्ति करने का प्रयास किया है। शृंगार और वीर के प्रचलित आलम्बनों से आगे बढ़कर उसने देश, समाज, भाषा, साहित्य आदि विषयों पर भी पर्याप्त रचनाएँ कीं। कथात्मक और वस्तु वर्णनात्मक प्रबन्धों के स्थान पर पद्यात्मक निबन्धों की परम्परा का सूत्रपात किया। पूर्ववर्ती काल में उद्दीपन रूप में

चित्रित प्रकृति का आलम्बन रूप में भी बिम्बग्रहण कराया। गद्य भाषा खड़ी बोली का उत्थान किया। पद्य में भी खड़ी बोली का प्रयोग किया किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। नवीन प्रकार की रचनाओं-नाटक, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदिके द्वारा हिन्दी में वस्तुतः युगान्तर उपस्थित किया। पत्र-पत्रिकाओं सभा-समाजों, नाटक-मंडलियों आदि की स्थापना करके हिन्दी के विकासको प्रेरणा दी। रीतिकालीन मानसिक दासता से ऊपर उठकर स्वच्छन्दता और सजीवता की राधा-प्रवाह भाव-व्यंजना की। फिर भी भारतेन्दु-युग में अनेक बातों की कमी बनी रही। वह रीति-कालीन शृङ्गारिक भावनाओं से अपना पिंड न छुड़ा सका। उपन्यास और कहानी का बीजवपन भर हुआ, विकास नहीं। विविध विषयक साहित्य नगण्य ही रहा। वह गद्य-भाषा खड़ी बोली में सभी प्रकार से भावाभिव्यंजन की क्षमता या प्रौढ़ता न ला सका और न तो काव्य भाषा के रूप में ही उसकी प्रतिष्ठा हो सकी।

५ जनवरी, सन् १८८५ ई० को भारतेन्दु का देहान्त हो गया। सेनापति के अभाव में सारी सेना तितर-बितर हो गई। श्रीधर पाठक ने काव्य के रूप, भाषा छन्द, अभिव्यंजना शैली, प्रकृति-वर्णन आदि में स्वच्छंदता का प्रवर्तन करके और अयोध्याप्रसाद खत्री ने अपने 'खड़ीबोली आन्दोलन' (सं० १९४५) द्वारा पूर्ववर्ती युग से भिन्न एक नवीन युग का सन्देश दिया। वह युग किसी भी निश्चित लक्ष्य की सिद्ध न कर सका। उच्चकोटि की रचनाएँ भी नहीं हुई। श्रीधर पाठक, बदरीनारायण चौधरी, किशोरीलाल गोस्वामी, बाल मुकुन्द गुप्त, महावीर प्रसाद द्विवेदी, देवकीनन्दन खत्री आदि साहित्यकार अपनी अपनी धुन में मस्त रहे। नाटक और उपन्यास के क्षेत्र में निकृष्ट अनुवादों एवं तिलस्मी तथा ऐय्यारी की रचनाओं की धूम रही। पत्रपत्रिकाएँ भी पथभ्रष्ट थीं। कोई किसी की सुनने वाला न था। सभी वक्ता, गुरु या नेता बने थे, श्रोता, शिष्य या अनुगामी कोई नहीं था। अतएव वह अराजकता-युग था।

वह अराजकता सं० १९५९ तक ही रही। 'नागरी प्रचारणी पत्रिका' और 'सरस्वती' हिन्दी साहित्य की उच्छृंखल गतिविधि को नियमित करने की ओर अग्रसर हुई थीं। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की संस्कारजन्य संस्कृतभक्ति ने पाठक जी आदि के स्वच्छन्दवाद को रोक दिया। सं० १९६० में वे 'सरस्वती' के सम्पादक हुए। उन्होंने एक प्रभविष्णु और सफल सेनापति की भांति हिन्दी के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली! यहीं से अराजकता-युग का अन्त और द्विवेदी-युग का प्रारम्भ हुआ। उन्होंने एक ओर अपनी तीव्र आलोचनाओं द्वारा हिन्दी-कानन के झाड़-झंखाड़ को काटना और दूसरी ओर 'होनहार बिरवान' जँचने वाले कवियों तथा लेखकों को अपने प्रोत्साहन एवं सहायता द्वारा

आगे बढ़ाना आरम्भ किया। द्विवेदी-युग का पूर्वार्द्ध लेखकों के निर्माण और भाषा के संस्कार तथा परिष्कार में ही लगा रहा। उस युग में भी अराजकता-युग की सी त्रुटिपूर्ण और स्वच्छन्द रचनाएँ हुई परन्तु अधिकाश का कारण उच्छृंखलता न होकर अज्ञान या अपज्ञान था। द्विवेदी जी के विरोधी भी उनसे आतंकित थे और द्वन्द्व उपस्थित होने पर उन्हें द्विवेदी जी का लोहा मानना पड़ा। अतएव द्विवेदी-युग का पूर्वार्द्ध अराजकता-युग के अन्तर्गत नहीं आसकता।

श्यामसुन्दरदास, राय कृष्ण, नन्द दुलारे बाजपेयी, रामचन्द्र शुक्ल और श्रीनाथ सिंह आदि ने द्विवेदी-युग की सीमा निर्धारित करने में न्यूनोक्ति एवं अतिशयोक्ति की है।[1] सं० १९६० से १९८२ तक के काल को द्विवेदी-युग कहने का केवल यही कारण नहीं है कि उस युग की गद्यात्मक और पद्यात्मक रचना द्विवेदी जी की ही शैली पर हुई। उसका महत्तर कारण यह है कि उस युग की अधिकाश देन स्वयं द्विवेदी जी, उनके शिष्यों और उनसे विशेष प्रभावित साहित्यकारों की ही है। द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में प्रकाशित मैथिली शरण गुप्त, मुकुटधर पाँडेय, बदरीनाथ भट्ट आदि की ललित, सरस, रहस्योन्मुख, चित्रात्मक, सजीव, भावव्यंजक, मार्मिक, मधुमयी, कल्पनारंजित, सम्वेदनामय और अनूठी गीतात्मक रचनाओं के आधार पर सं० १९७५ से ही युगान्तर मान लेना निराधार प्रतीत होता है। सं० १९७५ की कविताओं के ढंग की रचनाएं तो सं० १९७१, ७२, ७३, ७४, में भी मिलती हैं। सं० १९७५ में युगान्तरविन्दु कहा है? वर्मलीज़ की सन्धि? कदापि नहीं। योरपीय महायुद्ध ने पश्चिमीय साहित्य में निसन्देह तत्काल क्रान्ति उपस्थित की परन्तु भारतीय साहित्य पर प्रभाव डालने में उसे कई वर्ष लग गए क्योंकि भारतीय साहित्यकारों का उस युद्ध से सीधा सम्बन्ध न था। उन्होंने तो योरोप के युद्धोत्तर साहित्य को पढ़कर उसका अनुकरणमात्र किया। उस अनुकरण ने सं० १९७५ तक हिन्दी साहित्य में कोई युगान्तरकारी परिवर्तन नहीं उपस्थित किया।

---

१. (क) देखिए 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (रामचन्द्र शुक्ल)-आधुनिक काल, द्वितीय उत्थान। शुक्ल जी ने स० १९६० से १९७५ तक को द्विवेदी-युग माना है।

(ख) "सन् १८९६ से (जब उन्होंने प्रथम बार लेखनी चलाई थी) सन् १९३८ तक (जब उन्होंने इस संसार से विदा ली) का समय द्विवेदी-युग कहा जाता है।'
—श्रीनाथसिंह-सारंग, २२ मई, १९४४ ई०।

(ग) श्यामसुन्दरदास और राय कृष्णदास के नाम से छपी हुई नन्ददुलारे बाजपेयी-लिखित द्विवेदी-अभिनन्द-ग्रन्थ की प्रस्तावना में सन् १९३३ ई० तक द्विवेदी-युग स्वीकार किया गया है।

नवीन युग का सन्देश सुनाने वाले जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की रचनाएँ भी द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में ही समादृत हो चुकी थीं परन्तु वे द्विवेदी-युग के प्रवृत्तिप्रधान काव्यों पर विजय न प्राप्त कर सकीं। मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, गोपालशरणसिंह आदि की अपेक्षा प्रसाद, पंत, निराला आदि का स्थान बहुत नीचा था। प्रसाद का 'प्रेम पथिक' (सं० १९७०) निराला की 'जुही की कली' (१९१७ ई०) आदि ने कविता के विषय, छन्द और अभिव्यंजन-शैली की स्वच्छन्दता दिखाकर छायावाद की सूचनामात्र दी थी। अपने वास्तविक लक्षणों—प्रेम प्रधान कल्पना की विचित्रता, अनुभूति की मार्मिकता, लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, प्रबन्धहीन वस्तु-विन्यास, रहस्यमयी भावना, प्रतीकात्मकता आदि-से विशिष्ट छायावाद 'आँसू' के प्रकाशनोपरान्त ही प्रतिष्ठित हुआ। इसी काल को हम पूर्ववर्ती और परवर्ती युग का विभाजनबिन्दु मान सकते हैं। 'आँसू' (सं० १९८२) ने नवीन युग का निश्चित प्रस्ताव और 'पल्लव' (सं० १९८३) ने उसका सबल समर्थन किया। हिन्दी-संसार को युगान्तर स्वीकार करना पड़ा।

द्विवेदी-युग के सजीव मस्त और निर्भीक लेखकों ने अनेक प्रकार के वादविवाद उठाए परन्तु उन्होंने वादों की प्रभुता नहीं स्वीकार की। छायावाद के विकास के साथ हम परिवर्तनवादी माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान, रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियों की वाणी में साम्राज्यवाद के प्रतिकूल प्रजावर्ग का, पूँजीवाद के विरुद्ध मजदूर दल का, उच्चवर्ग के विरुद्ध अछूत-समाज का रोषभरा क्रान्तिकारी स्वर पूर्वोक्त समय में विशेष स्पष्ट सुनाई देने लगा। जिन्दाबाद और मुर्दाबाद के कोलाहल में विविध-विषयक हिन्दी-साहित्य के उपर्युक्त वादों के अतिरिक्त हालावाद, प्रगतिवाद, यथार्थवाद, आदर्शवाद, अभिव्यंजनावाद, कलावाद, उपयोगितावाद, दुःखवाद, निराशावाद, आशावाद, समाजवाद साम्यवाद, तन्त्रवाद, मार्क्सवाद, गांधीवाद, रवीन्द्रवाद आदि अगणित वादों का निनाद उस काल को वादयुग कहने के लिए बाध्य करता है।

सं० १९९४ में छायावाद के प्रवर्तक ख्यातनामा कवि प्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। 'युगान्त' और 'युगवाणी' में पंत जी ने छायावाद के मार्ग को छोड़ दिया। 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुकरमुत्ता' ने निराला जी की भी दिशा बदल दी। सं० १९९९ के राष्ट्रीय आन्दोलन ने देश में एक क्रांति उपस्थित कर दी। सं० २००० में बंगाल में भयंकर अन्न संकट पड़ा जिसमें लाखों व्यक्ति काल के ग्रास हुए। छायावाद की ध्रुवतारिका महादेवी वर्मा

भी देश दशा से क्षुब्ध हो उठीं और उन्होंने 'वंग दर्शन' का सम्पादन किया। राजनैतिक आदि प्रभावशाली परिस्थितियों ने सं० १६६६–२००० में भारतीय साहित्यकारों के मन में विशेष हल चल मचा दी। वर्तमान हिन्दी साहित्य की विशिष्टताओं की समीक्षा कुछ काल के उपरान्त हो सकेगी। अभी उसका समय नहीं आया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य की मुख्य चार विशिष्टताएं हैं—पद्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा, गद्य साहित्य का गौरव, विविध विषयक लोकोपयोगी वाङ्मय की सृष्टि और देश देशान्तर में हिन्दी का प्रचार। इन सभी दृष्टियों से द्विवेदी-युग महत्तम है। इस युग में खड़ी बोली का संस्कार और परिष्कार हुआ, उपन्यास, कहानी, जीवन चरित्र, चम्पू आदि नवीन काव्य-विधानों की रचना हुई, इतिहास, भूगोल, अर्थ शास्त्र, विज्ञान, शिक्षा आदि विषयों पर उपयोगी ग्रन्थ लिखे गये, विद्यालयों आदि में हिन्दी को स्थान मिला, अमरीका और बर्मा आदि देशों में भी उसका प्रचार हुआ।

द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध में ठोस साहित्य निर्माण की अपेक्षा साहित्यकार-निर्माण का ही कार्य अधिक हुआ। काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन में रक्षित 'सरस्वती' की सन् १६०३ से १६१४ ई० तक की हस्तलिखित प्रतियाँ विशेष अवलोकनीय हैं। कन्हैयालाल पोद्दार, जनार्दन झा, रामचन्द्र शुक्ल, सत्यनारायण, गिरिधर शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पांडेय, मुकुटधर शर्मा, सियारामशरण गुप्त, गोपालशरणसिंह आदि कवियों, रामचन्द्र शुक्ल, गिरजादत्त बाजपेई, लाला पर्वतीनन्दन श्री मती वंग महिला, बृन्दाबनलाल वर्मा, रूपनारायण पांडेय, विश्वम्भरनाथ शर्मा आदि कहानीकारों, वेणीप्रसाद, काशीप्रसाद जायसवाल, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, उदयनारायण बाजपेई, लक्ष्मीधर बाजपेई आदि जीवन चरित-लेखकों, अक्षयवट मिश्र, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी लक्ष्मीधर बाजपेई कामताप्रसाद गुरू, सत्यदेव, चन्द्रधर गुलेरी आदि आलोचकों, यशोदानन्दन अखौरी, रामचन्द्र शुक्ल, चतुर्भुज औदीच्य, सत्यदेव चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह आदि निबन्धकारों और माधवराव सप्रे, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सूर्यनारायण दीक्षित, सत्यदेव, लक्ष्मीधर बाजपेई, देवीप्रसाद शुक्ल, भोलादत्त पांडेय, बृन्दाबन लाल वर्मा, गणेशशंकर विद्यार्थी, महेन्दुलाल गर्ग, गिरिजाप्रसाद बाजपेई, उदयनारायण बाजपेई, लल्लीप्रसाद पांडेय गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, काशीप्रसाद जायसवाल आदि विविध विषयक लेखकों की रचनाओं पर सम्पादक द्विवेदी ने निष्ठुर शल्य-चिकित्सक की भाँति संशोधक की लेखनी चलाई।[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय राय देवीप्रसाद कामताप्रसाद गुरू,

---

१. इन साहित्यकारों की रचनाओं का नामकरण या उद्धरण अनावश्यक है। प्रायः सभी कृतियाँ संशोधित हैं और काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में देखी जा सकती हैं।

रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शर्मा, मन्नन द्विवेदी, जयशंकरप्रसाद आदि की कविताओं प्रेमचन्द्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, ज्वालादत्त शर्मा आदि की आख्यायिकाओं और पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, गंगानाथ झा, श्यामसुन्दरदास, रायकृष्ण दास आदि के लेखों का भी उन्होंने यथा स्थान सुधार किया है।

'प्रिय प्रवास' के प्रकाशन (सं० १६७१) से द्विवेदी-युग का उत्तरार्द्ध आरम्भ हुआ। उस समय खड़ीबोली काफी मँज चुकी थी और ठोस भावों की व्यजंना में समर्थ थी। अतएव वह काल स्थायी साहित्य-रचना करने में सफल हुआ। द्विवेदी-युग में हिन्दी वाङ्मय के विविध अंगों की आशातीत अभावपूर्ति हुई। इतिहास, भूगोल, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कृषि, गणित, विज्ञान, ज्योतिष आदि पर सहस्रों ग्रन्थ लिखे गए। वाङ्मय के इन अंगो की आलोचना यहा अपेक्षित नहीं है। प्रस्तुत निबन्ध भाषा और साहित्य से ही सम्बन्ध रखता है, अतएव इसमें द्विवेदी-युग के हिन्दी प्रचारकार्य, पत्रपत्रिकाओं, कविता, नाटक, कथा-साहित्य, निबन्ध, भाषा-शैली और आलोचना की ही समीक्षा करना समीचीन है।

प्रचार कार्य

१६ जुलाई, सन् १८६३ ई० को ही काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई थी। सभा के उद्योग से सन् १८६८ ई० में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने अदालतों में नागरी का प्रचार ऐच्छिक कर दिया और समन आदि के लिए नागरी और उर्दू दोनों लिपियो के प्रयोग की घोषणा की। सभा ने कचहरियों में हिन्दी विद्या लेखकों की युक्ति करके उससे लाभ उठाने का उद्योग किया। सन् १८६६ ई० मे प्रान्तीय सरकार ने ४०० रु० (चार सौ रुपया) वार्षिक की सहायता देना आरम्भ किया और १६२१ ई० में वह सहाय। २००० रु० तक पहुँच गई। सभा ने सैकड़ों नए कवियों और सहस्रों अज्ञात ग्रन्थों की खोज की। १६२१ ई० से १६२३ ई० तक के लिए पंजाब सरकार ने भी ५०० रु० की सहायता दी। गवेषणा के साथ ही साथ सभा ने 'पृथ्वीराज रासो', 'जायसी ग्रन्थावली', 'वैज्ञानिक-कोष', 'हिन्दी व्याकरण' आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन भी किया। प्रकाशनार्थ भी युक्त प्रान्त की सरकार ने कभी २०० रु० और कभी ३०० रु० की सहायता दी। १६१४ ई० से 'मनोरंजन पुस्तकमाला' के अन्तर्गत सभा ने विविध-विषयक और सस्ती पुस्तकों का प्रकाशन आरम्भ किया। अपनी नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के अतिरिक्त 'सरस्वती' और 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के संस्थापन का श्रेय भी पूर्वोक्त सभा को ही है।

प्रयाग का 'हिन्दूसमाज', 'अलीगढ़ की 'भाषासंवर्धिनी सभा', मेरठ की 'देव-नागरी प्रचारिणी सभा', आरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा', कलकत्ता की 'एक लिपि विस्तार परिषद्', एवं 'हिन्दी साहित्य परिषद्', प्रयाग की 'नागरी प्रवर्द्धिनी सभा', छत्रपुर की 'काव्यलता सभा', जालन्धर और मैनपुरी की 'नागरी प्रचारिणी सभा', आदि संस्थाएँ भी देव नागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार, प्रसार तथा उन्नयन में लगी हुई थीं।[1]

परस्पर-विचार-विनिमय, मातृभाषा की हितचिन्तना और उसकी उन्नति के उपाय निश्चित करने के लिए काशी नागरी प्रचारणी सभा ने १०-११-१२ अक्टूबर १६१० ई० को साहित्य-सम्मेलन की योजना की उसमें हिन्दी को राष्ट्र-भाषा और देवनागरी को भारत की राष्ट्रलिपि बनाने तथा सरकारी कार्यालयों, स्कूलों और विश्वविद्यालयों में हिन्दी को उचित स्थान दिलाने के लिए अनेक ओजपूर्ण प्रस्ताव पास किए। सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन प्रयाग की 'नागरी प्रवर्द्धिनी सभा' के तत्वावधान में हुआ और उसे स्थायी रूप दिया गया। सरकारी अदालतों, पत्रों, रेलवे के कार्यों तथा भावी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी को उचित स्थान देने, हिन्दी सभाओं से नाटक खेलने, सम्मेलन परीक्षाएँ प्रचलित करने और हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न करने के विविध प्रस्ताव पास किए गए। उसी अधिवेशन में साहित्य-सम्मेलन के उद्देश्यों की निश्चित रूप रेखा भी निर्धारित की गई।[2]

---

१. प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कार्य-विवरण, पृष्ठ २ और ३, के आधार पर।

२. (क) हिन्दी साहित्य के सब अंगों की उन्नति का प्रयत्न करना।
(ख) देवनागरी लिपि का देश भर में प्रचार करना और देशव्यापी व्यवहारों और कार्यों को सुलभ करने के लिए हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न करना।
(ग) हिन्दी को सुगम, मनोरम और प्रिय बनाने के लिए समय समय पर उसकी शैली के संशोधन और उसकी त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करना।
(घ) सरकार, देशी राज्यों, कालेज, यूनीवर्सिटी और अन्य स्थानों, समाजों तथा जनसमूहों में देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषा के प्रचार का उद्योग करते रहना।
(च) हिन्दी ग्रन्थकारों, लेखकों, प्रचारकों और सहायकों को समय समय पर उत्साहित करने के लिए पारितोषिक, प्रशंसापत्र, पदक आदि से सम्मानित करना।
(छ) उच्चशिक्षा प्राप्त युवकों में हिन्दी का अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ाने के लिए प्रयत्न करना।
(ज) जहाँ आवश्यकता समझी जाए वहाँ पाठशाला, समिति तथा पुस्तकालय स्थापित करने और कराने का उद्योग करना।

तीसरे और चौथे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य विवरण से सिद्ध है कि सं० १९६९ में ब्यावर, गोरखपुर, बुलन्दशहर और अमृतसर की 'नागरी प्रचारिणी सभाएँ', कलकत्ता की 'हिन्दी साहित्य परिषद्' तथा आगरा की 'नागरी प्रचारिणी सभा' और सं० १९७० में लहेरियासराय की 'छात्रोपकारिणी सभा', हाथरस, लखीमपुर-खीरी तथा लाहौर की नागरी प्रचारिणी सभाएँ, धेनुगामा की 'हिन्दी हितैषिणी सभा', भागलपुर की 'हिन्दी सभा', मुरादाबाद की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा', लखनऊ की 'हिन्दी साहित्य सभा', चित्तौड़ की 'विद्या प्रचारिणी सभा' और कोटा की 'हिन्दी साहित्य समिति' आदि संस्थाएँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन से सम्बद्ध हुईं।[1]

सं० १९६९--७० में बंगाल, बिहार, मध्यप्रान्त, गुजरात, राजपूताना, पंजाब आदि प्रान्तों और अनेक देशी राज्यों में धूमधाम से हिन्दी का प्रचार प्रारम्भ हुआ। सं० १९७२ में गुजराती और मराठी साहित्य-सम्मेलनों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करके अपने शिक्षालयों में उसे सहायक भाषा की भाँति पढ़ाने का मन्तव्य स्थिर किया। सं० १९७५ में महात्मा गाँधी की अध्यक्षता में देवीदास गाँधी, पंडित रामदेव और सत्यदेव ने मद्रास में हिन्दीप्रचार किया। सं० १९७५ में सम्मेलन ने हिन्दी विद्यापीठ की स्थापना की। एकादश सम्मेलन में चालीस सहस्र का दान मिला और उसके सूद से 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' की आयोजना की गई। सं० १९८२ में सम्मेलन ने बृहत् कवि सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलन की भी आयोजना की।[2] उसी वर्ष आन्ध्र में सम्मेलन का विशिष्ट अधिवेशन हुआ और दक्षिण में हिन्दी की प्रतिष्ठा हुई।[3]

इंडियन प्रेस, प्रयाग, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, खड्गविलास प्रेस, पटना, भारत जीवन प्रेस, काशी, हरिदास कम्पनी, कलकत्ता हिन्दी ग्रन्थ प्रसारक मंडली, खंडवा, हिन्दी-ग्रन्थ-

---

(झ) हिन्दी साहित्य के विद्वानों को तैयार करने के लिए हिन्दी की उच्च परीक्षाएं लेने का प्रबन्ध करना।

(ट) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के उद्देशों की सिद्धि और सफलता के लिए जो अन्य उपाय आवश्यक और उपयुक्त समझे जाए उन्हें काम में लाना।

—द्वितीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य विवरण।

१. हिन्दी-के साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण के आधार पर।

२. प्रथम बार सं० १९७९ में साहित्य विषय पर पद्मसिंह शर्मा को उनकी बिहारी सतसई पर, दूसरी बार सं० १९८० में समाजशास्त्र पर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा को उनकी भारतीय प्राचीन लिपिमाला पर और तीसरे बार सं० १९८१ में प्रो० सुधाकर लिखित मनोविज्ञान नामक दार्शनिक रचना पर दिय गया।

३. हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्य-विवरण के आधार पर।

रत्नाकर-कार्यालय, बम्बई आदि ने हिन्दी-ग्रन्थों, विशेष कर उपन्यासों, का प्रकाशन करके हिन्दी का प्रचार और प्रसार किया। आर्यसमाजियो, सनातन-धर्मियों, ईसाइयों आदि ने अपने धर्म-प्रचार के लिये हिन्दी को ही माध्यम बनाकर उसके व्यवहार की वृद्धि की।

१९१० ई० में बड़ौदानरेश ने वरनाक्यूलर स्कूलों की पाँचवीं और छठवीं कक्षाओं के लिए हिन्दी अनिवार्य कर दी और हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन की भी व्यवस्था की।[१] सन् १९१५ में युक्तप्रान्त के शिक्षा-विभाग ने आठवी कक्षा तक हिन्दी का माध्यम स्वीकार किया। उस समय कागड़ी के गुरुकुल, ज्वालापुर के महाविद्यालय, हरिद्वार के ऋषिकुल, वृन्दाबन के गुरुकुल तथा प्रेम-महाविद्यालय आदि संस्थाएँ हिन्दी-माध्यम द्वारा ही शिक्षा देती थीं। द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाने और विश्व-विद्यालयों में हिन्दी साहित्य को पाठ्य विषय निर्धारित करने के लिए विशेष आन्दोलन हुआ। सं० १९७६ में कलकत्ता विश्व-विद्यालय और सन १९२० ई० में काशी विश्वविद्यालय ने हिन्दी साहित्य का अन्य विषयों के समकक्ष ही पाठ्यक्रम में स्थान दिया।

अफ्रीका में श्री बी. मदनजोत, मोहनदास कर्मचन्द गांधी, भवानी दयाल सन्यासी आदि ने हिन्दी-प्रचार किया। सन्यासी जी ने अफ्रीका के विभिन्न स्थानों मे हिन्दी-संस्थाएँ खोली—क्लेर स्टेट (नेटाल) में 'हिन्दी-आश्रम', 'हिन्दी-विद्यालय', 'हिन्दी-पुस्तकालय', 'हिन्दी-यन्त्रालय और ' 'हिन्दी प्रचारिणी सभा', जर्मिस्टन में 'हिन्दी नाइट स्कूल', 'हिन्दी फुटबाल क्लब' और 'हिन्दी बालसभा', डेन हाउसर मे हिन्दी प्रचारिणी सभा' और 'हिन्दी पाठशाला' एवं प्रिटोरिया में 'हिन्दी पाठशाला' आदि।[२] ट्रान्सवाल मे सिडनटम स्थान में 'हिन्दी जिज्ञास्य सभा नेशनल सोसाइटी' की स्थापना हुई।[३] सं० १९७५ मे रंगून में हिन्दी पुस्तकालय खुला।[४] दिसम्बर, १९१६ ई० मे अफ्रीका मे प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन हुआ।[५] द्विवेदी–सम्पादित 'सरस्वती' स्वयं एक आप्त विश्व-विद्यालय बन गई थी। उसने भारत के भीतर और बाहर कितने ही अर्द्ध-शिक्षितों और अल्पज्ञों को शिक्षित, बहुज्ञ, लेखक तथा कवि बनने के लिए प्रेरित किया। सम्पादक द्विवेदी ने संसार के विभिन्न प्रदेशों में सरस्वती भक्तों की सृष्टि की; इस प्रकार द्विवेदी-युग में देश और विदेश में हिन्दी की प्रतिष्ठा हुई।

---

१. प्रथम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण।
२. 'साहित्य सम्मेलन पत्रिका', भाग ३, अंक १।
३ 'इंदु', कला चार, खंड १, पृ० १९१।
४. 'सम्मेलन पत्रिका', भाग ३, अंक २–३, पृ० ८७।
५. 'सम्मेलन पत्रिका', भाग ४, ५, पृ० २०५।

पत्र-पत्रिकायें

द्विवेदी-युग के पूर्व, उन्नीसवीं ई० शती के उत्तरार्द्ध में केवल दो ही दैनिक पत्र निकल सके थे 'सुधावर्षण' (१८५४ ई०) और 'भारतमित्र' (१८५७ ई०) दोनों ही अकाल काल-कवलित हो गए। १९११ ई० में दिल्ली-दरबार के अवसर पर 'भारतमित्र' दैनिक रूप में पुनः प्रकाशित हुआ किन्तु जनवरी १९१२ ई० में बन्द हो गया। मार्च, १९१२ ई० से दैनिक रूप में वह फिर निकला और २२ वर्ष तक चलता रहा। १९१४ ई० में कुछ मारवाड़ी सज्जनों ने 'कलकत्ता समाचार' निकाला। कुछ ही वर्ष बाद उसका अन्त हो गया। उन्हीं दिनों 'वेंकटेश्वर समाचार' भी कुछ काल तक दैनिक रूप में प्रकाशित हुआ था। १९१७ ई० में अम्बिकादत्त बाजपेयी के सम्पादकत्व के मूलचन्द अग्रवाल ने दैनिक 'विश्वमित्र' निकाला। बाजपेयी जी ने कलकत्ते से कुछ काल तक 'स्वतंत्र' भी निकाला। उपर्युक्त पत्रों ने समाचार तो अवश्य दिए परन्तु निश्चित विचारों का उल्लेखनीय प्रचार नहीं किया। १९२० ई० में काशी से 'आज' प्रकाशित हुआ। उसका विशेष लक्ष्य था भारत के गौरव की वृद्धि और उसकी राजनैतिक उन्नति।[1] उसने राष्ट्रीय विचारों का प्रचार किया। देश-विदेश के समाचारों के अतिरिक्त सम्पादकीय अग्रलेखों और लेखकों की रचनाओं के द्वारा उसने मनोरंजक और उपयोगी सामग्री पाठकों को भेंट की। भाषा, भाव और शैली सभी दृष्टियों से उसने हिन्दी-समाचारपत्र-जगत में युगान्तर उपस्थित किया।

बीसवीं ईसवी शती के आरम्भ में 'भारत मित्र', 'बंगवासी', 'वेंकटेश्वर-समाचार' आदि उल्लेखनीय साप्ताहिक पत्र थे। लखनऊ के 'आनन्द' (लगभग १९०५ ई०) और 'अवधवासी' (१९१४ ई०) का जीवन मृत्यु-सा ही था। १९०७ ई० में पं० मदनमोहन मालवीय के संरक्षण और पुरुषोत्तमदास टंडन के सम्पादकत्व में 'अभ्युदय' प्रकाशित हुआ। माधवराव सप्रे ने नागपुर से 'हिन्दी-केसरी' निकाला परन्तु वह कुछ ही दिन चल सका। १९०९ ई० में सुन्दरलाल के सम्पादकत्व में 'कर्मयोगी' निकला और कुछ समय बाद पाक्षिक से साप्ताहिक होकर १९१० ई० में बन्द हो गया। १९११-१२ ई० में कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी ने

---

१. "हमारा उद्देश्य देश के लिए सर्व प्रकार से स्वातन्त्र्य उपार्जन है। हम हर बात में स्वतंत्र होना चाहते हैं। हमारा लक्ष्य यह है कि हम अपने देश का गौरव बढ़ाय, अपने देशवासियों में स्वाभिमान का संचार करें, उनको ऐसा बनावें कि भारतीय होने का उन्हें अभिमान हो, संकोच न हो। यह स्वाभिमान स्वतंत्रता देवी की उपासना करने से मिलता है।"

आज सौर २०, भाद्रपद, १९७७ विक्रमी।
'रजत जयंती अंक', पृष्ठ १७।

'प्रताप' निकाला। १६१६ ई० में सुन्दरलाल ने दूसरा पत्र 'भविष्य' निकाला जो साप्ताहिक से दैनिक हो कर बन्द हो गया। १६२०, २१ ई० के असहयोग आन्दोलन के आस पास 'कर्मवीर' (खंडवा), 'स्वराज्य' (खंडवा), 'सैनिक' (आगरा), 'स्वदेश' (गोरखपुर), आदि अनेक साप्ताहिक पत्र निकले। 'भारतमित्र' आदि साप्ताहिक पत्रों की राजनैतिक दृष्टि नरम थी। टंडन जी के सम्पादन काल में 'अभ्युदय' के विचार भी नरम रहे किन्तु कृष्णकान्त मालवीय के आने पर वह गरम दल का समर्थक हो गया। 'हिन्दी केशरी' लोकमान्य तिलक के 'मराठी केसरी' का अनुवाद मात्र था। 'कर्मयोगी' के राजनैतिक विचार उग्रतम थे, अतएव वह सरकार का कोपभाजन हुआ। राष्ट्रीय 'प्रताप' सच्चे अर्थ में जनता का पत्र था। 'कर्मवीर' आदि उसी के आदर्श के अनुपालक थे। 'भविष्य' की निर्भीक और तेजस्वी नीति ने उसे भी शीघ्र ही सरकार की शनिदृष्टि का लक्ष्य बना डाला।[१]

द्विवेदी-युग के सम्पूर्ण पत्र-साहित्य का आप्त विवरण देने के लिए स्वतंत्र गवेषणा करने और निबन्ध लिखने की आवश्यकता है। प्रस्तुत अवच्छेद उसका सिंहावलोकन भर कर सकते हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के इक्कीसवें कार्य विवरण में प्रकट है कि १६१३, १४ ई० में केवल 'भारतमित्र' ही दैनिक पत्र था। 'हिन्दी बंगवासी', 'भारतमित्र', 'वेंकटेश्वर समाचार', 'वीर भारत', 'अभ्युदय', 'बिहार बन्धु', 'भारत जीवन', 'सद्धर्म प्रचारक', 'आनन्द', 'आर्य मित्र', 'मिथिला मिहिर', 'जयाजी प्रताप', 'शुभचिन्तक', 'शिक्षा', 'फौजी अखबार', 'भारत', 'सुदशा प्रवर्तक', 'पाटलिपुत्र', 'अलमोड़ा अखबार', आदि साप्ताहिक थे। 'राजपूत', 'क्षत्रिय मित्र', 'जैन मित्र', 'जैन शासन', 'आचार्य' आदि का प्रकाशन पाक्षिक था। 'सरस्वती' 'मर्यादा', 'प्रभा', 'इंदु', 'लक्ष्मी', 'नवनीत', 'चित्रमय जगत', 'स्वर्ग माला' 'हितकारिणी', 'एजुकेशनल गजट', 'बाल-हितैषी', 'नवजीवन', जैन हितैषी', सत्यवादी', 'वैदिक सर्वस्व' आदि मासिक पत्रिकाएँ थीं। 'सुधानिधि', 'वैद्य', 'वैद्य-कल्पतरु', आरोग्य जीवन' आदि वैद्यक विषय के 'क्षत्रिय समाचार', 'अग्रवाल', 'जैन गजट', 'दिगम्बर जैन', 'कान्यकुब्ज हितकारी', 'गौड़ हितकारी', 'पालीवाल ब्राह्मणोदय', 'सनाढ्य', 'माहेश्वरी', 'तैलीस समाचार', 'जांगीडा समाचार', 'कलवार मित्र' आदि जातीय 'स्त्री दर्पण', 'गृहलक्ष्मी', चांद, 'स्त्रीधर्मशिक्षक', आदि स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी, 'कन्यामनोरंजन' और 'कन्यासर्वस्व' सचित्र पत्र थे। 'जासूस' 'उपन्यास लहरी', 'उपन्यास बहार', 'उपन्यासमाला'

पा० टि० १. पत्रों का उपयुक्त विवरण 'आज' के 'रजत-जयंती-अंक' के आधार पर दिया गया है।

आदि उपन्यासों की मासिक पुस्तकें थीं। इनके अतिरिक्त 'स्वदेशबान्धव', 'गढ़वाली', 'भास्कर', ब्राह्मणसर्वस्व', 'औदुम्बर', 'साहित्यपत्रिका', चैतन्यचन्द्रिका, आत्मविद्या', 'आर्यावर्त्त', 'मारवाड़ी', 'बिहारपत्रिका', 'प्रेम' 'कानपुरगज़ट', 'जैनतत्वप्रकाश', 'नागरी प्रचारक', 'देहाती जीवन', 'धर्मकुसुमाकर', 'भूमिहारब्राह्मणपत्रिका', 'जैनसिद्धांताभास्कर' आदि भी प्रकाश में थे।

१६१७, १८ ई० में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-कार्यालय में ८० पत्र-पत्रिकाऐं आती थीं। सम्मेलन के पंचदश अधिवेशन के अवसर पर आयोजित प्रदर्शिनी में निम्नांकित पः प्रस्तुत थेः—[1]

दैनिक

१. आज	काशी	२. स्वतंत्र	कलकत्ता
३. अर्जुन	देहली	४. कलकत्तासमाचार	„

अर्द्ध साप्ताहिक

१. प्रणवीर नागपुर ....

साप्ताहिक

१. तरुण राजस्थान	अजमेर	२. हिन्दी राजस्थान	देहली
३. आर्य जगत	लाहौर	४. मारवाड़ी	नागपुर
५. रंगीला	गयाधाम	६. मतवाला	कलकत्ता
७ प्रेम	वृन्दावन	८. मौजी	कलकत्ता
९. अग्रसर	कलकत्ता	१०. जैनमित्र	सूरत
११. कर्त्तव्य	इटावा	१२ उदय	सागर
१३ हिन्दी केसरी	बनारस	१४. शक्ति	अल्मोड़ा
१५. महिला सुधार	कानपुर	१६. श्रमिक	कलकत्ता
१७. गरीब	बिजनौर	१८. स्वदेश	गोरखपुर
१६. तिरहुत समाचार	मुजफ्फरपुर	२०. महावीर	हरद्वार
२१. मारवाड़ी ब्राह्मण	कलकत्ता	२२. सूर्य	काशी
२३. सिन्धु समाचार	शिकारपुर	२४. कैलाश	मुरादाबाद
२५ देश	पटना	२६. भविष्य	कानपुर
२७. शंकर	मुरादाबाद	२८. हिन्दू सम्बन्ध सहायक	सहारनपुर

पाक्षिक

गढ़वाली देहरादून

---

१ पंचदश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण।

मासिक

१. सनाढ्य हितकारी	झांसी	२. निगमागम चन्द्रिका	बनारस
३. विद्यार्थी	प्रयाग	४. मालव मयूर	काशी
५. देशबन्धु	कलकत्ता	६. सनाढ्योपकारक	आगरा
७. हिन्दी प्रचारक	मद्रास	८. ब्राह्मण	देहली
९. शिशु	प्रयाग	१०. सुखमार्ग	अलीगढ़
११. हलवाई वैश्य संरक्षक	काशी	१२. हिन्दी गल्प माला	काशी
१३. सम्मेलन पत्रिका	प्रयाग	१४. तिजारत	शाहजहांपुर
१५. ब्राह्मण सर्वस्व	इटावा	१६. सम्प्रदाय	बड़ौदा
१७. गहोई वैश्य सेवक	उरई	१८. परमार बंधु	जबलपुर
१९. प्रजा सेवक	हुशंगाबाद	२०. बरन बाल चंद्रिका	काशी
२१. द्विजराज	प्रयाग	२२. अनुभूत योग माला	इटावा
२३. कलवार क्षत्रिय मित्र	प्रयाग	२४. क्षत्रिय मित्र	काशी
२५. ब्रह्मचारी	हरिद्वार	२६. गृह लक्ष्मी	प्रयाग
२७. भ्रमर	बरेली	२८. छत्तीसगढ़	रामगढ़
२९. सरस्वती	प्रयाग	३०. बालसखा	प्रयाग
३१. महिला महत्त्व	कलकत्ता	३२. माधुरी	लखनऊ
३३. प्रभा	कानपुर		

फुटकर

१. नागरी प्रचारिणी पत्रिका	काशी	२. कान्फरन्स	अजमेर
३ युगान्तर	कलकत्ता	४. लोकमान्य	बाँदा
५ कान्यकुब्ज	काशी	६ धर्म रक्षक	कलकत्ता
७. महिलासुधाकर	कानपुर	८. माहेश्वरी	कलकत्ता
९. सनातन धर्म	कलकत्ता	१०. समालोचक	सागर
११. माहेश्वरी सुधाकर	अजमेर	१२ समालोचक	फरुखाबाद
१३. समन्वय	कलकत्ता	१४ सावधान	
१५. नाई ब्राह्मण	कानपुर	१६. आर्य	लाहौर
१७. शिक्षामृत	नरसिंहपुर	१८. मोहनी	दामोह
१९. आभीर समाचार	शिकोहाबाद	२०. जैनगजट	कलकत्ता
२१. क्षत्रिय वीर	पौड़ी	२२. योग प्रचारक	काशी
२३. कलौधन मित्र	भागलपुर	२४. कलवार केसरी	लखनऊ
२५. कवि कौमुदी	प्रयाग	२६. दिगम्बर जैन	सूरत

२७. जैन महिला आदर्श	सूरत	२८. साध्वी सर्वस्व	प्रयाग
२६. कूर्मि क्षत्रिय हितैषी	पन्नागर	३० स्वास्थ्य	कानपुर
३१. शान्ति	सहारनपुर	३२. शिक्षा प्रभाकर	अलीगढ़
३३. प्रताप	कानपुर	३४. शिक्षासेवक	पटना

काशीनागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा-पुस्तकालय में द्विवेदी-युग के अधिकांश पत्रों की प्रतियां रक्षित हैं।[1]

१६०४ ई० में बी. मदनजीत के प्रयत्न से डरबन नगर से 'इंडियन ओपिनियन' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। कुछ साल बाद आर्थिक संकट के कारण वह मोहनदास कर्मचन्द गाधी को सौंप दिया गया और उन्होंने फ़ीनिक्स नगर से उसका प्रकाशन किया। अफ्रीका में ही स्वामीभवानीदयाल सन्यासी के उद्योगसे १६१२ ई० में 'धर्मवीर' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। १६२२ ई० में साप्ताहिक 'हिन्दी' का प्रकाशन आरम्भ किया जो तीन वर्ष बाद बन्द हो गई। १६१२ ई० में ही 'मारिसस इंडियन टाइम्स' प्रकाशित हुआ।[2] विदेशों में और भी अनेक पत्र प्रकाशित हुए जिनका विवरण सम्प्रति अलभ्य है।

द्विवेदी-युग के अधिकांश लेखक सम्पादक थे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा में रक्षित पत्रिकाओं की फाइलों से सिद्ध है कि श्यामसुन्दरदास ('नागरीप्रचारिणी पत्रिका' और 'सरस्वती)' राधाकृष्णदास ('नागरी प्रचारिणी पत्रिका' और 'सरस्वती)' भीमसेन शर्मा (ब्राह्मणसर्वस्व) कृष्णकान्त मालवीय (मर्यादा) रामचन्द्र शुक्ल (नागरीप्रचारिणी

---

१ अबलाहितकारक, आत्मविद्या, आदर्श, आर्य, आर्यमहिला, इन्दु, उपन्याससागर, उषा, कथामुखी, कन्यामनोरंजन, कन्यासर्वस्व, कलाकुशल, कवीन्द्रबाटिका, कालिन्दी, किसानोपकारक, कृषिसुधार, गृहलक्ष्मी, गृहस्थ, चन्द्रप्रभा, चांद, चित्रमयजगत्, जासूस, ज्योति, ज्ञानशक्ति, देहाती, नवजीवन, नवनीत, नागरीप्रचारिणीपत्रिका, नागरीहितैषिणी पत्रिका, निगमागमचन्द्रिका, परोपकारी, पांचाल पंडिता, पीयूषप्रवाह, प्रतिभा, प्रभा, प्रभात, प्रेमबिलास, प्रियंवदा, बालक, बालप्रभाकर, बालहितैषी, बिजली ब्रह्मचारी, भारतमित्र, भारती, भारतेन्दु, भारतोदय, भास्कर, भ्रमर, मनोरंजन, मनोरमा, मर्यादा, महिलादर्पण, माधुरी, रसिकरहस्य, रसिकबाटिका, लक्ष्मी, विकास, विज्ञान, विद्यार्थी, विद्याविनोद, विश्वविद्याप्रचारक, श्रीकमला, श्रीशारदा, संगीतामृतप्रवाह, संसार, समन्वय, सम्मेलन पत्रिका, साहित्य, साहित्यपत्रिका, सुधानिधि, स्त्रीदर्पण, स्त्रीधर्मशिक्षा, स्वदेशबान्धव, स्वार्थ, हिन्दीगल्पमाला, हिन्दी प्रचारक, हिन्दी प्रदीप, हितकारिणी, आदि पत्रिकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं।

२. 'आज' के 'रजतजयन्ती-अंक' के आधार पर।

पत्रिका) गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (नागरीप्रचारिणी पत्रिका) लाला भगवानदीन (लक्ष्मी), रूपनारायण पांडेय (नागरी प्रचारक), बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी-प्रदीप), गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी (ब्रह्मचारी), पद्मसिंह शर्मा (परोपकारी और भारतोदय), सन्तराम बी० ए० (उषा और भारती), लाला सीताराम बी० ए० (विज्ञान), ज्वालादत्त शर्मा (प्रतिभा), गोपालराम गहमरी (समालोचक और जासूस), माधवप्रसाद मिश्र (सुदर्शन), द्वारिकाप्रसाद चतुर्वेदी (यादवेन्द्र), यशोदानन्दन अखौरी (देवनागरवत्सर), सम्पूर्णानन्द (मर्यादा), किशोरीलाल गोस्वामी (वैष्णव सर्वस्व), छविनाथ पांडेय (साहित्य), मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव (स्वार्थ), शिवपूजनसहाय (आदर्श वर्ग), वियोगी हरि (सम्मेलन पत्रिका), चन्द्रमौलि सुकुल (कान्यकुब्ज), गणेशशंकर विद्यार्थी (प्रभा) बालकृष्ण शर्मा (प्रभा), पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी (सरस्वती) आदि ने सम्पादक का आसन भी ग्रहण किया था।

उस युग का सामयिक साहित्य मुख्यतः 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'मर्यादा' 'इंदु', 'चाँद', 'प्रभा', और 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ। 'सरस्वती' की अग्रजा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' १९०४ ई० में त्रैमासिक थी, १९१५ ई० में मासिक हुई और फिर १९७७ वि० में त्रैमासिक हो गई। उसका उद्देश सामान्य पत्रिकाओं से भिन्न था। आरम्भ में तो उसने कविता आदि विषयों को भी स्थान दिया था किन्तु आगे चलकर केवल शोध-सम्बन्धी पत्रिका रह गई। 'मर्यादा' आदि अन्य पत्रिकाएं 'सरस्वती' की अनुजा थीं। रूप और गुण की सभी दृष्टियों से उन्होंने 'सरस्वती' का अनुकरण किया। 'मर्यादा', 'प्रभा' और 'माधुरी' के अधिकाश लेखक भी द्विवेदी जी के ही शिष्य थे।[१]

भारतेन्दु-युग की पत्रिकाओं की चर्चा भूमिका में हो चुकी है। उनकी भाषा अत्यन्त लचर थी। उनका साहित्य अत्यन्त साधारण कोटि का था। यद्यपि द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध का पत्र-साहित्य अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कुछ रचनाओं को छोड़ कर निस्सन्देह ऊँचा नहीं है तथापि उसके उत्तरार्द्ध में मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, गोपालशरणसिंह, रामनरेश त्रिपाठी, प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दाबनलाल वर्मा, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचन्द्र शुक्ल, सूर्यकान्त त्रिपाठी, चंडी प्रसाद हृदयेश, चतुरसेन शास्त्री की रचनाएँ महत्वपूर्ण और स्थायी साहित्य की निधि हैं।[२]

---

१. इस कथन का स्पष्टीकरण 'सरस्वती-सम्पादन' अध्याय के अन्तर्गत विस्तारपूर्वक हो चुका है।

२ इस सम्बन्ध में 'सरस्वती', 'प्रभा' और 'माधुरी' की फाइलें विशेष द्रष्टव्य हैं।

कविता

युग-निर्माता का आसन ग्रहण करने के पूर्व ही द्विवेदी जी ने हिन्दी-कवियों को युगान्तर करने की सूचना दे दी थी। अपने 'कविकर्तव्य' (सरस्वती १६११ ई०) लेख में उन्होंने समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातों का विचार करके कवियों को उनका कर्तव्य बतलाया था। द्विवेदी जी की महत्ता इस बात में भी है कि उस लेख में उन्होंने जो कुछ भी कहा था उसे सफलतापूर्वक पूर्ण किया और कराया। उपर्युक्त सम्पूर्ण लेख उद्धृत करने का यहाँ अवकाश नहीं है। अतएव द्विवेदी जी की उस भविष्य वाणी और आदेश के मुख्य मुख्य वाक्यों को लेकर ही उस युग की कविता की समीक्षा की जायगी।

द्विवेदी-युग ने हिन्दी साहित्य के इतिहास में पहली बार पद्य और गद्य दोनों ही को काव्य-विधान का माध्यम स्वीकार किया।[1] उस युग के कवियों ने हिन्दी साहित्य में अद्यावधि प्रयुक्त सभी विधानों में कविताएं लिखीं। अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रिय विधान प्रबन्ध काव्य का था। इसके अनेक कारण थे। विश्व साहित्य की समीक्षा से यह बात सिद्ध हो जाती है कि ग्राम बोलियों में कविता का आरम्भ लोक गीतों से और संस्कृत भाषाओं में प्रबन्ध काव्यों से हुआ है। वाल्मीकि का 'रामायण', होमर का 'इलियड', आदि काव्य इस कथन के प्रमाण हैं। द्विवेदी-युग खड़ी बोली कविता का आरम्भिक काल था, अतएव कथानक की सहायता से ही कविता लिखना कवियों को अधिक सहज जान पड़ा। प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं ने ही कवियों का ध्यान आकृष्ट किया। प्रबन्ध काव्य जीवन के तथ्यों को मूर्तरूप में उपस्थित कर देता है जिससे पाठक अनायास ही प्रभावित हो जाता है। द्विवेदी जी के आदेशानुसार[2] उस युगके उपदेश प्रवृत्ति प्रधान कवियों ने प्रबन्ध काव्यों में आदर्श चरित्रों का अवलम्बन करके पाठकों को लाभान्वित करने का प्रयास किया। प्रबन्ध काव्यों के तीन रूप थे—पद्य प्रबन्ध, खंड काव्य और महाकाव्य। 'भूमिका' और 'कविता' अध्याय में पद्यनिबन्धों की विशेषता बतलाते हुए यह कहा जा चुका है कि वे आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक नूतन विधान के रूप में प्रतिष्ठित हुए। द्विवेदी-युग के

---

१. "गद्य और पद्य दोनों ही में ही कविता हो सकती है।" द्विवेदी जी
'कविकर्तव्य'—सरस्वती १६०१ ई०, पृष्ठ २३२।

२. "रसकुसुमाकर और 'जसवन्तजसोभूषण' के समानग्रन्थों की इस समय आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि आदर्शपुरुष के चरित्र का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी साहित्य को अलभ्य लाभ होता।"
'कविकर्तव्य'—रसज्ञरंजन, पृष्ठ २।

पूर्व उनका प्रयोग मात्र हुआ था। द्विवेदी जी ने उनकी रचना को प्रोत्साहन दिया।[1] द्विवेदी सम्पादित 'सरस्वती' निबंधों से भरी हुई है, उदाहरणार्थ १९१० ई० की 'सरस्वती' में प्रकाशित मैथिलीशरण गुप्त की 'कीचक की नीचता', 'कुन्ती और कर्ण' आदि। ये पद्य कभी तो खंड काव्यों की पद्धति पर एक ही छन्द में लिखे गए, जैसे उपर्युक्त 'कुंती और कर्ण', कभी गीत प्रबंध के रूप में अनेक छन्दों का सम्मिश्रण था, यथा लाला भगवानदीन का 'वीर पंचरत्न' और कभी पत्र-गीतों के रूप में, जैसे मैथिलीशरण गुप्त की 'पत्रावली'।

प्रबन्ध काव्य का दूसरा रूप खण्ड काव्य था। खड़ी बोली के अधिकांश सुन्दर खण्ड काव्य द्विवेदी युग में ही लिखे गए, उदाहरणार्थ मैथिलीशरण गुप्त के 'जयद्रथ वध' (१९१० ई०) 'किसान' (सं० १९७४) और 'पंचवटी' (स० १९८२) रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक' (१९२० ई०), प्रसाद का 'प्रेम पथिक' (१९१४) सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य विजय' (सं० १९७१), सुमित्रानन्दन पंत कृत 'ग्रन्थि' (१९२० ई०) आदि। प्रबन्ध काव्य का तीसरा रूप महाकाव्य था। खड़ी बोली के प्रथम दो महाकाव्य 'प्रिय प्रवास' (सं० १९७१) और 'साकेत' (अधिकांश सं० १९८२ तक ही लिखित किन्तु ग्रन्थ १९८८ वि० में प्रकाशित) द्विवेदी युग में ही लिखे गये। यद्यपि संस्कृत आचार्यों के बताए हुए महाकाव्य के सभी लक्षण इन ग्रन्थों में नहीं पाए जाते तथापि ये महान् काव्य होने के कारण महाकाव्य अवश्य हैं।

द्विवेदी-युग की कविता का दूसरा विधान मुक्तक रचना के रूप में हुआ। मुक्तक रचना के मूल में कवियों की अनेक प्रवृत्तियाँ काम कर रहीं थीं। पहली प्रवृत्ति सौन्दर्य व्यंजना की थी। उन कवियों की सौन्दर्य विषयक इयत्ता भी अपनी थी। उनकी यह प्रवृत्ति कहीं तो आलंकारिक आदि चमत्कार के रूप में,[2] कहीं उक्ति वैचित्र्य के रूप में[3] और कहीं मार्मिक अनुभूति की हृदयहारी अभिव्यक्ति के रूप में[4] फलित हुई। दूसरी प्रवृत्ति समस्यापूर्ति की थी[5] तीसरी प्रवृत्ति उपदेशक की थी। यह तीन रूपों में व्यक्त हुई। कहीं सीधे उपदेश

---

१. "समस्यापूर्ति के विषय को छोड़कर, अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुनकर, कवि को यदि बड़ी न होसके तो छोटी ही स्वतंत्र कविता करनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिन्दी में प्रायः अभाव है।"

द्विवेदी जी — रसज्ञरंजन', पृष्ठ १३।

२. उदाहरणार्थ 'उद्धवशतक' आदि।

३. 'चुभते चौपदे' आदि।

४. गोपालशरणसिंह का 'व्रजवर्णन', 'बड़ छवि' आदि ('माधवी' में संकलित)।

५. उदाहरणार्थ राजनैतिक कविता के संदर्भ में उद्धृत नाथूराम शर्मा की 'खटकत है' की समस्यापूर्ति।

के रूप में, कहीं सूक्ति के रूप में और कहीं अन्योक्ति के रूप में। तीसरे काव्य विधान के रूप में वे प्रबन्ध मुक्तक थे जिनमें प्रबन्ध का कथानक और मुक्तक की स्वच्छन्दता एक साथ थीं, उदाहरणार्थ 'आंसू' (१६२५ ई०) गीतों या गीतियों ने काव्यविधान का चौथा रूप प्रस्तुत किया। मौलिकता की दृष्टि से इन गीतों के पांच प्रकार हैं। भारतस्तव (श्रीधर पाठक) आदि गीत संस्कृत के 'गीतगोविन्द' आदि के अनुकरण पर लिखे गए। श्रीधर पाठक, रामचरित उपाध्याय, वियोगीहरि आदि ने हिन्दी की भक्तिकालीन पद-परम्परा की पद्धति पर गीतों की रचना की, उदाहरणार्थ रामचरित उपाध्याय का 'भव्यभारत' (सरस्वती, भाग २१, संख्या ६) सुभद्रा कुमारी चौहान के 'झांसी की रानी' आदि गीत लोकगीतानुकरण के रूप में आए।[1] उस युग के शोकगीत, प्रबन्धगीत और पत्रगीत अंगरेजी के एलेजी, बैलड आदि के बहुत कुछ अनुरूप हैं। मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि ने उपर्युक्त प्रभावों से युक्त गीत भी लिखे जिनमें भाव, भाषा और छन्द सभी में नवीनता थी, उदाहरणार्थ पंत का 'परिवर्तन'। शैली की दृष्टि से इन गीतों का प्रचार वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक या पत्रात्मक था और आकार एकछन्दोमय, मिश्रछन्दोमय या मुक्तछन्दोमय था। द्विवेदी युग के उत्तरार्द्ध में भाषा के मंज जाने पर उच्चकोटि के कलात्मक गीतों की रचना हुई।

काव्यविधान का पांचवां रूप गद्यकाव्य था। हिन्दी में पद्य ही अब तक कविता का माध्यम था। गद्यकाव्य के आविर्भाव और विकास के कारण भी द्विवेदी-युग का हिन्दी साहित्य के इतिहास में निराला स्थान है। द्विवेदी जी ने स्वयं ही 'प्लेगस्तव राज' और 'समाचारपत्रों का विराट् रूप' दो काव्यात्मक गद्यप्रबन्ध लिखे थे। 'तुम हमारे कौन हो ?'[2] आदि गद्य रचनाओं में भी पर्याप्त कवित्व था। परन्तु इन आरम्भिक प्रयासों में आधुनिक हिन्दी-गद्यकाव्य का रूप निखर नहीं सका। हिन्दी गद्य का रूप संस्कृत और परिष्कृत न होने के कारण उसमें काव्योचित व्यंजनाशक्ति आ न पाई थी। जयशंकरप्रसाद के 'प्रकृतिसौन्दर्य'[3] और 'प्रलय',[4] बालकृष्ण शर्मा नवीन का 'निशीथचिन्ता'[5] राय कृष्णदास के 'समुचित कर' और 'चेतावनी',[6] चतुरसेन शास्त्री के 'कहां जाते हो',[7] 'आदर्श

१. यह कविता बुन्देलखंड में प्रचलित 'खूब लड़ी मरदानी अरे झांसी वाली रानी' नामक लोकगीत के आधार पर लिखी गई है।
२. सरस्वती भाग ५, पृष्ठ ११८।
३. इंदु. कला १. किरण १, पृष्ठ ८।
४. माधुरी. भाग २ खंड २. संख्या १, पृष्ठ ६०।
५. प्रभा. भाग १, खंड २ पृष्ठ ३०४।
६. प्रभा, वर्ष ३, खंड १, पृष्ठ ४०१।
७. प्रभा, वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ २४१।

आंसू'[१] और 'फिर'[२] प्रतापनारायण श्रीवास्तव का 'विलाप',[३] कुंवर रामसिंह लिखित 'दो तरंगें',[४] वियोगी हरि के 'परदा', 'वीणा', 'सवार', 'दर्शन' और 'सरॉय',[५] भगवतीप्रसाद बाजपेयी का 'कवि',[६] शान्तिप्रिय द्विवेदी का 'क्षमायाचना'[७] आदि गद्यकाव्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। प्रभा ने तो कभी-कभी 'हृदयतरंग'[८] नामक खंड ही निकाला जिसमें गद्यकाव्य के लिए स्थान सुरक्षित रहता था। 'सौन्दर्योपासक',[९] 'अश्रुधारा'[१०] 'नवजीवन वा प्रेमलहरी',[११] 'त्रिवेणी',[१२] 'साधना',[१३] 'तरंगिणी',[१४] 'अन्तस्तल',[१५] 'फिर निराशा क्यों',[१६] 'संलाप'[१७] आदि गद्यकाव्य पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। जयशंकर प्रसाद के गद्यकाव्यों में संस्कृत-पदावली की बहुलता, दार्शनिकता की अतिगूढ़ता और शब्दचयन की अनुपयुक्तता के कारण कवित्व नष्ट होगया है। 'नवीन' आदि में भी भावप्रवणता और अभिव्यंजता की मार्मिकता नहीं है। सम्भवतः अपने को गद्यकाव्य के अयोग्य समझकर ही इन कवियों ने तादृश रचनाओं से मुँह फेर लिया। उस युग में गद्यकाव्य-निर्माण का विशेष श्रेय राय कृष्णदास, चतुरसेन शास्त्री और वियोगीहरि को ही है। वियोगीहरि का 'अन्तर्नाद' यद्यपि सं० १९८३ में प्रकाशित हुआ तथापि इसकी प्रायः सभी रचनाएं द्विवेदी युग के अन्तर्गत ही हैं। इस संग्रह की पांच रचनाओं के देशकाल का निर्देश ऊपर हो चुका है ।

पुस्तकों के 'साधना', 'अन्तस्तल', अन्तर्नाद', आदि नाम स्वयं ही इस बात की घोषणा करते हैं कि ये रचनाएं बाह्य आलम्बनों से सम्बन्धित न होकर आध्यान्तरिक हैं।

---

१. प्रभा, वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ २३३ ।
२. „ मार्च, १९२४ ई०, पृष्ठ १८६ ।
३. „ वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ १९२ ।
४. „ वर्ष ३, खंड २, पृष्ठ २०२ ।
५. „ फरवरी, १९२४ ई०, पृष्ठ १३१ ।
६. „ मई, १९२४ ई०, पृष्ठ ३७६ ।
७. „ जनवरी, १९२५ ई०, पृष्ठ ७३ ।
८. उदाहरणार्थ मई, जून, १९२१ ई० ।
९. ब्रजनन्दन मिश्र, १९११ ई० ।
१०. ब्रजनन्दन मिश्र, १९१६ ई० ।
११. कुमार राधिकारमणसिंह, १९१६ ई० ।
१२. देवेन्द्र, सं० १९७३ ।
१३. राय कृष्णदास, सं० १९७४ ।
१४ हरिप्रसाद द्विवेदी, सं० १९७६ ।
१५. चतुरसेन शास्त्री, सं० १९७८ ।
१६. गुलाबराय, द्वितीयावृत्ति १९८० वि० ।
१७ राय कृष्णदास, सं० १९८२ ।

विषय और शैली की दृष्टि से द्विवेदीयुग के गद्यकाव्यों के दो प्रकार हैं—देश प्रेम की अभिव्यक्ति और लौकिक या अलौकिक प्रेमपात्र के प्रति आत्मनिवेदन। यह भी कहा जासकता है कि उनका मुख्य विषय प्रेम है चाहे वह लौकिक हो, अलौकिक हो या देश के प्रति हो। देशप्रेम को लेकर लिखी गई कविताएं अपवादस्वरूप हैं। द्विवेदी-युग के अन्तिम वर्षों में सत्याग्रह और सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन प्रबल हो रहा था और उसका प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी अनिवार्य रूप से पड़ा। जो देशप्रेम प्रार्थना और नम्र निवेदन से आरम्भ हुआ था उसने उग्र रूप धारण किया। कवियों ने इस बात का अनुभव किया कि बिना बलिदान और रक्तपात के स्वतंत्रता की प्राप्ति नहीं हो सकती। राय कृष्णदास के 'समुचित कर' और 'चेतावनी' गद्यगीत इसी भाव के द्योतक हैं।[1] उसी वर्ष कुंवर रामसिंह ने एक गद्य काव्य लिखा 'स्वतन्त्रता का मूल्य' जिसमें उन्होंने भारतीय नारियों को देश की स्वतन्त्रता के लिए आत्मत्याग और बलिदान करने को उत्तेजित किया।[2]

उस युग के अधिकांश गद्यकाव्य किसी प्रेमपात्र के प्रति प्रेमी हृदय की वेदना के ही शब्दचित्र हैं। इस प्रेम का आलम्बन कहीं शुद्ध लौकिक है[3] और कहीं कहीं यह प्रेम

---

१. **"ऋषियो ! यदि तुम्हें भगवान रामचन्द्र की परमाशक्ति सीता के जन्म की आकांक्षा हो तो तुम्हें घड़े भर खून का कर देना ही होगा।**

उसके बिना सीता का शरीर कैसे बनेगा ? और बिना सीता का आविर्भाव हुए रामचन्द्र अपना अवतार कैसे सार्थक कर सकेंगे ?

अतः ऋषियो उठो, अविलंब अपना रक्त प्रदान करो।"

–प्रभा, वर्ष ३, खंड १, पृ० ४०१।

२. **"हे देवियो ! यदि तुम्हें स्वतंत्रता का सुख चाहिए तो अपने पतियों सहित कारागार के कष्ठ उठाकर देवकी की तरह अपनी सात सन्तानों का बलिदान करो।"**

–प्रभा, भाग ३, खंड २, पृ० २०२।

३. "पाटल ! मैं ने तुमको इतने प्रेम से अपनाया। तुम्हें तुम्हारे स्वजनों से बिलगाकर छाती से लगा लिया तुम्हारे कांटों की कुछ परवाह न की, क्योंकि तुम्हारी चाह थी।

कहां मेरा मन इसी चिन्ता में चूर रहता था कि तुम्हारी पंखुड़ियां दब न जावें। सारे संसार से समस्त चित्तवृत्तियां खिंचकर एक तुम्हीं से समाधिस्थ हो रही थीं। कहां आज वही. मैं, तुम्हें किस निर्दयता, उदासीनता और घृणा से भूमि पर फेंक रहा हूँ। क्योंकि तुम्हारे रूप, रंग, सुकुमारता और सौरभ सब देखते देखते नष्ट हो गए हैं।

कहां तो मैं तुम्हें हृदय का फूल बनाकर अभिमानित होता था, कहां आज तुम्हें पददलित करने में डरता हूँ कि कहीं कांटे न चुभ जांय।

अरे, यह-प्रेम कैसा ? यह तो स्वार्थ है क्या इसी का नाम प्रेम है ? हे नाथ, मुझे ऐसा प्रेम नहीं चाहिए। मुझे तो वह प्रेम प्रदान करो जो मुझे भेदबुद्धिरहित पागल बना दे।"— रायकृष्णदास–साधना, पृ० ६७।

पारलौकिकता की ओर उन्मुख है ।[1]

ये गद्य काव्य 'वासवदत्ता', 'दशकुमार चरित', 'हर्ष चरित', 'कादम्बरी' आदि संस्कृत गद्य-काव्यों से अनेक बातों में भिन्न हैं। कथावस्तु की दृष्टि से प्राचीन-काव्य आधुनिक उपन्यासों के पूर्व रूप हैं, इसलिये उन्हे 'आख्यायिका' या 'कथा' कहा गया है। यहा तक कि मराठी में उपन्यास के लिए कादम्बरी शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। आधुनिक गद्यकाव्य में इस प्रकार की कथा वस्तु का सर्वथा अभाव है। इसका कारण यह है कि आज साहित्य ही नहीं सारा वाङ्मय ज्ञान विस्तार के साथ ही साथ अनेक भागों में विभाजित होता जा रहा है। इसीलिये तब की आख्यायिका और कथा के स्थान पर अब कहानी, उपन्यास और गद्यकाव्य तीन रूप दिखाई पड़ते हैं। आख्यायिका, कथा, उपन्यास आदि के रूप में दूसरों का वर्णन करते करते लेखक का हृदय थक गया और आत्माभिव्यक्ति के लिए रो पड़ा। वर्तमान गद्यगीत उसके उसी आकुल अन्तर के शब्द प्रतीक हैं। बाणभट्ट ने भी अपने 'हर्ष चरित्र' के आरम्भिक अध्यायों में अपना चरित लिखा था किन्तु उनकी वह अभिव्यक्ति अध्यान्तरिक न होकर जीवन वृत्त-मात्र थी। वे प्रबन्ध काव्य हैं, उनमें प्रबन्ध व्यंजकता है और रस परिपाक की ओर विशेष ध्यान दिया गया है।[2] द्विवेदी-युग के गद्य-काव्य लघुप्रबन्धमुक्तक हैं और इनमें रस परिपाक का प्रयास न करके कोमल भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति ही की गई है। उन संस्कृत कवियों ने शब्द-चमत्कार और अलंकारादि की ओर बहुत ध्यान दिया।[3] हिन्दी-गद्यकाव्य कर्त्ताओं के गीत एक श्वेतवसना तपःपूत

---

१. "हे मेरे नाविक, यह कैसी बात है जब मेरी नाव मंझधार मे थी तब तो तुम्हे हटाकर मैने डाँड़ लेलिए थे और तुम्हारे आसन पर आसीन होकर बड़ा भारी खेवैया बन बैठा था। पर जब वह धार से पार होकर गम्भीर जल में पहुँची तब मैं हारकर उसे तुम्हारे भरोसे छोड़ता हूँ।

तब तो नाव धार के सहारे बह रही थी, खेने की आवश्यकता ही न थी। इसी से मेरी मूर्खता न खुली। पर अब ? अब तो इस गम्भीर जल से चतुर नाविक के बिना और कौन नाव निकाल सकता है ?

परन्तु मैं तुम्हारी बड़ाई किस मुख से करूं। तुम मेरी मूर्खता और अभिमान तथा अपने अपमान की ओर नहीं देखते और सप्रेम डाँड़ नाव किनारे की ओर चलाते हो।"

"'राय कृष्णदास" साधना, पृ० ३१।

२. स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवावधूरिव ॥

बाणभट्ट, 'कादम्बरी' की प्रस्तावना।

३. सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः।
प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ॥

सुबन्धुकृत वासवदत्ता' का आरम्भ।

सन्यासिनी की भाँति निरलंकार किन्तु मर्मस्पर्शी हैं। उन काव्यों में पग-पग पर चित्रमयी कवि कल्पना की ऊंची उड़ान हैं। द्विवेदी-युग के हिन्दी गद्यगीतों में कल्पना की ऊंची उड़ान न होते हुए भी सरलता, लाक्षणिकता और मूर्ति मत्ता या प्रतीकात्मकता का इतना सुन्दर समन्वय है कि वे पाठकों के हृदय को सहज ही मोह लेते हैं। इन गद्यकाव्यों की द्विकलात्मकता इनकी एक प्रमुख विशेषता है। इनमें गद्य भाषा की छन्दहीनता, वाक्य-विन्यास और व्याकरण संगति है, परन्तु साथ ही पद्य की सी लय और काव्यमय उपस्थापना भी है।[1]

द्विवेदी जी ने अपने पद्यानुवादों में संस्कृत के द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, स्रग्धरा, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि अनेक वृत्तों और अपनी मौलिक कविताओं में वर्णिक छन्दों का प्रयोग किया था। उनके आदर्श और उपदेश[2] ने उस युग के अन्य कवियों को भी प्रभावित किया। पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपना 'प्रिय प्रवास' आद्योपान्त संस्कृत वृत्तों में लिखा। संस्कृत वृत्तों का निर्वाह करने में कहीं कहीं कवियों को अत्यन्त कठिनाई हुई। कहीं तो उन्हें चरण के अन्तिम लघु को दीर्घ का रूप देना पड़ा,[3] और कहीं वे संयुक्त वर्ण के पूर्ववर्ती लघुस्वर को गुरु मानने के लिए विवश हुए।[4] इस प्रकार के प्रयोग

और बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित' की भूमिका में इस प्रकार की 'वासवदत्ता' की प्रशंसा भी की—

'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।"

१. "जब मैं रोता हूँ तब तुम घोर अट्टहास कर मेरे रोने का उपहास करते हो, जब हंसता हूँ, तुम्हारी आंखों में आंसू छलछला आते हैं—यह वैपरीत्य क्यों ?

हे स्वामिन्! तुम्हारे सम्मुख क्या मेरे रोने और हंसने का कोई मूल्य नहीं है ?"

'क्षमायाचना'···शान्तिप्रिय द्विवेदी···प्रभा। जन० १६२५ ई० पृष्ठ ७३।

२. "दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और भी छन्द लिखा करें।"

·· रसज्ञरंजन, पृ० ३।

३ यथा— "ओढ़े दुशाले अति उष्ण अंग,
धारे गरू वस्त्र हिए उमंग।" —सरस्वती, मई, १६०५ ई०।

४. उदाहरणार्थ (क) जब देवव्रत अष्टम बालक।

द्विवेदी जी, कविता-कलाप, 'गंगा-भीष्म।'

(ख) आनन्द प्रिय मित्र के उदय से पाते सभी जीव हैं,
पूजा में रत है समस्त जगत प्रोत्साह आह्लाद से।

संस्कृत भाषा और संस्कृत छन्दों के कारण हुए हैं। कहीं कहीं बोलचाल के प्रभाव के कारण भी कवियों ने लघु को गुरु मान लिया है। यथा—

गरल अमृत अर्भक को हुआ।[1]

इस उद्धरण में अमृत के 'मृ' का 'ऋ' ह्रस्व स्वर है और 'अ' भी ह्रस्व है अतएव इन दोनों का ही उच्चारण लघु होना चाहिए परन्तु कवि ने 'म' में द्वित्व का आरोप करके छन्द की मर्यादा के निर्वाहार्थ लघु 'अ' को दीर्घ कर दिया है। मैथिलीशरण गुप्त आदि ने हिन्दी के अप्रचलित छन्दो, गीतिका, हरिगीतिका, रूप-माला आदि का प्रयोग किया। नाथूराम शर्मा आदि ने दो छन्दों के मिश्रण से भी नए छन्द बनाए। उस युग में लावनी की लय का विशेष प्रचार हुआ। हिन्दी के छन्दों का चरण और लावनी का अन्त्यानुप्रासक्रम लेकर मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, रामचरित उपाध्याय आदि ने हिन्दी में अनेक प्रबन्धगीत लिखे।[2]

बंगला के पयार और अंग्रेजी के सानेट का भी हिन्दी में प्रचार हुआ। जयशंकरप्रसाद आदि ने 'इंदु' और 'माधुरी' में अनेक चतुर्दशपदी गीत लिखे। छायावादी कवियों ने स्वच्छन्द और मुक्तछन्दों की परम्परा चलाई। अंत्यानुप्रास की दृष्टि से स्वच्छन्द छन्द तीन प्रकार के लिखे गए। एक तो वे थे जिनमें आद्योपान्त अनुप्रास था ही नहीं जैसे प्रसाद जी का 'महाराणा प्रताप का महत्त्व' या पंत की 'ग्रन्थि'। दूसरे वे छन्द थे जिसमे अन्त्यानुप्रास किसी न किसी रूप में आद्योपान्त विद्यमान था, यथा पंत जी की 'स्नेह', 'नीरवतार' आदि कविताएँ।[3] तीसरे वे छन्द थे जिनमें कहीं तो अंत्यानुप्रास था और कहीं नहीं था, उदाहरणार्थ पंत जी का 'निष्ठुर परिवर्तन' या सियारामशरण गुप्त की 'याद'।[4] निराला जी ने मुक्तछन्दों का विशेष प्रचार किया। उनकी 'जुही की कली' १६१७ ई० मे ही लिखी गई थी। परन्तु अपनी अति नवीनता के कारण हिन्दी-पत्रिकाओ मे स्थान न पा सकी। उनकी 'अधिवास'[5] आदि कविताएँ आगे चल कर पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुईं। इन मुक्तछन्दों में स्वच्छन्द छन्दों की छन्दलय का स्थान स्वाभाविक भावलय ने ले लिया।

---

१ प्रियप्रवास, सर्ग २, पद ३४।

२. उदाहरणार्थ, हरिऔध जी का 'दमदार दावे'—
प्रभा, मार्च, १६२४ ई० पृ० २१३।

३. यथा, 'आधुनिक कवि' २ के पृष्ठ ८ पर।

४ प्रभा, नवम्बर, १६२४ ई०, पृष्ठ ३७६।

५. माधुरी, भाग १, खंड २, पृ० ३२३।

द्विवेदी जी ने उर्दू के बह्रों के प्रयोग का भी आदेश किया ।[1] लाला भगवानदीन ने अपने 'वीरपंचरत्न' में, अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने चौपदों और छपदों में तथा अन्य कवियों ने भी अपनी रचनाओं में उर्दू बह्रों का प्रयोग किया। द्विवेदी जी ने कवियों से यह भी आग्रह किया कि वे अपने सिद्ध छन्दों का ही व्यवहार करें ।[2] मैथिलीशरण गुप्त ने अपने सधे हुए छन्द, हरिगीतिका में ही 'भारत-भारती' और 'जयद्रथवध' लिखा। गोपालशरणसिंह ने घनाक्षरी और सवैयों में ही अपनी अधिकांश रचनाएं कीं। जगन्नाथ दास ने रोला और घनाक्षरी का ही अधिक प्रयोग किया।

अनुकान्त कविता को भी द्विवेदी जी ने विशेष प्रोत्साहन दिया।[3] कविता का यह रूप भी द्विवेदी-युग की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। यद्यपि सबलसिंह चौहान, सरजूप्रसाद मिश्र, श्रीधर पाठक, देवीप्रसाद पूर्ण आदि कवि तुकान्तहीन कविता कर चुके थे परन्तु संस्कृत वृत्तों और अतुकान्त कविता को अंत्यानुप्रासयुक्त कविता के समान ही प्रतिष्ठित करने का श्रेय द्विवेदी जी और उनके युग को ही है। द्विवेदी जी की 'हे कविते' और श्रीधर पाठक का 'वर्षा-वर्णन' १६०१ ई० में तथा कन्हैयालाल पोद्दार का 'गोपी गीत' १६०२ ई० की सरस्वती में प्रकाशित हो चुके थे। अतुकान्त कविता का वास्तविक प्रवाह १६०३ ई० में चला। कन्हैयालाल पोद्दार की 'अन्योक्ति दशक'[4] और अनन्तराम पांडेय के 'कपटी मुनि नाटक' में वर्णिक और मात्रिक अत्यानुप्रासहीन छन्दों के दर्शन हुए। पूर्ण जी के 'भानु-कुमार नाटक' (१६०४ ई०) में भी यत्र तत्र अतुकान्त पदों का प्रयोग हुआ है। 'सरस्वती' ने इस प्रवाह को आगे बढ़ाया। १६०४ ई० में 'मृत्युंजय' (पूर्ण), 'तुम बसन्त सदैव बने रहो' (जमुनाप्रसाद पांडेय) और 'शान्तिमती शय्या' (सत्यशरण रतूड़ी), १६०५ ई० में 'शिशिर पथिक' (रामचन्द्र शुक्ल), 'प्रभात-प्रभा' (सत्यशरण रतूड़ी), 'भारवि का शरद्वर्णन' (श्रीधर पाठक) आदि कविताएं प्रकाशित हुई और यह क्रम चलता रहा। १६०६ ई० में हरिऔध जी का 'काव्योपवन' कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने

---

१. आजकल के बोलचाल की हिन्दी की कविता उर्दू के विशेष प्रकार छन्दों में अधिक खुलता है, अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होना चाहिए।

—'रसज्ञरंजन', पृ० ३।

२. "कुछ कवियों को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है, उसे ही वे अच्छा लिख सकते हैं उनको दूसरे छन्द लिखने का प्रयत्न भी न करना चाहिए।"

'रसज्ञरंजन' पृ० ४।

३. "पादान्त में अनुप्रासहीन छन्द भी हिन्दी में लिखे जाने चाहिए।"

'रसज्ञरंजन', पृ० ४।

४. सरस्वती, १६०३ ई०।

कल्पित छन्दों का भी प्रयोग किया। 'मयंकनवक' और 'दिनेश दशक' कविताओं मे शार्दूल-विक्रीडित की छाया लेकर मात्रा वृत्त में अनुकान्त कविता का एक नूतन और अनूठा उद्योग किया।[1] 'इन्दु' की चौथी और विशेषकर पाचवीं कलाओं मे राय कृष्णदास, जयशंकरप्रसाद मुकुटधर पाडेय आदि की अनेक अन्त्यानुप्रासहीन कविताएँ प्रकाशित हुई। सं० १९७० में जयशंकरप्रसाद का 'प्रेम-पथिक' और १९७१ मे हरिऔध जी का 'प्रियप्रवास' अतुकान्त वृत्तों मे प्रकाशित हुए। इस प्रकार हिन्दी में अतुकान्त कविता का रूप मान्य और प्रतिष्ठित हो गया।

ध्वन्यालोककार आनन्दवर्द्धन आदि संस्कृत-साहित्य-शास्त्रियों ने रसभावानुकूल वृत्तों के प्रयोग की आवश्यकता पर विशेष जोर दिया था। द्विवेदी जी ने भी कविता के इस आवश्यक पक्ष की ओर कवियों का ध्यान आकृष्ट किया।[2] द्विवेदी-युग के आरम्भिक वर्षों में अपंडित, असिद्ध और यशःकामी कवियों ने टूटी-फूटी तुकबन्दियों के द्वारा ही यश लूट लेने का प्रयास किया। 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियां इस बात की साक्षी हैं। कुछ ही वर्षों में भाषा का परिमार्जन हो जाने पर सिद्ध कवियों ने इस ओर पूरा ध्यान दिया। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रियप्रवास' मे रसभावानुकूल छन्दों का प्रयोग किया। यथा, शृंगार और करुण की व्यंजना के लिए द्रुतविलम्बित, वियोगवर्णन में मालिनी और मन्दाक्रान्ता, उत्साह के योग में वंशस्थ आदि। मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत आदि कवियों ने भी भावानुकूल छन्दों में कविताएँ की।

द्विवेदी जी ने भाषा की सरलता और सुबोधता पर पर्याप्त ध्यान दिया।[3] अपने सम्पादनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में उन्हें काव्य-भाषा का भी कायाकल्प करना पड़ा। उन्होंने कवियों को केवल उपदेश ही नहीं दिया, उनकी अर्थहीन या अनर्थकारिणी भाषा का आदर्श संशोधन भी किया। निम्नांकित उद्धरण विशेष अवेक्षणीय हैं—

मूल	संशोधित
(क) रव वह सब ही का हो तभी व्यर्थ ही है,	कलरव गति सब की भास होती बुरी है।

---

१. उदाहरणार्थ,
राका रजनी के समान रंगिणि जिसकी मनोहारिणी।
रूपवती रोहिणी आदि जिसकी हैं सप्तविंशति प्रिया।
हा जगदीश्वर! वह कवीश्वपति भी गुरु-वाम-गामी हुआ।
कामीजन का अकरणीय कुछ भी संसार मे है नहीं॥
'कव्योपवन', मयंकनवक पृष्ठ ७३।

२ "वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता का आस्वादन करने वालों को अधिक आनन्द मिलता है।" 'रसज्ञरंजन', पृ० २

३. "कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ ले और अर्थ को हृदयंगम कर सके।"— 'रसज्ञरंजन', पृ० ५

जब पिक दिखलाती शब्द की चातुरी है।[1]	जब पिक दिखलाती शब्द की चातुरी है।
(ख) पय प्रकटत सुन्दर छबि तेरी, ज्ञान ध्यान विस्मृत हो जावे। सुध बुध रहै न कुछ भी अपनी, तू ही तू मन में बस जावे ॥[2]	पर तेरी छवि देख ज्ञान की, गरिमा गुम हो जाती है। सुध बुध रहती नहीं चित्त में, तू ही तू बस जाती है॥
(ग) एक नयन कर लगत हमारा, चित पानी पानी हो जाता।[3]	नयन बाण तेरा लगते ही, दिल पानी पानी हो जाता है।

'क' की मौलिक पंक्ति विशेष चिन्त्य है। 'वह सब ही का हो', इस वाक्यांश का क्या अर्थ है ? उस पंक्ति में अर्थ या पद सौन्दर्य भी नहीं है। अन्त्यानुप्रास भी अधम कोटि का है। संशोधित पद में प्रसाद और माधुर्य के कारण विशेष सौन्दर्य आ गया है। सुन्दर अन्त्यानुप्रास ने उसे और भी उत्कृष्ट बना दिया है। 'ख' की मौलिक प्रथम पंक्ति से प्रकट होता है कि कवि का अभिप्राय आशीर्वादात्मक वाक्य-कथन नहीं है। वह अपनी बात सामान्य वर्तमान में ही कहना चाहता है किन्तु उसकी भाषा उसके अभीष्ट अर्थ की व्यंजना करने में असमर्थ है। संशोधित पद में उसकी यह अर्थहीनता दूर कर दी गई है। 'ग' की मौलिक प्रथम पंक्ति में 'हमारा' सर्वनाम का प्रयोग इस अर्थ का द्योतक है कि कवि का नयनशर लगते ही लोगों का चित्त पानी पानी हो जाता है। किन्तु यह अर्थ कवि के तात्पर्य के विपरीत है। कविता तरुणी को संबोधित करके लिखी गई है और कवि कहना चाहता है कि तुम्हारा नयनशर लगते ही मेरा चित्त पानी पानी हो जाता है। वह इस बात को ठीक कह नहीं सका है। संशोधित पंक्ति इस अर्थ को स्पष्ट कर देती है।

द्विवेदी जी के सदुद्योग से हिन्दी काव्यभाषा की क्लिष्टता, जटिलता और असमर्थता दूर हो गई। इसका प्रमाण आगे चलकर 'जयद्रथवध', 'भारत-भारती', 'प्रियप्रवास', 'माधवी', 'पथिक', 'पंचवटी' आदि रचनाओं में मिला। द्विवेदी जी के शिष्य मैथिलीशरण की प्रसन्न कविताओं ने लोगों को हिन्दी और कविता से प्रेम करना सिखाया। द्विवेदी युग के पूर्वार्द्ध में अधिकांश कवियों की भाषा व्याकरण-विरुद्ध प्रयोगों से व्याप्त थी। द्विवेदी

१. 'कोकिल'—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १६०४ ई०, कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

२. 'तरुणी'—गंगासहाय—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १६०४ ई० कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

३. 'तरुणी'—गंगासहाय—सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १६०४ ई०, कलाभवन, नागरी प्रचारिणी सभा।

जी ने उपदेश और संशोधन द्वारा उसका परिष्कार किया। एक दो उदाहरण अवलोकनीय है—

मूल	संशोधित
(क) मिला अहो मंजु रसाल डाल से ?	मिला अहो क्या सुरसाल डाल से ?
तथैव क्या गुंजित भृंगमाल से ?[1]	किंवा किसी गुंजित भृंगमाल से ?
(ख) ओढ़ें दुशाले अति उष्ण अंग,	अच्छे दुशाले, सित, पीत, काले,
धारें गरू वस्त्र हिये उमंग।	हैं ओढते जो बहुवित्त वाले।
तौ भी करें हैं सब लोग सी, सी,	तौ भी नहीं बन्द अमन्द सी, सी,
हेमन्त में हाय कंपे बतीसी।[2]	हेमन्त में है कंपती बतीसी ॥

पहले उदाहरण की प्रथम मौलिक पंक्ति में कोई प्रश्नवाचक सर्वनाम नहीं है और फिर भी प्रश्नवाचक चिन्ह लगाया गया है। उसकी द्वितीय पंक्ति में 'तथैव' की योजना सर्वथा असंगत है। संशोधित पद में 'क्या' और 'किवा' के व्याकरणसंगत प्रयोग से अधिक लोलित्य आगया है। दूसरे उदाहरण मे 'ओढ़ें', 'धारे आदि क्रियारूपों का प्रयोग गलत हुआ था। 'करे हैं' और 'कंपे' के रूप भी खड़ीबोली की दृष्टि से अशुद्ध हैं। संशोधित पद में 'तौ' का प्रयोग गलत है, किन्तु उस काल मे 'ओ' के स्थान पर 'औ' का प्रयोग करने की व्यापक प्रवृत्ति थी जिसका निश्चित सुधार द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध मे हुआ। कभी कभी तो तुक्कड़ पद्यकर्त्ता छन्द की गति और यति की अवहेलना करके अपना तूफान मेल निर्बाध गति से छोड़ देते थे, उदाहरणार्थः—

तुव दर्शन ही प्रेम उभारे,
ललना अनुभव यहां सिखाता है।[3]

और द्विवेदी जी को इस प्रकार की तुकबन्दियो की निर्दयतापूर्वक शल्य-चिकित्सा करनी पड़ती थी। द्विवेदी जी ने कवियों से विषयानुकूल शब्द स्थापना, अक्षरमैत्री, क्रमानुसार पद योजना आदि का भी अनुरोध किया।[4] द्विवेदी–युग के प्रथम चरण की 'सरस्वती' मे

१. 'कोकिल'–कन्हैयालाल पोद्दार–सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०४ ई०,
कला भवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

२. 'हेमन्त'-मैथिली शरण गुप्त सरस्वती की हस्तलिखित प्रतियां १९०५ ई०।

३. 'तरुणी'—गंगासहाय—सरस्वती की हस्तलिखित, प्रतियां १९०५ ई०
कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

४. "विषय के अनुकूल शब्दस्थापना करनी चाहिए···शब्द चुनने में अक्षरमैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए···शब्दों को यथा स्थान रखना चाहिए।"
रसज्ञरंजन, पृष्ठ ६, ७।

प्रकाशित कविताओं की हस्तलिखित प्रतियाँ द्विवेदी जी की गुरुता का बहुत कुछ अनुमान करा देती हैं। साधारण कवियों की कविताओं में ही नहीं, महाकवियों की कविताओं में भी शब्दों का व्यतिक्रम हुआ है जिसके प्रवाह में शिथिलता और सौन्दर्य में कमी आ गई है। हरिऔध जी की कविता का एक उदाहरण निम्नांकित है—

मूल	संशोधित
हरे पेड़ सब हो जाते हैं	पेड़ हरे सब हो जाते हैं
नये नये पत्ते लाते हैं	नये नये पत्ते लाते हैं
वह कुछ ऐसे लद जाते हैं	वह कुछ ऐसे लद जाते हैं
जो बहुत भले दिखलाते हैं	बहुत भले वह दिखलाते हैं
बसी हवा चलने लगती है	बसी हवा बहने लगती है
दिसा सब मंहकने लगती हैं।[1]	दिशा मंहकने सब लगती है

उपर्युक्त उद्धरण में कुछ बातें विशेष आलोच्य हैं। हरे 'पेड़' का विशेषण न होकर 'हो जाते हैं' का पूरक है अतएव उसका 'पेड़' शब्द के बादआना ही अधिक शोभाकारक होता। तीसरी पंक्ति की लय में चौथी पंक्तिकी लय मिलती ही नहीं 'बहुत भले' का पूर्ववर्ती होकर गुरु 'जो' ने उस पंक्ति के प्रभाव में एक बांध सा डाल दिया है। छठी पंक्ति की लय को अविरल रखने के लिए 'मंहकने' को विभाजित करना पड़ता है, 'महक', 'सब' के साथ और 'ने' लगती के साथ चला जाता है। इस प्रकार का विच्छेद संगत नहीं जंचता। द्विवेदी जी के संशोधन ने इन सब दोषों को दूर कर दिया है।

गद्य और पद्य की भाषा एक करने पर भी द्विवेदी जी ने विशेष जोर दिया।[2] उनके पहले से भी खड़ी बोली में कविता करने का प्रयास हो रहा था। द्विवेदी जी का गौरव इस बात में है कि उनके आदर्श उपदेश और सुधार के परिणाम स्वरूप ही हिन्दी-संसार ने गद्य की भाषा को ही पद्य की भाषा स्वीकार कर लिया। १६०६ ई० में द्विवेदी जी ने 'कविता-कलाप' संग्रह प्रकाशित किया जिसमें द्विवेदी जी, राय देवीप्रसाद, कामताप्रसाद गुरु, नाथूराम

---

१. 'कोयल', 'सरस्वती', हस्तलिखित प्रतियां, १६०६ ई०,
कलाभवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

२. "गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होनी चाहिए।""यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिए कवियों को चाहिए कि वे क्रम क्रम से गद्य की भाषा में कविता करना आरम्भ करें।"

रसज्ञरंजन पृष्ठ ७, ८।

शर्मा और मैथिलीशरण गुप्त की कविताएँ संकलित थीं। अधिकाश कविताएं खड़ी बोली की ही थीं। काव्य-भाषा की दृष्टि से द्विवेदी-युग के तीन विभाग किए जा सकते हैं–१६०३ ई० से १६०६ ई० तक, १६१० ई० से १६१७ ई० तक और १६१७–१८ ई० से १६२५ ई० तक। नागरी प्रचारणी सभा के कला भवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियां और तत्कालीन विभिन्न पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की भाषा से सिद्ध है कि १६०६ ई० तक खड़ी बोली का मँजा हुआ रूप उपस्थित नहीं हो सका। काव्य भाषा का सुधार करने में द्विवेदी जी को गद्य-भाषा संशोधन की अपेक्षा कहीं अधिक घोर परिश्रम करना पड़ा था। भाषा की यह दुरवस्था १६०६ ई० तक ही विशेष रही। 'कविता कलाप' में उसका कुछ सुधरा हुआ रूप प्रस्तुत हुआ है। उसमें शब्दों की तोड़ मरोड़ बहुत ही कम की गई। उनकी कविताओं में खड़ी बोली का व्याकरण-सम्मत और धारा प्रवाह रूप प्रतिष्ठित हुआ। १६१० ई० में 'जयद्रथ बध' में ओज, प्रसाद और माधुर्य से पूर्ण खड़ी बोली का श्रेष्ठ रूप उपस्थित हुआ। तत्पश्चात 'प्रिय प्रवास' और 'भारत-भारती' के प्रकाशन ने खड़ी बोली के विरोधियों को सदा के लिए चुप कर दिया। १६१७ ई० से 'सरस्वती' में 'साकेत' के अंश प्रकाशित होने लगे। इसी वर्ष 'निराला' ने अपनी 'जुही की कली' लिखी। इसी वर्ष के आस पास से पंत और प्रसाद की कविताएं भी समादृत होने लगीं थीं। इस अवस्था में द्विवेदी-युग की काव्य-भाषा में दो प्रकार के परिवर्तन हुए। एक तो लाक्षणिक, ध्वन्यात्मक और चित्रात्मक शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा और दूसरे हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त आदि की कविताओं में हिन्दी के मुहावरों और कहावतों का भी विशेष प्रयोग हुआ।

अभिनिवेशपूर्वक विचार करने से द्विवेदी-युग की काव्य-भाषा में अनेक विशिष्टताएं परिलक्षित होती हैं। द्विवेदी-युग ने खड़ी बोली की प्रतिष्ठा के लिए परिस्थितियों के विरुद्ध कठिन संग्राम किया। उस युग के महान् कवियों को भी छन्द की मर्यादा का निर्वाह करने के लिए 'और' के स्थान पर 'औ' तथा 'तक', 'पर', 'एक' आदि के लिए क्रमशः 'लौं', 'पै', 'यक' आदि का प्रयोग करना पड़ा।[१] कहीं वे पदों के समास करने में संस्कृत या हिन्दी-व्याकरण के नियमों का उल्लंघन करने के लिए बाध्य हुए।[२] खड़ी बोली की आरम्भिक कविताओं में प्रसाद, ओज और माधुर्य की कमी है। आगे चल कर भाषा के मँज जाने पर ये त्रुटियाँ अपवाद रूप में ही दिखाई पड़ीं। उस युग की कविता की सर्व-व्यापक विशेषता उसका प्रसाद गुण है। 'भारत भारती' अपनी प्रासादिकता के कारण ही

---

१. 'प्रियप्रवास' में इस प्रकार के प्रयोगों की बहुलता है।

२. ,, ,, ,,

हिन्दी-जनता का हृदयहार बन गई थी। 'प्रिय प्रवास' आदि रचनाएं अतिशय संस्कृत-प्रधान होते हुए भी प्रसन्न हैं। प्रसाद गुण किसी एक ही भाषा या बोली की सम्पत्ति नहीं है। वह बोलचाल, उर्दू फारसी या संस्कृत की पदावली में समान रूप से व्याप्त हो सकता है। कवि की भाव व्यंजना ऐसी होनी चाहिए जिसे पढ़ या सुन कर पाठक या श्रोता के हृदय में अबाध रूप से ही प्रसन्नता की अनुभूति हो जाय। युग के आरम्भ या अन्त में कुछ कवियों की कविता का दुरूह हो जाना उनकी व्यक्तिगत अभिव्यंजना-शक्ति की निर्बलता का परिणाम था। पंत, प्रसाद या माखनलाल चतुर्वेदी की कुछ ही कविताएं गूढ़ हैं। ध्वनि के रहते हुए भी कविता सरल और सुबोध हो सकती है।

ओज गुण का विशेष चमत्कार नाथूराम 'शंकर', माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान की रचनाओं में दिखलाई पड़ा। आर्य समाजी होने के कारण नाथूराम शर्मा में अक्खड़पन, निर्भीकता और जोश की अधिकता थी। माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में सक्रिय योग दे रही थीं। अतएव उनकी अभिव्यक्ति का ओजोमय हो जाना अनिवार्य था। राजनैतिक और धार्मिक हलचल ने कवियों के मन में एक क्रान्ति सी मचा दी। उन्होंने समाज, साहित्य आदि की बुराइयों पर लट्ठमार पद्धति द्वारा आक्रमण किया।[१] मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय गोपालशरणसिंह आदि की कविताओं में माधुर्यमयी व्यंजना हुई। विशेष रमणीयता-प्रतिपादक कोमलकांत पदावली का दर्शन आगे चलकर पंत की कविताओं में मिला।

द्विवेदी-युग की कविताओं में भी सभी प्रकार की भाषा का प्रयोग हुआ। एक ओर तो सरल और प्रांजल हिन्दी का निरलंकार सहज सौन्दर्य है[२] और दूसरी ओर संस्कृत की अलंकारिक समस्त पदावली की छटा।[३] कहीं तो प्रसन्न वाक्यविन्यास का अजस्र प्रवाह है[४] और कहीं छायावादी कवियों की अतिगूढ़ व्यंजना।[५] एक स्थान पर मुहावरों और बोल चाल के शब्दों की झड़ी लगी हुई है[६] तो दूसरे स्थल पर उन्हें तिलांजलि भी दे दी गई है।[७]

---

१. उदाहरणार्थ १९०८ ई० की 'सरस्वती' में प्रकाशित नाथूराम शर्मा की 'पंचपुकार' और मैथिलीशरण गुप्त की 'पंचपुकार का उपसंहार' कविताएं।

२. उदाहरणार्थ 'जयद्रथवध ॥'

३. ,, 'प्रियप्रवास ॥'

४. ,, 'भारतभरती ॥'

५. ,, निराला-लिखित 'अधिवास' कविता। माधुरी, भाग १, खंड २, संख्या ४, पृ० ३५६।

६. ,, हरिऔध जी के 'चुभते' और 'चोखे चौपदे।'

७. ,, प्रियप्रवास।

कहीं वाच्यप्रधान, वर्णनात्मक शैली मे वस्तूपस्थापन किया गया है[1] तो कहीं लक्ष्यप्रधान चित्रात्मक शैली का चमत्कार है।[2]

द्विवेदी जी ने कवियों को विषय परिवर्तन की भी प्रेरणा दी। उन्होंने नायक-नायिका आदि के शृंगारादि वर्णन और अलंकार, समस्यापूर्ति आदि के जाल से ऊपर उठकर सामाजिक, प्राकृतिक आदि स्वतंत्र विषयों पर फुटकर कविताएं तथा आदर्श चरित्रों को लेकर प्रबन्ध-काव्य लिखने का निर्देश किया। यो तो भारतेन्दु-युग ने भी शृंगारेतर रचनाएं की थीं परन्तु वे अपेक्षाकृत बहुत कम थीं। द्विवेदी-युग ने शृंगारिकता से आगे बढ़कर जीवन के अन्य पक्षों पर भी उचित ध्यान दिया। शृंगार प्रधान रचनाओं में भी उसने प्रेम को व्यापक, विश्वजनीन या रहस्योन्मुख रूप देकर उसे उत्कृष्ट बना दिया। वर्ण्य विषय की दृष्टि से उस युग की कविताओ का दुहरा महत्व है। एक तो उन कवियों ने नवीन विषय पर रचनाएं की और दूसरे परम्परागत मानव, प्रकृति आदि विषयो को नवीन दृष्टि से देखा।

युगनिर्माता द्विवेदी के सामने जो उदीयमान कविसमाज था उसमे ईश्वरदत्त प्रतिभा भले ही रही हो परन्तु लोक, शास्त्र आदि के अवेक्षण से उत्पन्न निपुणता और अभ्यास की बहुत न्यूनता थी। द्विवेदी जी ने विषय-परिवर्तन की घंटी तो दे दी किन्तु नौसिखिए कवियों को परम्परागत विषयों के अतिरिक्त काव्योपयुक्त अन्य विषय दिखाई ही न पड़े। स्वयं द्विवेदी जी रविवर्मा के चित्रो से प्रभावित होचुके थे और उनपर कविताएं भी की थी। अनुगामी कविसमाज ने भी अन्य सुन्दर विषयो को न पाकर परम्परागत विद्या, कमल, कोकिल, ऋतु आदि के अतिरिक्त रविवर्मा आदि के कलात्मक चित्रों को लेकर उनपर वर्णनात्मक कविताएं लिखीं। इनका एक संकलन १६०६ ई० मे 'कविताकलाप' के नाम से प्रकाशित भी हुआ। चित्रविषयक कविताएं प्रायः द्विवेदी-युग के प्रथम चरण मे ही लिखी गई। इन कविताओं मे कवियों ने चित्रकार और कहीं कहीं उन्हे प्रकाशित करने वाली 'सरस्वती' का भी उल्लेख किया।[3]

धार्मिक कविता के क्षेत्र मे उस युग के कवियों की मनोदृष्टि की नवीनता अनेक रूपों में व्यक्त हुई। पौराणिक अवतारवाद से प्रभावित भक्तिकाल ने राम और कृष्ण को ईश्वर के रूप में चित्रित किया था। बीसवीं शती ई० के विज्ञानयुग में उनके मानवीकरण की

---

१. उदाहरणार्थ मैथिलीशरण गुप्त 'किसान।'

२. ,, 'आंसू' आदि।

३. ,, 'वसन्तसेना', 'अर्जुन' और 'सुभद्रा' आदि कविताएं।

प्रक्रिया सर्वथा स्वाभाविक थी। इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमे 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' तथा 'पंचवटी' में कृष्ण और राम का मानवरूप में चरितचित्रण करने वाले अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त ने उन्हे अवतार न मानकर मनुष्य रूप में ही ग्रहण किया। उन कवियों के आत्मनिवेदन से यह स्वयं सिद्ध है कि उन्होने कृष्ण और राम को ईश्वर माना है।[1] उन्हे महापुरुष के रूप में चित्रित करने का कारण यह है कि आधुनिक युग का विज्ञानवादी संसार उन्हें ईश्वर स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत नहीं था और उन कवियों को साहित्य-जगत् को ऐसी वस्तु देनी थी जो अवतारवादियों तथा अनवतारवादियो को समान रूप से रोचक और उपयोगी हो। ईश्वर के रूप में राम और कृष्ण का चरित्र अंकित करने से एक हानि भी हुई है। 'रामचरित मानस' या 'सूरसागर' का पाठक ईश्वररूप राम और कृष्ण का अनुकरण करने का कभी प्रयास नहीं करता क्योकि वह मान बैठा है कि राम और कृष्ण ईश्वर थे अतएव उनके कृत्य भी अतिमानवीय थे और उन कृत्यों का अनुकरण करना मनुष्य के लिए असम्भव है। वाल्मीकि और व्यास की भाति राम और कृष्ण को महापुरुष के रूप में प्रतिष्ठित करके द्विवेदी-युग ने हिन्दी-जनता के समक्ष अनुकरणीय चरित्र का आदर्श उपस्थित किया।

द्विवेदी-युग के कवियों की दृष्टि अवतार तक ही सीमित नहीं रही। उन्होंने विश्व-कल्याण और लोकसेवा को भी ईश्वर का आदेश और उसकी प्राप्ति का साधन समझा। इस रूप के प्रतिष्ठापक कवियों ने यह अनुभव किया कि भगवान् का दर्शन विलास और वैभव की आनन्दभूमि मे रहकर नही किया जासकता, वह तो दीन दुखियों के प्रति सहानुभूति और उनके दुःख-निवारण मे ही मिल सकता है, यथा—

मै ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के सदन में॥
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मै था तुझे बुलाता संगीत में भजन में॥
मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मै बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥[2]

---

1. उदाहरणार्थ 'प्रियप्रवास' की भूमिका में हरिऔध जी ने कृष्ण को महापुरुष माना है, ईश्वर का अवतार नहीं। 'साकेत' के आरम्भ में मैथिलीशरण गुप्त भी कहते हैं—
'राम तुम मानव हो, ईश्वर नहीं हो क्या?

२. 'अन्वेषण'—रामनरेश त्रिपाठी
माधुरी भाग १, खंड १, संख्या १ पृ० ११।

दार्शनिक कवियों ने ईश्वर को किसी मन्दिर या अवतार में न देखकर और भावना के संकुचित घेरे से निकाल कर विराट् रूप में उसका दर्शन किया—

जिस मंदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है।
जिस मंदिर में रंक नरेश समान रहा है॥
जिसका है आराम प्रकृति कानन ही सारा।
जिस मंदिर के दीप इंदु, दिनकर औ तारा॥
उस मंदिर के नाथ को निरुपम निर्मम स्वस्थ को।
नमस्कार मेरा सदा पूरे विश्व गृहस्थ को॥[१]

अवतारों और देवी-देवताओं, राजाओं तथा अन्य ऐतिहासिक महापुरुषों, कल्पित नायक-नायिकाओं और प्रेम-कथाओं आदि का वर्णन करते २ हिन्दी-कवि थक गए थे। इसी समय आचार्य द्विवेदी जी ने उन्हें विषय-परिवर्तन का आदेश किया। उनके युग के कवियों की दृष्टि परम्परागत स्थान पर ही केन्द्रित न रह सकी और उन्होंने असाधारण मानवता तथा देवता से आगे बढ़कर सामान्य मानव समाज को भी अपनी रचनाओं का विषय बनाया। भारतेन्दु-युग ने भी सामाजिक कुरीतियों पर आक्षेप किया था और कहीं कहीं दलितों के प्रति सहानुभूति भी दिखाई थी। किन्तु वह प्रगति अपेक्षाकृत नगण्य थी। कवि द्विवेदी की भांति उनके युग के कवियों की सामाजिक भावनाएं भी चार रूपों में व्यक्त हुई समाज के सन्तप्त वर्ग के प्रति सहानुभूति, समाज को कुरीतियों से बचने और सन्मार्ग पर चलने का स्पष्ट उपदेश, उसकी बुराइयों का व्यंग्यात्मक उपहास तथा पतनोन्मुख समाज की, उसकी बुराइयों के कारण, कठोर भर्त्सना।

सहानुभूति के प्रधानपात्र अछूत, किसान, मजदूर, अशिक्षित नारियां, विधवा, भिक्षुक आदि हुए।[२] किसान और मजदूर की ओर विशेष ध्यान दिया। द्विवेदी जी ने 'अवध

१. 'नमस्कार'—जयशंकर प्रसाद,
इंदु कला ४, खंड २, पृ० १।

२. उदाहरणार्थ—

(क) खपाया किए जान मजदूर, पेट भरना पर उनका दूर।
उड़ाते माल धनिक भर पूर, मलाई लड्डू मोतीचूर॥
सुधरने में है जा के देर, अभी है बहुत बड़ा अंधेरा॥
अन्नदाता है धीर किसान, सिपाही दिखलाते हैं शान।
डराते उन्हें तमाचा तान, तुम्हें क्या सूझी है भगवान!
आंवले खट्टे मीठे वेर! किया है क्यों ऐसा अन्धेरा?
सनेही—'मर्यादा', भाग १५, संख्या २, पृष्ठ ४६।

के किसानों की बरबादी' नामक पुस्तक में जमींदार द्वारा किसानों पर किए गए अत्याचारों का चित्रण किया था, परन्तु वह पुस्तक गद्य में थी। कविता के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त के 'किसान' (१९१५ ई०), गयाप्रसाद शुक्ल सनेही के 'कृषक क्रन्दन' (१९१९ ई०) और सियारामशरण गुप्त के 'अनाथ' (१९१७ ई०) में किसान और श्रमजीवी के प्रति जमींदार, महाजन और पुलिस आदि के द्वारा किए गए घोर अत्याचारों का निरूपण हुआ। द्विवेदी-युग में की गई इस प्रकार की कविताएं आगामी प्रगतिशील काव्य की भित्ति के रूप में प्रस्तुत हुई।

कवियों की उपदेश-प्रवृत्ति मुख्यतः धर्मप्रचारकों की देन थी। ईसाइयों, ब्राह्मसमाजियों, आर्यसमाजियों, सनातनधर्मियों आदि ने अपने अपने मतों का प्रचार करने के लिए देश के विभिन्न स्थानों में घूम घूम कर धार्मिक उपदेश दिए। उनकी सफलता से प्रभावित हिन्दी साहित्यकारों ने भी इस शैली को अपनाया। मैथिली शरण गुप्त ने अपनी 'भारतभारती' में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को उनके धर्म कर्म की हीनदशा का परिचय कराते हुए उन्नत होने के लिए विशेष उपदेश दिया। इस उपदेश के पात्र कवि आदि भी हुए।[1]

सामाजिक अभिव्यक्ति का तीसरा रूप—व्यंग्यात्मक उपहास—तीन प्रकार के विषयों को लेकर उपस्थित किया गया। कहीं तो नई सभ्यता संस्कृति और नए आचार-विचार को अपनाने वाले नवशिक्षित बाबुओं की हंसी उड़ाई गई,[2] कहीं अपरिवर्तनवादी धार्मिक कट्टरपंथियों के समयविरुद्ध धर्माडम्बर पर हास्य मिश्रित व्यंग्य किया गया।[3] और कहीं

(ख) आज अविद्या मूर्ति सी हैं सब श्रीमतियाँ यहां।
दृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतियाँ यहां॥

गोपलशरणसिंह—सर०, भाग, २६, संख्या ६।

(ग) निराला जी की 'विधवा' और 'भिक्षुक' [परिमल में संकलित]

१. यथाः— ....

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।
....

मैथिलीशरण गुप्त—'इन्दु', कला ५, किरण १, पृष्ठ ६५।
छठे हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य-विविरण, भाग २, पृष्ठ ४३, ४४।

२ यथाः—१९०८ ई० की 'सरस्वती' में प्रकाशित नाथूराम शर्मा की 'पंचपुकार'।

३. „ लोग उतना ही बढ़ाते हैं तुम्हें रंग जितने ही बुरे हों चढ़ गए।
पर तिलक ! इस बात को सोचो तुम्हीं, इस तरह तुम घट गए या बढ़ गए

अपनी ही बात को आप्त एवं प्रधान मानने वाले साहित्यिकों, समालोचकों, सम्पादकों आदि पर आक्षेप ।[1]

भर्त्सनामय अभिव्यक्ति समाज के उन दिग्गजों के प्रति थी जो बार बार समझाने पर भी, समाज के अत्यन्त पतित होजाने पर भी, आंखें खोलने को प्रस्तुत न थे और अपनी हठधर्मी के कारण अशुभ पथ पर चल रहे थे। यह अभिव्यक्ति कहीं तो वाच्यप्रधान थी जिसमें सीधे शब्दों द्वारा समाज को फटकार बताई गई थी, यथा—

यह सुन मेरी विकट बोलियां चौंक पड़े चंडूल ।
पर जो हिन्दू बात कहेगा हिन्दी के प्रतिकूल ॥
उसे घर घर धिक्कारूंगा ।
किसी से कभी न हारूंगा ॥[2]

और कहीं व्यंग्यप्रधान थी जिसमें काकु आदि के सहारे हठधर्मियों पर तीव्र आक्षेप किया गया, यथा—

सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो, पुनर्जन्म के गीत गाते रहो ।
डरो कर्म प्रारब्ध के योग से, करो मुक्ति की कामना भोग से ।
नई ज्योति की ओर जाना नहीं, पुराने दिये को बुझाना नहीं ॥[3]

समाज की आलोचना रूप में प्रस्तुत इन कविताओं की अन्तःसमीक्षा करने पर कुछ बातें स्पष्ट होजाती हैं। उन कवियों का उद्देश समाज-सुधार था। वे चाहते थे कि समाज अपनी सभ्यता, संस्कृति और वातावरण के अनकूल केंचुल को छोड़ दे और मातृभाषा का सम्मान करे। साहित्यकारों के विषय में उनका मत था कि वे व्यर्थ की हठधर्मी और

इस तरह के हैं कई टीके बने, जो कि तन के रोग को देते भगा ।
जो न मन के रोग का टीकाबना, तो हुआ क्या लाभ यह टीका लगा ।
हरिऔध—'सरस्वती', भाग १६, संख्या २ ।

१. यथाः— कोकिल, तू क्यों 'कुऊ' 'कुऊ' रटता रहता है ?
करके उसमें सन्धि न क्यों कू-कू कहता है ?
आलोचक जी, रीति मुझे भी यह जँचती है ।
बात वही है और एक मात्रा बचती है ।
सुनिए वह घुग्घू यह विषय कैसा अच्छा जानता ।
है 'घु-ऊ' 'घु-ऊ' कहकर न जो 'घू-घू' मात्र बखानता ।
मैथिलीशरण गुप्त—'माधुरी', भाग १, खंड १, सं० ४ पृष्ठ ३१ ।

२. 'सरस्वती', १६०८ ई०, पृष्ठ २१४

३. 'सरस्वती', भाग ८, संख्या १ ।

खंडन-मंडन से दूर रहकर सच्चे ज्ञान का प्रसार करें। इस उद्देश की पूर्ति कवियों के लिए एक जटिल समस्या थी। समाज के धर्म के ठेकेदार पंडित लोग थे। शिक्षा और दंडविधान आदि सरकार के हाथ में था जो जनसाधारण को कूपमंडूक ही बनाए रखना चाहती थी। कवियो के पास केवल शब्द का बल था और बिना भय के प्रीति असम्भव थी। पीड़ितों के प्रति सहानुभूति और असन्मार्गियो को दिया गया नम्र उपदेश समाज को विशेष प्रभावित करने और सुधारने में अपर्याप्त था। इस न्यूनता की पूर्ति के लिए कवियों ने हास्य और व्यंग्य का सहारा लिया। जब कोई मार्गभ्रष्ट उपदेश और आदेशसे नहीं सुधरता तब कभी कभी उसका कठोर उपहास ही उसे सत्पथ पर लाने में समर्थ होता है। तत्कालीन समाज का संस्कार और रुचि इतनी गिर चुकी थी कि उसे जाग्रत करने के लिए कवियों को लट्ठमार-पद्धित का अवलम्बन करना पड़ा।

द्विवेदी-युग के कवियों की राजनैतिक भावना मुख्यतः तीन रूपों में व्यक्त हुई। नई पद्धति पर दी गई ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा, भारतीयों के विदेश गमन और विदेशियों के भारत में आगमन, विदेशी शासकों द्वारा देश के आर्थिक शोषण आदि ने कवियों को तुलनात्मक दृष्टि से आत्मसमीक्षा करने के लिए प्रेरित किया। फलस्वरूप उन्होंने देश की वर्तमान अधोगति के प्रति ग्लानि और क्षोभ का अनुभव किया। यह उनकी राजनैतिक भावना का पहला रूप था। इसकी अभिव्यक्ति तीन प्रकार से हुई। कहीं तो देश की दीनदशा का चित्रांकन करते हुए उसके प्रति सहानुभूति प्रकट की गई,[1] कहीं परिपीड़क शासकों आदि के अत्याचारों का निरूपण किया गया[2] और कहीं पतित तथा दीन अवस्था

---

१. उदाहरणार्थः— अन्न नहीं अब विपुल देश में काल पड़ा है।
पापी पामर प्लेग पसारे पाव पड़ा है।
दिन दिन नई विपत्ति मर्म सब काट रही है।
उदरानल की लपट कलेजा चाट रही है॥
'सरस्वती' भाग १४. संख्या १२।

२. यथा:—
नौकरोंकी शाही सभ्यता का गला काटती है,
गाधी के संगाती अंखियों में खटकत हैं।
भारत को लूट कूटनीति को उजाड़ रही,
न्याय के भिखारी ठौर ठौर भटकत हैं।
जेलों में स्वदेशभक्त हिंसाहीन सज्जनों को,
पेटपाल, पातकी, पिशाच पटकत हैं।
कौन को पुकारें अब शंकर बचालो हमें,
गोरे और गोरों के गुलाम अटकत हैं॥
नाथूराम शर्मा–'मर्यादा', भाग २२, सं० ३, पृ० १३४।

से मुक्ति पाने का प्रयास न करने वाले देशवासियों की भर्त्सना की गई।[1]

अन्धकारमय वर्तमान के कलंक दृश्य दिखाकर ही पीड़ित जाति को संतोष नहीं हुआ। क्षुब्ध मन को आश्वासन देने तथा कल्पित आनन्द लेने के लिए द्विवेदी युग के कवियों ने भारत का प्रेम पुरस्सर गौरव-गान किया। यह राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का दूसरा रूप था। इस रूप के चार प्रधान प्रकार थे। कहीं तो भारत के अतीत वैभव और महिमा के उज्ज्वल चित्र अंकित किए गए,[2] कहीं देवी-देवता के रूप में उसकी प्रतिष्ठा की गई,[3] कहीं देश के प्राकृतिक मनोहर दृश्यों का चित्रण किया गया[4] और कहीं सीधे शब्दों में देश के प्रति अतिशय प्रेम का प्रदर्शन हुआ।[5]

---

1. ज्ञान से, मान से, शक्ति से हीन हो,
दान से, ध्यान से, भक्ति से हीन हो।
आलसी भी महामूढ़ प्राचीन हो,
सोच देखो सभी से तुम्हीं दीन हो।
अंग को आसुओं से भिगोते रहो,
क्यों जगोगे अभी देश सोते रहो॥
रामचरित उपाध्याय—सर०, मार्च, १९१९ ई०, पृ० १९० ।

२. जगत ने जिसके पद थे छुए, सकल देश ऋणी जिसके हुए।
ललित लाभ कला सब थी जहां, अब हरे वह भारत है कहाँ ?
मैथिलीशरण गुप्त—सर०, भाग ११, संख्या १।

३ यथा:— नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकट मेखला रत्नाकर है।
नादिया प्रेमप्रवाह फूल तारे मंडन हैं,
बन्दीजन खगवृन्द शेषफन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं; बलिहारी इस वेष की,
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥
मैथिलीशरण गुप्त—'भारत-गीत।'

४. यथा:— जिसके तीनों ओर महोदधि रत्नाकर है।
उत्तर में हिमराशि रूप सर्वोच्च शिखर है॥
जिसमें प्रकृति विकास रम्य ऋतुक्रम उत्तम है।
जीव जन्तु फलफूल शस्य अद्भुत अनुपम है॥
पृथ्वी पर कोई देश भी इसके नहीं समान है।
इस दिव्य देश में जन्म का हमें बहुत अभिमान है॥
रामनरेश त्रिपाठी—सर० भाग १५, संख्या १।

५. यथा:— पुण्य भूमि है, स्वर्गभूमि है, जन्मभूमि है देश यही।
इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया में है जगह नहीं॥
रूपनारायण पांडेय—सर० भाग १४, सं० ६।

वर्तमान के दुःखमय और अतीत के सुखमय चित्र अंकित कर देना ही भविष्य को मंगलमय बनाने के लिए आप्त न था। कवियों ने अपने मन में भली भांति विचार करके देखा कि 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'। उनकी स्वतंत्रता की आकांक्षा ने राजनैतिक भावों की अभिव्यक्ति का तीसरा रूप धारण किया यह अभिव्यक्ति साधरणतया पांच प्रकार से हुई। कहीं तो अपना दुःख रो रोकर उससे मुक्त करने के लिए शासकों से प्रार्थना की गई,[1] कहीं यान्त्रिक यंत्रणा का अन्त करने के लिए देवी-देवताओं और आदर्श मानवों की दुहाई दी गई,[2] कहीं गिरी हुई दशा से ऊपर उठने के लिए देशवासियों को विनम्र प्रोत्साहन दिया गया,[3] कहीं अवनति से उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए मेल जोल की रागिनी गाई[4] और कहीं बाहुबल से क्रान्ति कर देने का सन्देश सुनाया गया।[5] भारत के गौरवमय अतीत, दीनहीन वर्तमान और आशापूर्ण भविष्य का सुन्दरतम चित्रांकन मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' में हुआ। वह स्वगत राष्ट्र भावना के कारण ही द्विवेदी-युग की लोकप्रियतम रचना हो सकी।

अपने पूर्ववर्ती युग की तुलना में द्विवेदी-युग की राजनैतिक या राष्ट्रीय कविता अतीत

---

१. यथा:— फरियाद लगाते जाएंगे, दुख दर्द सुनाते जाएंगे।
हम अपना धर्म निभाएंगे, तुम अपना काम करो न करो॥
सम्पूर्णानन्द—प्रभा, भाग २, संख्या १, पृष्ठ १६६।

२. यथा:— सत्याग्रह से अनुशासन की, असहयोग से दुःशासन की।
साम्यवाद से सिंहासन की, स्वतंत्रता से आश्वासन की॥
छिड़ी हुई है, कर्मक्षेत्र में शुचि संग्राम मचाने आवें।
यदि मानव होवें भूतल पर मानवता दिखलाने आवें॥
एक राष्ट्रीय आत्मा—प्रभा, वर्ष २, खंड १, पृष्ठ ३५, ३६।

३. यथा:— कहते हैं सब लोग हमें हम दीन हीन हैं भिक्षुक हैं।
कुछ भी हो हम लोग अभी अच्छे बनने के इच्छुक हैं॥
रूपनारायण पांडेय—'सरस्वती', भाग १४, सं० ६।

वा हम कौन थे क्या होगए अब और क्या होंगे अभी—
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।
मैथिलीशरण गुप्त—'भारत-भारती'।

४. यथा:— जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, मुसलमान, सिख, ईसाई
कोटिकंठ से मिलकर कह दो हम सब हैं भाई भाई॥
रूपनारायण पांडेय—'सरस्वती', भाग १४, सं० ६।

५. उदाहरणार्थ गद्यकाव्य के संदर्भ के उद्धृत राय कृष्णदास की 'चेतावनी', रामसिंह की 'स्वतंत्रता का मूल्य' आदि गद्यकाव्य तथा माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी आदि की कविताएं।

से वर्तमान, कल्पना से यथार्थ, उपदेश से कर्म, पर-प्रार्थना से स्वावलम्बन, निराशा तथा अविश्वास से आशा तथा विश्वास और दीनतापूर्ण नम्रता से क्रान्तिपूर्ण उद्‌गार की ओर अग्रसर होती गई है। उस युग के पूर्वार्द्ध में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पांडेय आदि का स्वर नम्रतापूर्ण रहा किन्तु उत्तरार्द्ध मे माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, 'एक राष्ट्रीय आत्मा' आदि स्वतंत्रता-आन्दोलन के अनुभवी कार्यकर्ता कवियों का स्वर क्रान्तिारी उद्‌गारों से भरा हुआ है।

द्विवेदी-युग में प्रकृति पर लिखित कविताओं का पांच दृष्टियों से वर्गीकरण किया जा सकता है। भाव की दृष्टि से प्रकृति का वर्णन दो रूपों में किया गया एक तो भाव चित्रण और दूसरा रूप चित्रण। भावांकन ज्ञानतत्वप्रधान था। प्रकृति के सूक्ष्म पर्यवेक्षण और दृश्यांकन द्वारा कवि ने एक दार्शनिक की भांति उसके रहस्यों का उद्‌घाटन किया, यथा:—

वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती— जीवन है भार।
आह! पावस नद के उद्‌गार
काल के बनते चिन्ह कराल,
प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल।[१]

रूप चित्रण में कलातत्व की प्रधानता थी। इसमें कवि ने चित्रकार की भाँति प्रकृति के ऐन्द्रिक दृश्यांकन द्वारा उसका बिम्ब ग्रहण कराने का प्रयास किया यथा:—

अचल के शिखरों पर जा चढ़ी
किरण पादप शीश विहारिणी।
तरणि-बिम्ब तिरोहित हो चला
गगनमंडल मध्य शनैः शनैः॥[२]

सौन्दर्य की दृष्टि से प्रकृति के मुख्यतया दो रूप अंकित किए गए, एक तो उसकी मधुरता और कोमलता का दूसरा उसकी भयंकरता और उग्रता का। इन दोनों चित्रों की भिन्नता का

१. 'अनित्य जग'—सुमित्रानन्दन पंत, १९२४ ई०।
'आधुनिक कवि', पृष्ठ ३३।
२. 'प्रियप्रवास', सर्ग १, पद ५।

आधार कवि या उसके वर्णित पात्र के स्थायी भाव की भिन्नता ही है। जहां कवि या उसके कल्पित पात्र के हृदय में मृदु भाव की प्रधानता रही है वहां उसने प्रकृति के रमणीय रूपों का ही निरूपण किया है, उदाहरणार्थ-—

> किरण तुम क्यों बिखरी हो आज, रंगी हो तुम किसके अनुराग ?
> स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान, उड़ाती हो परमाणु पराग।
> धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
> किसी अज्ञात विश्व की विकल वेदना दूती सी तुम कौन ?[1]

जहां कवि या उसके कल्पित पात्र का कोमल सौन्दर्यस्वप्न टूट गया है और उसने कठोर तर्क द्वारा प्रकृति की नाशकारी क्रान्ति का भावन किया है, जहां उसके हृदय में रति के स्थान पर घृणा, भय या क्रोध का उदय हुआ है, वहां उसने प्रकृति के उग्र और भयकर रूप का ही निरूपण किया है, उदाहरणार्थ पंत का 'निष्ठुर परिवर्तन'।[2] विभाव की दृष्टि से प्रकृति चित्रण के दो रूप थे—उद्दीपन और आलम्बन। उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किसी रस या भाव की अनुकूल भूमिका के निर्माण के लिए किया गया, जैसे मैथिलीशरण गुप्त की 'पंचवटी' के आरम्भ में लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा के स्थायी भाव रति की सम्यक् अभिव्यंजना करने के लिए तदनुकूल उद्दीपन विभाव का चित्रण अपेक्षित था। यदि किसी साधारण परिस्थिति में ही लक्ष्मण अपने काम-संयम का परिचय देते तो उसमें उनका कोई विशेष गौरव न होता। व्यभिचार की प्रत्येक सुविधा होते हुए भी उन्होंने इन्द्रियनिग्रह किया यह उनके चरित्र की महिमा थी। इन्हीं भावों की सुन्दरतर मार्मिक अभिव्यक्ति के लिए उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण किया गया। जहाँ कवि या कवि-कल्पित पात्र ने प्रकृति को तटस्थ भाव से देखा है, वहां उसका चित्रण आलम्बन-रूप में किया है, जैसे 'पथिक' का आरम्भिक पद।

निरूपित और निरूपयिता के सम्बन्ध की दृष्टि से भी प्रकृति-चित्रण दो प्रकार से हुआ—दृश्य-दर्शक-सम्बन्ध-सूचक और तादात्म्य-सूचक। जहाँ वस्तूपस्थापन-पद्धति पर चलते हुए कवि या उसके कल्पित पात्र ने अपने को प्रकृति से भिन्न मान कर उसका रूपांकन किया है, वहां दृश्यदर्शक-सम्बन्ध की व्यंजना हुई है, यथा:—

---

१. 'किरण', जयशंकरप्रसाद
'झरना', पृष्ठ १४।

२. 'आधुनिक कवि' २।

कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम, गृहस्थ-निवास बने थे।
खपरैलों में कद्दू करेलों की बेल के खूब तनाव तने हुए थे॥
जल शीतल अन्न जहाँ पर पाकर पक्षी घरों में घने हुए थे,
सब ओर स्वदेश, स्वजाति, समाज भलाई के ठान ठने हुए थे॥[१]

जहां बाह्य जगत को अन्तर्जगत् का प्रतिबिम्ब मानकर कवि या कवि कल्पित पात्र ने प्रकृति की अभिव्यक्ति में अपने हृदय की अभिव्यक्ति का दर्शन किया है, वहां तादात्म्य-सम्बन्ध की व्यंजना हुई है यथा:—

चातक की चकित पुकारें श्यामा ध्वनि तरल रसीली।
मेरी करुणार्द्र कथा की टुकड़ी आंसू से गीली॥[२]

विधान की दृष्टि से द्विवेदी-युग की कविता में प्रकृति चित्रण प्रस्तुत और अप्रस्तुत दो रूपों में हुआ। प्रस्तुत विधान की विशेषता यह थी कि उसमें प्रकृति चित्रण कवि का निश्चित उद्देश था। जहाँ प्रकृति आलम्बन रूप में अंकित की गई वहां तो वह वर्ण्य विषय थी ही किन्तु जहां वह उद्दीपन रूप में अंकित हुई वहां भी वास्तविक वर्ण्य विषय उपस्थित था।[३] अप्रस्तुत-विधान की विशेषता यह थी कि उसमें प्रकृति-चित्रण कवि का उद्देश नहीं था। प्रकृति-चित्रण व्यंजक और उपस्थित मुख्य विषय व्यंग्य था। लक्षणा, उपमा, रूपक आदि की सहायता से प्रस्तुत विषय में रमणीयता लाने के लिए ही उसकी योजना की गई, उदाहरणार्थ:—

देखा बौने जलनिधि का शशि छूने को ललचाना।
वह हाहाकार मचाना फिर उठ उठ कर गिर जाना॥[४]

रीतिकालीन शृंगारिक कविताएं प्रायः परप्रसन्नता-साधक, वस्तुवर्णनात्मक, वासनाप्रधान, सीमित और नखशिख-वर्णन नायक-नायिकाभेद आदि के रूप में लिखी गई थीं। उनका यह प्रवाह भारतेन्दु-युग तक चलता रहा। द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन ने रतिव्यंजना की इस धारा को सहसा रोक दिया। परन्तु मानव-मन की सहज प्रेम-प्रवृत्ति को रोकना असम्भव था। द्विवेदी युग के कवियों की प्रेम भावना परिवर्तित और संस्कृत रूप में व्यक्त हुई। यह द्विवेदी जी के आदर्श का प्रभाव था। उनके युग की प्रेम प्रधान कविताओं में घोर शृंगारिकता, असंयम, व्यक्तिगतत्व, वासना आदि के स्थान पर शिष्टता, संयम, व्यापकता,

---

१ रूपनारायण पांडेय—'प्रभा', भाग १, पृष्ठ ३३७।
२. जयशंकर प्रसाद—'आंसू'।
३. यथा:—रामचन्द्र शुक्ल का 'हृदय का मधुर भार' और प्रियप्रवास' का प्रकृति-वर्णन।
४. 'आंसू'—जयशंकर प्रसाद।

लोकपावनत्व आदि का समावेश हुआ। 'प्रियप्रवास' की राधा या साकेत' की उर्मिला का प्रेमांकन उपयुक्त कथन की पुष्टि के लिए पर्याप्त है। आलम्बन की दृष्टिसे यह प्रेमनिरूपण तीनप्रकार का हुआ—लौकिक अलौकिक और मिश्र। उदाहरणार्थ सुमित्रानन्दन पंत की 'ग्रन्थि' में प्रेमपात्र लौकिक, निराला की 'तुम और मैं' में अलौकिक एवं प्रसाद के 'आँसू' में कहीं लौकिक और कहीं अलौकिक भी है। आश्रय की दृष्टि से प्रेमव्यंजना दो प्रकार की हुई—वस्तुवर्णनात्मक और आत्माभिव्यंजक। 'प्रेम-पथिक' (१६१४ ई०) 'मिलन' (१६१७ ई०) आदि में रति के आश्रय कवि के अतिरिक्त व्यक्ति हैं, अतः ये काव्य वस्तु-वर्णनात्मक हैं। 'ग्रन्थि' (१६२० ई०), 'आँसू' (१६२५ ई०) आदि में रति के आश्रय स्वयं कवि ही हैं, अतएव ये कविताएँ आत्माभिव्यंजक हैं। स्वरूप की दृष्टि से भी द्विवेदी-युग की कविता में प्रेम का दो प्रकार से चित्रण किया गया – विवाहित और अविवाहित प्रेम। विवाहित प्रेम का आधार धार्मिक और समाजानुमोदित था, यथा 'पथिक' और 'मिलन' में। अविवाहित प्रेम का आधार प्रथम दर्शन में आत्मसमर्पण था जिसका धर्म और समाज से कोई सम्बन्ध न था, यथा 'ग्रन्थि' और 'आँसू' में। काव्यविधान की दृष्टि से द्विवेदी-युग की प्रेमप्रधान कविता के तीन रूप प्रस्तुत हुए—प्रबन्ध, मुक्तक और प्रबन्ध-मुक्तक। प्रबन्ध-काव्यों में किसी कथानक के सहारे नायक-नायिकाओं के प्रेम की व्यंजना की गई, जैसे 'प्रियप्रवास', प्रेमपथिक', 'मिलन', 'पथिक' आदि। पुस्तकों में किसी आख्यानक के बिना ही प्रेमभाव के चित्र अंकित किए गए, उदाहरणार्थ 'प्रेम'[१], 'खिला हुआ प्रेम'[२] आदि। प्रबन्ध-मुक्तकों की रचना उपयुक्त दोनों विधानों के समन्वित रूप में हुई, यथा 'आंसू' जिसमें कहीं तो अनेक पद प्रबन्ध की भांति परस्पर सम्बद्ध है और कहीं मुक्त।

उपयुक्त विषयों के अतिरिक्त परप्रशंसा, आक्षेप आदि को लेकर भी द्विवेदी-युग में कविताएँ लिखी गईं किन्तु उनकी समीक्षा की तादृश अपेक्षा नहीं। उस युग के उत्तरार्द्ध में रचित रहस्यवादी कविताओं के तीन प्रधान रूप स्पष्ट लक्षित होते हैं। कहीं तो कवियों ने उपनिषदों की दार्शनिकता के आधार पर अपने आराध्य के सर्वव्यापक रूप का दर्शन किया,[३] कहीं भक्तिभावना की भूमिका में अपने रहस्यात्मक उद्गार प्रगट किए[४] और

---

१. गोपालशरणसिंह—'सरस्वती', भाग १७, सं० १, पृष्ठ १२०।

२. जयशंकर प्रसाद—'झरना', पृष्ठ २४ आदि।

३. यथा:— तेरे घर के द्वार बहुत हैं किससे होकर आऊं मैं ?
मैथिलीशरण गुप्त —'सरस्वती', भाग १६, खण्ड २, पृष्ठ २२७।

४. यथा:— अरे अशेष ! शेष की गोदी तेरा बने बिछौना सा।
आ मेरे आराध्य ! खिला लूँ मैं भी तुझे खिलौना सा॥
माखनलाल चतुर्वेदी–'प्रभा', वर्ष ३, सं० ८ पृष्ठ १

कहीं बौद्धवाद में विश्वास करने वाले कवियों ने निराशा और दुःख की व्यंजना की।[1]

भाषा की अव्यवस्था के कारण द्विवेदी-युग के प्रथम चरण में काव्यकला की दृष्टि से उच्चकोटि की रचनाएं नहीं हुईं। इतिवृत्तात्मक पद्यों में नवीन विषयों और छन्दों को लेकर द्विवेदी जी और उनके शिष्यों ने खड़ीबोली को माजने का प्रयास किया जिसका अंशत: सफल रूप 'कविताकलाप' और पूर्णत: सफल रूप 'जयद्रथवध' तथा 'भारत-भारती' में व्यक्त हुआ। द्वितीय चरण विशेषत: प्रबन्धकाव्यों का काल था। उसमें 'जयद्रथवध' (१६१० ई०), 'प्रेमपथिक' (१६१४ ई०), प्रिय-प्रवास' (सं० १६७१) आदि के अतिरिक्त पद्यप्रबन्धों की संख्यातीत रचनाएँ हुईं। तृतीय चरण में प्रबन्ध, मुक्तक, गीत, गद्यकाव्य आदि सभी लिखे गए। यद्यपि 'पंचवटी' (१६८२ वि०), 'साकेत', 'ग्रन्थि' (१६२० ई०) आदि प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्यों की रचना द्विवेदी-युग के चतुर्थ चरण में ही हुई तथापि उस काल में इन काव्यों के रचयिताओं में गीत-रचना की प्रवृत्ति ही विशेष बलवती थी। मैथिलीशरण गुप्त के 'स्वयमागत' आदि, सुमित्रानन्दनपंत के 'पल्लव' की अधिकांश कविताएं जयशंकर प्रसाद के 'कानन-कुसुम', 'झरना', 'आंसू' आदि उनकी गीतभावना के ही द्योतक हैं।

द्विवेदी-युग की कविता का इतिहास आधुनिक हिन्दी-कविता का इतिहास है। द्विवेदी-युग की कविता नीरस वर्णनात्मकता से आरम्भ होकर अन्त में सरस और कलात्मक ध्वन्यात्मकता तक पहुँची है। इस विकास का मुख्य श्रेय द्विवेदी जी को ही है। युग के पूर्वार्द्ध की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और व्यक्तिगत प्रचारणा उत्तरार्द्ध में कल्पनात्मकता, ध्वन्यात्मकता और राजनैतिक प्रचारणा के रूप में परिणत हो गई है। उस युग की अधिकांश. कविताओं में रति, उत्साह, हास्य और करुणा की ही व्यंजना हुई है। रति का बहुत कुछ विवेचन ऊपर किया जा चुका है। उत्साह के आलम्बन दो प्रकार के थे एक तो ऐतिहासिक वीर जिनको लेकर 'जयद्रथवध', 'राणा प्रताप का महत्व', 'मौर्यविजय', 'वीर पंचरत्न' आदि की रचना हुई और दूसरे वे राष्ट्रीय सत्याग्रही वीर थे जिनके उत्साह को लेकर माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, 'एक राष्ट्रीय आत्मा' आदि ने क्रान्तिभावना पूर्ण गीतों की रचना की।

---

१. यथा:— सुप्रभात मेरा भी होवे, इस रजनी का दुःख अपार,
मिट जावे जो तुमको देखूं, खोलो प्रियतम! खोलो द्वार।
जयशंकर प्रसाद—'झरना', पृष्ठ ७।

'सेवक श्याम'[1], महादेव प्रसाद,[2] जगन्नाथदास,[3] कान्तानाथ पांडेय,[4] ईश्वरीप्रसाद शर्मा[5] आदि ने हास्यरस की पर्याप्त रचनाएं कीं। इन कविताओं में उच्च कोटि का हास्य नहीं है और ये प्रायः अपरिष्कृत रुचि के पाठकों का ही मनोरंजन कर सकती हैं। करुणा की व्यंजना चार रूपों में हुई। 'जयद्रथवध', 'ग्रन्थि', 'आंसू' आदि में मृत्युजन्य शोक करुणरसमें परिणत हुआ। 'प्रिय-प्रवास' की राधा और 'साकेत' की उर्मिला की विरह-वेदना का करुण चित्र विप्रलम्भ-शृंगार के अन्तर्गत आएगा। किसान, मजदूर आदि पीड़ित वर्ग के प्रति सहानुभूति के रूप में भी करुणा की अभिव्यक्ति की गई। विश्वव्यापिनी वेदना को लेकर लिखी गई जयशंकरप्रसाद, रामनाथ सुमन आदि की कविताओं में गौतम बुद्ध की करुणा का दर्शन हुआ।

आचार्य द्विवेदी जी ने कविता में चमत्कार लाने के लिए हिन्दी-कवियों को बारम्बार अनुबुद्ध किया।[6] उनके युग की कविताओं में चमत्कार का प्रतिपादन, अभिधा, लक्षणा, व्यंजना, मधुमती कल्पना, चित्रात्मकता, वचन-विदग्धता, अलंकार-योजना आदि के द्वारा किया गया। ध्वनि को उत्तम काव्य मानने का यह अर्थ नहीं है कि वाच्यप्रधान कविताओं में काव्य-सौन्दर्य होता ही नहीं। द्विवेदी-युग की आरम्भिक कविताएं इतिवृत्तात्मक, नीरस और कलाहीन हैं—इसका यह अर्थ नहीं है कि उस युग की सभी अभिधा-प्रधान रचनाएं कवित्वरहित हैं। रामचन्द्र शुक्ल आदि की 'हृदय का मधुर भार' आदि यथार्थवादी रचनाएँ वाच्यात्मक कविता की ही कोटि में आती हैं। आद्योपान्त कवित्वमय न होने पर भी उनके अनेक पद काव्यानन्द की अनुभूति कराने में समर्थ हैं, यथाः—... ... ...

हाक पर एक साथ पंखों ने सर्राटे भरे,
हम मेंड़ पार हुए एक ही उछाल में।

या

---

१. 'दिलदीवानी'—१६०३ ई०।
२. 'भटकीरा-युद्ध'—१६०६ ई०।
३. 'दयानन्द-लीला'—सं० १६६३।
४. 'चोंच-चालीसा'—सं० १६७६।
५. 'चना-चबेना'—सं० १६८१।
६. (क) "जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं वह कविता ही नहीं।"
'रसज्ञरंजन', पृष्ठ ८।
(ख) 'शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परमावश्यक है। यदि कविता में चमत्कार नहीं—कोई विलक्षणता नहीं तो उससे आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती।'
'रसज्ञरंजन', पृष्ठ २६।

चलते हैं संग में उमंग भरे साथी सब,
छेड़ किसी खूसट को अट्टहास करते।

उस युग के प्रबन्ध काव्यों, विशेषकर 'साकेत' और 'पंचवटी' में प्रयुक्त पात्रों के कथोपकथन, में लक्षणा, व्यंजना, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि के आधार पर वक्रोक्ति-सौन्दर्य की प्राभाविक सृष्टि हुई है, यथा--

उर्मिला बोली--'अजी तुम जग गये!
स्वप्न निधि से नयन कब से लग गये?,
'मोहनी ने मंत्र पढ़ जब से छुआ,
जागरण रुचिकर तुम्हें जब से हुआ।'[1]

द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में लिखी गई मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, माखनलाल चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि की कविताओं में अप्रस्तुत-विधान, मानवीकरण, नाटकीयता, ध्वन्यर्थ-व्यंजना संगीतात्मकता, भावमयी कल्पना, मार्मिक अनुभूति आदि के सफल सन्निवेश के कारण काव्यकला का रमणीय रूप प्रस्तुत हुआ। द्विवेदी-युग की कविता विषय, भाषा, छन्द और अर्थ की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-काव्य-भवन के भूतल से चलकर शिखर-तल पर पहुँच गई—यही उसकी महिमा है।

नाटक

यह कहना नितान्त असंगत है कि द्विवेदी-युग के महान् साहित्यकारों ने नाटकरचना की ओर ध्यान नहीं दिया। उस युग के लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अराजकता-युग में ही 'प्रद्युम्न-विजय-व्यायोग' (१८९३ ई०) और 'रुक्मिणी-परिणय' (१८९४ ई०) की रचना करके नाटककार की शक्ति का अनुभव किया था। अपने को उस विधान के अयोग्य समझकर ही उन्होंने उस पथ से विराम ग्रहण कर लिया। रामनारायण मिश्र,[2] ब्रजनन्दनसहाय,[3] बालकृष्ण भट्ट,[4] विजयानन्द त्रिपाठी,[5] लोचनप्रसाद पांडेय,[6] मिश्रबन्धु,[7] मैथिलीशरण गुप्त,[8] विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक,[9] चतुरसेन शास्त्री,[10]

१. 'साकेत', पृष्ठ १३-१४ (प्रथमावृत्ति)
२. 'जनकबाड़ा-दर्शन', १९०९ ई० और 'कंसवध', १९१० ई०
३. 'उद्धव', १९०९ ई०
४. 'शिक्षादान', सं० १९६६।
५. 'कविजय-नाटक', १९१२ ई०।
६. 'साहित्यसेवा', १९१४ ई०
७. 'नेत्रोन्मीलन', सं० १९७१ और 'पूर्वभारत', सं० १९७९।
८. 'चन्द्रहास' सं० १९७२, 'तिलोत्तमा', सं० १९७३ और 'अनघ', सं० १९८२।
९. 'भीष्म', १९१८ ई० और 'अत्याचार का परिणाम', सं० १९७८।
१० 'उत्सर्ग', द्वितीयावृत्ति सं० १९८६।

बेचनशर्मा उग्र,[१] वियोगीहरि,[२] प्रेमचन्द,[३] जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी,[४] सुदर्शन,[५] रामदास गौड़[६] आदि अन्य साहित्यकारों ने भी अपनी नाटकरचना-शक्ति की परीक्षा की और अपने को असफल पाया।

द्विवेदी-युग के बहुसंख्यक नाटककारों ने विविध-विषयक नाटकों की रचना कर के विपन्न हिन्दी साहित्य को सम्पन्न बनाने का प्रयास किया। तोताराम,[७] बल्देवप्रसाद मिश्र[८], किशोरीलाल गोस्वामी,[९] गौरचरण गोस्वामी,[१०] रूपनारायण पांडेय,[११] गोविन्द शास्त्री दुगवेकर[१२], माखनलालचतुर्वेदी,[१३] जमुनादास मेहरा,[१४] कृष्णचन्द्र जेबा,[१५] तुलसीदत्त शैदा,[१६] गोविन्द वल्लभ पन्त[१७] आदि ने अनेक धार्मिक और पौराणिक नाटकों की रचना की। जमुनादास मेहरा,[१८] कृष्णचन्द्र ज़ेबा,[१९] अब्दुल समी साहब[२०] आदि ने सामाजिक नाटक लिखे। ऐतिहासिक नाटक के क्षेत्र में गोपालराम गहमरी,[२१] नरोत्तम व्यास,[२२] बदरीनाथ

---

१. 'महात्मा ईसा', सं० १९७९।
२. 'छद्मवियोगिनी नाटिका', सं० १९७९।
३. 'संग्राम' सं० १९७९ और 'कर्बला', सं १९८१
४. 'मधुर-मिलन' स० १९८०।
५. 'अंजना', सं० १९८०।
६. 'ईश्वरीय न्याय', सं० १९८२।
७. 'सीता-स्वयंवर-नाटक', सं' १९६०।
८. 'प्रभात-मिलन', सं० १९६० और 'नन्दबिदा'।
९. 'नाट्यसम्भव', १९०४ ई०
१०. 'अभिमन्युवध', १९०६ ई०
११. 'कृष्णलीला नाटक', १९०७ ई०।
१२. 'सुभद्राहरण नाटक', १९१० ई०।
१३. 'कृष्णार्जुन-युद्ध', १९१८ ई०।
१४. मोरध्वज', १९१९ ई० कृष्णसुदामा', १९२१ ई०, 'भक्त चन्द्रहास', १९२१ ई० विश्वामित्र', १९२१ ई०, 'देवयानी', १९२२ ई० और 'विपद कसौटी', १९२३ ई०।
१५. 'धर्माधर्म युद्ध', १९२२ ई०।
१६. 'भक्त सूरदास', सं० १९८० और 'जनकनन्दिनी', सं० १९८१
१७. 'वर माला' सं० १९८२।
१८ 'हिन्दू', सं० १९७१, 'कन्या विक्रय', १९२३ ई० और 'पाप परिणाम', १९२४ ई०
१९. 'गरीब हिन्दुस्तान', सं० १९७९ और 'ज़ख़्मी हिन्दू', १९२४ ई०।
२०. 'कलियुग सती', १९२३ ई० 'दुखी भारत', सं० १९८२ और 'मदिरा देवी', सं० १९२५ ई०।
२१. 'बनवीर नाटक', १९१३ ई०।
२२. 'महाराणा प्रताप नाटक', १९१२ ई०

भट्ट,[1] जयशंकरप्रसाद[2] आदि की देन विशेष महत्वपूर्ण है। कृष्णचन्द्र ज़ेबा,[3] और अब्दुल समी साहब आदि ने राजनैतिक तथा जयशंकरप्रसाद[4] ने दार्शनिक नाटको की रचना की ओर भी ध्यान दिया। सैकड़ों अन्य नाटककारों ने भी बहुसंख्यक मौलिक तथा अनूदित नाटक भी लिखे तथापि द्विवेदीयुग का नाटक-साहित्य और विषयों की अपेक्षा बहुत कम उन्नति कर सका।

द्विवेदीयुग के नाटकारों की असफलता के अनेक कारण थे। उस समय भाषा का स्वरूप निश्चित हो रहा था। लेखकों को अनायास ही यशस्वी बन जाने की चाह थी। कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना आदि अपेक्षाकृत कम कष्टसाध्य थे। अतः अधिकांश लेखकों का उस ओर झुक जाना सर्वथा स्वाभाविक था। नाटक अधिक दुस्साध्य था। उस समय महत्वाकांक्षी या यशोभिलाषी नाटककार के लिए यह अनिवार्य था कि वह उपयोगिता तथा कला की दृष्टि से सुन्दर नाटक लिखे और विभिन्न स्थानों में उसका सफल अभिनय भी किया जाय। अभिनय की आवश्यकता इसलिए थी कि तत्कालीन हिन्दी-पाठक-समाज ने नाटक को सर्वांश में ही दृश्यकाव्य मान रखा था। साधारण कोटि के नाटकों को पढ़ने में उन्हें कोई आनन्द नहीं मिल सकता था। उन्होंने नाटक-कम्पनियों द्वारा अभिनीत नाटकों को देखने में ही अधिक मनोरंजन समझा। इन कठिनाइयों के कारण श्लाघ्य नाटककार होना अतिकष्टसाध्य था और उदीयमान लेखक इतनी कठोर साधना के लिए प्रस्तुत न थे। ऊपर कहा जा चुका है कि मैथिलीशरण गुप्त आदि ने नाटक के क्षेत्र में अपनी शक्ति की परीक्षा की थी और हार मानकर बैठ गए थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि यदि वे नाटकरचना में पर्याप्त परिश्रम करते तो भी सफल नाटककार न हो सकते। यह सत्य है कि कविकर्म का प्रधान कारण प्रतिभा ही है, किन्तु उस प्रतिभा के समुचित विकाश के लिए विस्तृत अध्ययन और अनवरत अभ्यास की भी आवश्यकता है। मैथिलीशरण गुप्त ने कवि बनने के लिए, प्रेमचन्द और विश्वम्भरनाथ शर्मा ने कहानीकार बनने के लिए, रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचक और निबन्धकार बनने या द्विवेदी जी ने युग-निर्माण करने के लिए जितना घोर परिश्रम किया उतना ही परिश्रम यदि वे नाटककार बनने के लिये करते तो नाटककार हो सकते थे। समस्या तो यह थी कि नाटकरचना के लिये नाट्यशालाओं में जाकर नाट्यकलाविशारदों की

१. 'चन्द्रगुप्त नाटक', १६१५ ई० और 'दुर्गावती', सं० १६८२।

२. 'राज्यश्री', १६१५ ई०, 'विशाख', सं० १६७८, 'अजातशत्रु', सं० १६६७ और 'जनमेजय का नागयज्ञ', १६२२ ई०।

३. 'भारत-दर्पण' या 'कौमी तलवार'

४. 'कामना' १६२४ ई०।

सेवा मे रह कर उसका अध्ययन करना अनिवार्य था। कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना या युग की रचना तो अपने स्थान पर बैठे बैठे हो गई और जहा कहीं पथ-प्रदर्शक के सदुपदेश की आवश्यकता हुई वहाँ पत्रव्यवहार से भी काम चल गया।

उस युग मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भाँति कोई भी पथप्रदर्शक सिद्ध नाटककार नहीं हुआ। युगनायक द्विवेदी का प्रभाव उस युग के केवल भावपक्ष पर ही नहीं अभाव पक्ष पर भी पड़ा है। उन्होंने कविता, कहानी, जीवनचरित, निबन्ध, आलोचना आदि विषयों की ओर ध्यान दिया और फलस्वरूप उनके शिक्षित, प्रेरित या प्रोत्साहित कवियों तथा लेखकों ने उन विषयो की सुन्दर रचनाएँ की। परन्तु नाटक के क्षेत्र मे केवल 'नाट्यशास्त्र' नामक नन्हीं सी पुस्तिका लिखने के उपरात उन्होंने उसकी ओर फिर कोई ध्यान नहीं दिया। अपने व्यंग्यचित्रो में उन्होने हिन्दी-साहित्य के उस अंग की हीनता की ओर संकेतमात्र किया था। नेता की उदासीनता के कारण उसके अनुगामी साहित्यकारों ने नाटकरचना को विशेष महत्व नही दिया। महान् साहित्यकारों के विषय में ऐसा भी प्रतीत होता है कि उन्होंने अपने विशिष्ट विषयों से अवकाश पाने पर नाटककार का भी यश लूटने या मानसिक विलास की अभिव्यक्ति करने के लिए नाटकों की रचना की। अनूदित और मौलिक उपन्यासों की आकर्षक कथावस्तु और शैली की नवीनता ने पाठको के हृदय पर अधिकार कर लिया। एक ओर तो एल्फिन्सटन ड्रैमेटिक क्लब, न्यू अल्फ्रेड आदि कम्पनियों द्वारा खेले जाने वाले नाटकों के दृश्यो की रमणीयता सुघर पात्रों की मनोहर वेष भूषा तथा कलाकौशल एवं अद्भुतरस के विलक्षण व्यापारों का जनसाधारण पर अनिवार्य प्रभाव पड़ रहा था और दूसरी ओर हिन्दी-संसार मे नाटकमंडलियों की नितान्त कमी थी। नाट्यकला मे अनभिज्ञ कोरे आदर्शवादी हिन्दी-साहित्यकारों ने मिथ्या गुरुतानुभूति के कारण नाटक-कम्पनियों मे सम्पर्क रखना अपमानजनक समझा और वे उनके समान आकर्षक वस्तु जनता के सामने न रख सके। कृष्णचन्द्र ज़ेबा, तुलसीदत्त शैदा, नारायणप्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक आदि अभिनयकला से अभिज्ञ होते हुए भी सस्ती ख्याति के भूखे होने के कारण उच्च कोटि के नाटक न लिख सके। वास्तविक अपेक्षा थी साहित्यिक भाव और भाषा तथा कम्पनियों की अभिनयकला के सामंजस्य की। नाटक सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाओं के अभाव के कारण भी नाटक-रचना को प्रोत्साहन नहीं मिला।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन ने नाटको की कमी की ओर ध्यान दिया। उसमें एक प्रस्ताव हिन्दी-सभाओंसे नाटकों का अभिनय कराने के विषय में भी पास हुआ।[१] सं० १९७२ में हिन्दू विश्वविद्यालय के उत्सव के अवसर काशी की 'नागरी नाटक

१. द्वितीय-साहित्य-सम्मेलन का कार्य विवरण।

मंडली' ने 'महाभारत नाटक' का सुन्दर अभिनय किया।[1] उन्हीं दिनों अयोध्या के महन्त राममनोहरदास जी की मंडली ने स्थान स्थान पर घूमकर धार्मिक नाटक खेले। उसकी प्रधान विशेषता थी कथोपकथन में संस्कृत-प्रधान हिन्दी का प्रयोग।[2] साहित्य-सम्मेलन के अनेक अवसरों पर सफलतापूर्वक नाटक खेले गए, किन्तु यह सब प्रयास नगण्य था।

विधान और शैली की दृष्टि से द्विवेदी-युग में साहित्यिक एवं असाहित्यिक नाटकों के अनेक रूप दिखाई पड़ते हैं। साहित्यिक सौन्दर्य न होनेके कारण रासलीलाओं, रामलीलाओं कीर्तनों, नौटंकियों, भाणों आदि की समीक्षा यहाँ पर अनपेक्षित है। रूपनारायण पांडेय,[3] सत्यनारायण कविरत्न[4] आदि के अनूदित नाटकों के कलात्मक सौन्दर्य का श्रेय उनके मूल लेखकों--गिरीशबाबू, क्षीरोदप्रसाद, विद्याविनोद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, द्विजेन्द्रलालराय, भवभूति आदि को है। अनुवादकों का गौरव मौलिक भावों की ठीक अभिव्यञ्जना और भाषा की सफाई में ही है। साहित्यिक नाटकों के मुख्य चार प्रकार थे--सामान्य नाटक, गम्भीर एकांकी नाटक, प्रहसन और पद्यरूपक।

नाट्यकला और शैली की दृष्टि से सामान्य नाटकों की तीन कोटियाँ थीं। नारायणप्रसाद बेताब[5], राधेश्याम कथावाचक,[6] कृष्णचन्द्र ज़ेबा,[7] तुलसीदत्त शैदा[8] आदि के नाटकों पर तत्कालीन थिएटरों का पूर्ण प्रभाव है। नाटककारों ने कम्पनियों की भाँति कृत्रिम, रोमांच-कारी और चटकीले दृश्यों को ही लक्ष्य माना। गंगावतरण (श्री कृष्ण हसरत) आदि पौराणिक और धार्मिक नाटकों में भी बाजारू आशिक-माशूकों का-सा कथोपकथन अत्यन्त भद्दा जँचता है। चरित्र-चित्रण का यह भद्दापन अक्षम्य है। चाहिए तो यह था कि पौराणिक युग की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन करके उसके अनुकूल वस्तु-विधान करते। किन्तु उन नाटककारों ने ज्ञानाभाव के कारण आकर्षक दृश्यविधान को ही नाट्यकला का

१. 'साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका', भाग ३, अंक ६, पृ० १७७।
२. 'साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका', भाग ३, अंक १२, पृ० ३२२।
३. 'पतिव्रता', 'खानजहाँ', 'अचलायतन', 'उस पार', 'शाहजहाँ', 'दुर्गादास', 'ताराबाई' आदि।
४. 'उत्तररामचरित' और मालतीमाधव'।
५. 'महाभारत', 'सती अनसूया' आदि।
६. 'वीर अभिमन्यु', 'ईश्वर-भक्ति' आदि।
७. 'धर्मार्थयुद्ध', 'गरीब हिन्दुस्तान' आदि।
८. 'जनकनन्दिनी', 'भक्तसूरदास' आदि।

चरम आदर्श मान लिया। उनके नाटकों में प्रयुक्त उपमा आदि अलंकार भी अत्यन्त भद्दे हैं। उनकी भाषा आद्योपान्त त्रुटि पूर्ण और प्रायः पात्रों के अयोग्य है। अभिनय से सम्पन्न होने पर भी भाव, भाषा और नाट्यकला से विभिन्न होने के कारण ये नाटक सहित्यिक दृष्टि से अधम श्रेणी के हैं।

दूसरी कोटि में वे नाटक हैं जो अभिनय की दृष्टि से पारसी रंगमंच से प्रभावित हैं किन्तु उनका साहित्यिक मूल्य भी है, उदाहरणार्थ बदरी नाथ भट्ट के 'चन्द्रगुप्त', 'दुर्गावती' आदि। इन मध्यम कोटि के नाटकों में कथोपकथन, दृश्यविधान आदि थिएटरों की ही भाँति आकर्षक हैं। भाषा, भाव, चरित्रचित्रण आदि में साहित्यिक अभिरुचि का भी ध्यान रखा गया है।

तीसरी कोटि उत्तम साहित्यिक नाटकों की है यथा—'जनमेजय का नागयज्ञ', 'विशाख' 'अजातशत्रु', 'कृष्णार्जुनयुद्ध', 'वरमाला' आदि। इन नाटकों में परिष्कृत रुचि, शुद्ध साहित्यिक भाषा, काव्यमय भावव्यंजना, प्रायः देशकालानुसार चरित्रचित्रण और कथोपकथन, कथोद्घात और विष्कंभक आदि नाटकीय विधान, रसपरिकपाक आदि का समुचित व्यक्तीकरण है। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में प्रयुक्त संस्कृत प्रधान भाषा को अस्वाभाविक कहना युक्ति संगत नहीं है। यदि हिन्दुस्तानी को ही आप्त स्वाभाविक भाषा माना जायगा तो फिर नेपोलियन या अकबर को लेकर संस्कृत, बंगला या मराठी में नाटक नहीं लिखा जा सकेगा। क्योंकि वे पात्र ये भाषाएँ नहीं बोलते थे। जयशंकर प्रसाद के पात्रों से ठेठ हिन्दी, बाबर से फारसीगर्भित हिन्दी या किसी अंगरेज से अंगरेजी के उच्चारणानुकूल हिन्दी बुलवाने का आग्रह हास्यास्पद है। नाटक अवस्थानुकृति है, भाषानुकृति नहीं। भाषा तो एक सहायकमात्र है। न तो अजातशत्रु ही हिन्दी बोलता था और न उसका दास ही। कहा जा सकता है कि उस समय नीच पात्र प्राकृत बोलते थे। अतएव स्वाभाविकता की रक्षा के लिए उनसे असंस्कृत हिन्दी बुलवाई जाय यह अन्याय है। नाटक संस्कृत और प्राकृत या खड़ी बोली और ठेठबोली में एक साथ न लिखा जाकर एक ही भाषा में लिखा गया है। अतएव दोनों प्रकार की भाषाओं का प्रश्न उठाना असंगत है। सच तो यह है कि सम्राट सम्राट की भाषा बोलता है और भिखारी भिखारी की। प्रसाद के अधिकांश पात्र अपने पद के अनुकूल ही भावव्यंजना करते हैं। किन्तु उनके नाटकों में बहुत बड़ा दोष यह है कि अपेक्षाकृत वस्तु की अधिकता और अभिनय की कमी है। 'कृष्णार्जुन' और 'वरमाला' में प्रसाद जी के नाटकों की भाँति उच्च कोटि का कवित्व तो नहीं है परन्तु अभिनय, दृश्यविधान कथोपकथन, वस्तुविन्यास आदि की दृष्टि से वे श्रेष्ठ नाटक हैं।

द्विवेदी-युग के गम्भीर एकांकी नाटक लेखकों में प्रमुख स्थान प्रसाद जी का ही है। 'सज्जन',[१] 'कल्याणी परिणय', [२] और 'पायश्चित्त'[३] में ही उन्होंने नाटकरचना का अभ्यास किया था। सज्जन (५ दृश्य) और 'कल्याणीपरिणय' (६ दृश्य) पर संस्कृत नाटकों का पूरा प्रभाव है। नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि का प्रयोग किया गया है। 'प्रायश्चित' (६ दृश्य) में उनकी स्वकीय नाट्यकला की झलक है। कला की दृष्टि से अनुत्कृष्ट होते हुए भी प्रसाद जी की प्रारंभिक रचनाएँ होने के कारण इन रूपकों का ऐतिहासिक महत्व है। अन्य लेखकों के भी एकांकी रूपक पत्रपत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे किन्तु उन्हें कोई श्रेय नहीं मिला।

द्विवेदी-युग के नाटकों के तीसरे प्रकार-प्रहसनों-में प्रायः समाज की हास्यास्पद बुराइयों के ही चित्र अंकित किए गए। बालविवाह और वृद्धविवाह के समर्थक, नई शिक्षा से प्रभावित स्त्रीपुरुष, पाखंडी और प्रवंचक पंडे, पुजारी, नेता, सम्पादक, अध्यापक आदि आक्षेप के पात्र हुए। जी० पी० श्रीवास्तव के 'गड़बड़झाला',[४] 'नोंकझोंक',[५] 'मरदानी औरत',[६] 'नाक में दम',[७] 'साहब बहादुर उर्फ चड्ढा गुड्खेल',[८] 'मारमार कर हकीम'[९] आदि प्रहसनों में प्रयुक्त हास्य प्रायः निकृष्ट कोटि का है। उनकी भाषा भी बाजारू हिन्दी है। बदरीनाथ भट्ट के चुँगी की उम्मेदवारी या मेम्बरी की धूम'[१०] और बेचन शर्मा उग्र के 'बेचारा सम्पादक',[११] 'बेचारा अध्यापक'[१२] आदि प्रहसनों में उत्कृष्ट और शिष्ट हास्य, व्यंग्यप्रधान मार्मिक भावव्यंजना तथा प्रांजल भाषा का सुन्दर रूप प्रस्तुत हुआ। ब्रजनन्दन सहाय,[१३] लोचन प्रसाद पांडेय[१४] आदि ने भी प्रहसन लिखे किन्तु नाट्यकला की दृष्टि से

---

१. 'इन्दु', कला २, किरण ८, ९, १०, ११।
२. 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' भाग १७, संख्या।
३. 'इन्दु', कला ५, खंड १, किरण १।
४. 'इन्दु' कला ४, खंड १, पृ० २०।
५. १९१८ ई०।
६. १९२० ई०।
७. सं० १९८२।
८. सं० १९८२।
९. १९२५ ई०।
१० १९१४ ई०।
११. 'प्रभा', वर्ष ३, खंड २, पृ० २७७...
१२. 'प्रभा', मार्च, १९२४ ई०, पृ० १९५...
१३. 'बूढ़ा वर', १९०९ ई०।
१४. 'साहित्यसेवा', १९१४ ई०।

उनकी ईहक्षा बहुत ही ओछी कोटि की थी।

उस युग के नाटकों का अन्तिम प्रकार पद्यरूपकों का था। इन रूपकों के तीन प्रधान रूप थे—संगीतमय, पद्यमय और गीतिमय। 'सांगीत चन्द्रावलि का झूला',[1] 'सांगीत ध्रुवलीला',[2] 'सांगीत सत्य हरिश्चन्द्र',[3] 'संगीत हरिश्चन्द्र' आदि संगीतमय पद्यरूपकों की रचना मुख्यतः कम्पनियों के-से चलते गानों द्वारा हुई है। इन रूपकों की वस्तु अभिनयात्मक और दृश्य चटकीले हैं। भाषा, भाव, कला, आदि की सुन्दरता से सर्वथा विपन्न और भद्दी रुचि के होने के कारण ये तिरस्करणीय हैं। पद्यरूपकों में मैथिलीशरण गुप्त का 'अनघ' विशेष उदाहरणीय है। यह भाव और भाषा की दृष्टि से तो सुन्दर है किन्तु नाटकीयता के नाम पर इसमें कथोपकथन के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। गीतनाट्यों में अपेक्षाकृत अधिक कवित्व और नाटकत्व है। इन रचनाओं में ऊँचे भावों, मँजी हुई भाषा, मार्मिक सम्भाषण, रूपकोचित दृश्यविधान, अभिनेयता और अभिनयनिर्देश आदि का बहुत कुछ समावेश हुआ है। लेखकों की कवित्व-प्रधान दृष्टि और कहीं कहीं पात्रों के लम्बे भाषणों ने उनकी नाटकीयता कम कर दी है। जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय',[4] सियारामशरण गुप्त लिखित 'कृष्णा'[5] आदि अच्छे गीतिनाट्य हैं।

उपन्यास-कहानी

ऊपर कहा जा चुका है कि द्विवेदी जी ने अपने युग के नाटक-साहित्य को उसके भाव पक्ष में प्रभावित नहीं किया। नाटककारों और कथाकारों की अपेक्षा कवियों के सुधार की ओर ही उन्होंने विशेष ध्यान दिया। इसके दो मुख्य कारण थे। एक तो कविता ही हिन्दी साहित्य का सर्वस्व थी और दूसरे द्विवेदी जी का मत था कि समाज के उत्थान और पतन के प्रधान उत्तरदायी कवि ही हैं। विषय परिवर्तन की जो चेतावनी उन्होंने कवियों को दी थी वह नाटककारों और कथाकारों पर भी समान रूप से लागू थी। अपने युग के कथा साहित्य को उन्होंने आदर्श, विषय और भाषा की दृष्टि से विशेष प्रभावित किया। हिन्दी का लेखक और पाठक-समाज तिलिस्म, जासूसी और ऐयारी के जाल में फँसा हुआ था। कथा-प्रेमियों को तृप्त करने और उनकी रुचि के परिष्करण के लिए द्विवेदी जी ने

१. इन्द्रमनि जी उस्ताद, १९०६ ई०।
२. छोटेलाल उस्ताद, १९०६ ई०।
३. विजयभारत सिंह, १९१५ ई०।
४. 'इन्दु', कला ४, खंड १, पृ० १२०।
५. 'प्रभा', वर्ष २, संख्या ४, ५, ६।

'महाभारत' (१८०८ ई०), 'वेणी संहार' (१६१३ ई०), 'कुमार सम्भव' (१६१३ ई०), 'मेघदूत' (१६१७ ई०) और 'किरातार्जुनीय' (१६१७ ई०) के आख्यायिकोपम अनुवाद प्रस्तुत किए। सम्पादक द्विवेदी ने 'सरस्वती' के 'आख्यायिका' खंड के अन्तर्गत कहानियां का नियमित प्रकाशन करके कहानीकारों को प्रोत्साहित किया। रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय',[1] श्रीमती बंग महिला की 'दुलाई वाली',[2] बृन्दाबनलाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई',[3] ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन',[4] चंडीप्रसाद हृदयेश की 'सुधा',[5] चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था',[6] प्रेमचन्द की 'सौत',[7] 'सज्जनता का दंड',[8] 'पंचपरमेश्वर',[9] 'ईश्वरीयन्याय',[10] 'दुर्गामन्दिर',[11] 'बलिदान',[12] और 'पुत्रप्रेम',[13] विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'ताई',[14] 'शान्ति',[15] और 'विधवा'[16] आदि हिन्दी की विशिष्ट कहानियों का प्रथम प्रकाशन द्विवेदी सम्पादित 'सरस्वती' में ही हुआ था और द्विवेदी जी ने आवश्यकतानुसार उनका उचित संशोधन भी किया था।[17]

सन् १६०३ से १६२५ ई० तक के लम्बे युग में कथा साहित्य की बहुमुखी प्रगति का अनुमान उसके सैकड़ों लेखकों और उनकी बहुसंख्यक रचनाओं से ही लग जाता है। द्विवेदी युग के उपन्यासों का उद्‌गम अनेक प्रकार था। उपन्यासरचना की प्रेरणा का पहला मूल

---

१. १६०३ ई०, पृ० ३८० ।
२. १६०७ ई०, पृ० २७८ ।
३. १६१६ ई०, पृ० ३६० ।
४. १६१५ ई०, पृ० १५६ ।
५. „ „ „ १४४ ।
६. „ „ „ ३४१ ।
७. „ „ „ ३१५ ।
८. १६१६ „ „ १४६ ।
६. „ „ „ ३८५ ।
१०. १६१७ „ „ २८ ।
११. „ „ „ ३१४ ।
१२. १६१८ „ „ २४२ ।
१३. १६२० „ „ ३२० ।
१४. १६२० ई०, पृ० ३१ ।
१५. १६२० „ „ ६८ ।
१६. „ „ „ १६५ ।
१७. इन कहानियों की हस्तलिखित प्रतियाँ काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में देखी जा सकती हैं।

था शास्त्राध्ययन । शास्त्राध्ययन में संस्कृत-साहित्य और हिन्दी का रीति-साहित्य किशोरी लाल गोस्वामी के द्वारा प्रकट हुआ । पुराण और इतिहास ने बहुतों को प्रेरणा दी । अनेक उपन्यासों के नाम ही उद्गमसूचक हैं, यथा 'दशावतार कथा',[१] 'द्रौपदी',[२] आदि । किशोरी लाल गोस्वामी इतिहास को लेकर चले । 'तारा', 'रजिया बेगम', 'लखनऊ की कब्रें' आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं । अपेक्षित अध्ययन, सहृदयता, निष्पक्षता आदि के अभाव में ये उपन्यास वस्तुतः ऐतिहासिक नहीं हैं । द्विवेदी-युग के उपन्यास बंगला और अँगरेजी से विशेष प्रभावित हैं । 'परीक्षा गुरु' की भूमिका से प्रमाणित है कि उस पर उर्दू, अँगरेजी, संस्कृत आदि के साहित्यों का भी प्रभाव पड़ा है । रायकृष्ण वर्मा ने उर्दू, अँगरेजी और बँगला से अनेक अनुवाद किए । देवकीनन्दन खत्री को उर्दू और फारसी की कहानियों से प्रेरणा मिली । गोपालराम गहमरी के उपन्यासों पर अँगरेजी का प्रभाव स्पष्ट है ।

उपन्यास लेखन की प्रेरणा का दूसरा मूल था जीवन और जगत् । श्रीनिवासदास का परीक्षा गुरु इस दिशा का अग्रदूत था । उसकी नवीनता अनेक रूपों में व्यक्त हुई—स्वानुभव का चित्रण, घर और उसकी समस्याएँ, समाज और दोष, राजनीति और दर्शन आदि । जगमोहनसिंह के 'श्यामा स्वप्न' में जीवन, और उग्र के 'घंटा' में (१९१९ ई०) तथा उदय नारायण वाजपेयी के 'स्वदेश प्रेम' (१९१७ ई०) आदि में राजनीति के चित्र अंकित हुए । 'आदर्श बहू',[३] 'तीन पतोहू',[४] 'आदर्श दम्पति'[५] आदि गृह जीवन को लेकर लिखे गये । 'सुशीला विधवा',[६] 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'संसार चक्र'[७] आदि के विषय सामाजिक हैं । सामाजिक उपन्यासों का उत्कर्ष प्रेमचन्द की रचनाओं में ही विशेष दिखाई पड़ा ।

उपर्युक्त विभिन्नताओं का कारण लेखकों के उद्देश की विभिन्नता है । उपन्यास की उत्पत्ति मनोरंजन और कालक्षेप के लिए हुई थी । मौलिक लोककथा का स्थान धीरे धीरे उपन्यासों ने ले लिया । मनोरंजन प्रधानता के कारण ही उस युग के प्रारंभिक उपन्यासों में पारसी थिएटरों के अति नाटकीय रोमांचकारी प्रसंगों का अतिरेक हुआ । तिलस्मी, जासूसी और ऐयारी उपन्यासों का स्पष्ट उद्देश भी मनोरंजन ही था । हास्य रस के उपन्यासों में

---

१. अक्षयवट मिश्र, १९१७ ई० ।
२. कात्यायनीदत्त त्रिवेदी, १९२१ ई० ।
३. उमरावसिंह, १९१३ ई० ।
४ गोपालराम गहमरी, सं० १९६९ ।
५. लज्जाराम मेहता, सं० १९६१ ।
६. „ „ १९६४ ।
७. जगन्नाथप्रसाद त्रिवेदी, सं० १९८१ ।

इस उद्देश की अभिव्यक्ति एक नवीन रूप में हुई। 'शैतानमंडली' (उग्र), 'ठलुआ क्लब' (गुलाब राय), 'गोबर गणेश संहिता' (गोपालराम गहमरी), 'महाशय भड़ाम सिंह शर्मा उपदेशक' (जी० पी० श्रीवास्तव) आदि का उद्देश था हास्योद्रेक द्वारा मनोरंजन करना। द्विवेदीयुग के उपन्यासों का दूसरा उद्देश सुधार था। तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक आन्दोलनों ने ही उसे यह रूप दिया। 'सौ अजान और एक सुजान' (बाल कृष्ण भट्ट), 'बिगड़े का सुधार'[१] [२] आदि समाज के प्रश्नों को ही लेकर लिखे गए थे। आदर्शवादी सुधारक प्रवृति का सर्वोच्च कलात्मक रूप प्रेमचन्द के 'सेवा-सदन' (सं० १९७८), 'प्रेमाश्रम' (सं० १९८०) और 'रंगभूमि' (सं० १९८१ में मिला। प्रेमचन्द ने अपने लेखों में भी इस आदर्शवाद की व्यंजना की।[३] उपन्यासकारों की यह आदर्शवादिता द्विवेदी जी की ही अनुवर्तिनी थी जो जगत् और जीवन के पर्यवेक्षण के परिणाम रूप में अनिवार्यत: प्रस्तुत हुई और सुप्त समाज को जगाने का साधन बनी। उस युग की उपन्यासरचना के दो गौण उद्देश भी थे—व्यापक उपदेश और कला के लिए कला। समाजसुधार की तीव्र भावना से परिचालित लेखकों ने युग के प्रभाव के कारण ही कुछ न कुछ उपदेशात्मक वस्तुविधान अवश्य किया। विश्वम्भर नाथ शर्मा, बृन्दावन लाल वर्मा आदि इसी कोटि के उपन्यासकार हैं। चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा उग्र आदि कला के लिए कला के सिद्धान्त के अनुयायी रूप में आए। उनका उद्देश था यथार्थ चित्रण और कला का सामंजस्य।

द्विवेदी जी की भाँति उनके युग का उपन्यासकार भी अतीत और वर्तमान दोनों से आकृष्ट हुआ था। किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासों में इन दोनों विशेषताओं का समन्वय है। किन्तु उनकी कृतियों में भिन्न भिन्न कालों की राजनैतिक अवस्था और संस्कृति के स्वरूप की वास्तविक झाँकी नहीं है। ऐतिहासिक विषयों पर उपन्यास लिखने की प्रणाली बँगला से आई। बृन्दावन लाल वर्मा इस क्षेत्र के श्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने 'गढ़कुंडार' और 'विराटा की पद्मिनी' में मध्ययुगीन भारत की अवस्था का सुन्दर रूपांकन

---

१. लज्जाराम मेहता, सं० १९६४।

२. 'अब प्रणय कथाएं लिखकर हमें संसार के सामने अपनी क्षुद्रता न प्रकट करनी चाहिएं। आंख की किरकिरी और विषवृक्ष लिखने का यह समय नहीं है। हमें अपने युवकों को प्रणय रहस्यों का पाठ पढ़ाने की उनके हृदय में आग लगाने की जरूरत नहीं। हमारे देश में विकट और भीषण संग्राम हो रहा है उससे कहीं विकट और भीषण जिसमें प्रताप और सांगा ने अपने प्राणों की आहुति दी थी। हमें देश में उन भावों का संचार करना है जो हमें इस संग्राम में मर्दों की भांति खड़े होने में सहायक हों।"

'हिन्दी का उपन्यास-साहित्य' १३वें हि० सा० स० का कार्य विवरण।

किया। पौराणिक और धार्मिक उपन्यासों के निर्माण के वास्तविक कारण तीन थे—तत्कालीन पारसी थिएटर, उपयुक्त सामग्री की कमी और स्त्रियों की धार्मिक शिक्षा। जब पुरुषवर्ग ने तिलस्मी और ऐयारी के उपन्यासों को अपनाया था तब स्त्रियाँ धार्मिक और पौराणिक उपन्यास पढ़ रही थीं। 'सावित्री-सत्यवान',[१] 'देवी द्रौपदी',[२] 'लवकुश'[३] आदि उपन्यास उपयुक्त दृष्टि से ही लिखे गए। तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी और साहसिक विषय तत्कालीन भारतीय साहित्य, अँगरेजी तथा फारसीउर्दू से आए। अद्भुत कौशल और अनोखी सूझ के सम्मेलन से इन उपन्यासों की सृष्टि हुई। 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' पढ़ने के पश्चात् हिन्दी का पाठक उन्हीं जैसी पुस्तक की खोज करने लगा। कुछ ही वर्षों में हिन्दी का उपन्यास साहित्य तादृश उपन्यासों से भर गया। गोपालराम गहमरी के उपन्यासों और जासूस पत्र ने जासूसी उपन्यासों को विशेष प्रोत्साहन दिया। तिलस्मी और ऐयारी उपन्यास तो प्रेमप्रधान हैं ही, जासूसी उपन्यास में भी प्रायः प्रेम का सन्निवेश हुआ। विज्ञान और दर्शनके विषय पर भी कुछ उपन्यासों की रचना हुई। 'हवाई नाव',[४] 'चन्द्रलोक की यात्रा',[५] 'बेलून बिहारी'[६] आदि में वैज्ञानिक सत्य के साथ जासूसी जात की सी स्वच्छन्द कल्पना का संयोग हुआ है। 'संसार रहस्य'[७] आदि नाम के ही दार्शनिक उपन्यास है। वस्तुतः दार्शनिक और वैज्ञानिक समस्याओं के विश्लेषणात्मक उपन्यासों का बुद्धिवादी युग अभी नहीं आया था। द्विवेदी युग के महत्वपूर्ण साहित्यिक उपन्यासों की रचना समाज और राजनीति को लेकर हुई। उनके लेखकों और पाठकों में समाज को आलोचक दृष्टि से देखने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो चुकी थी। इन उपन्यासों का प्रारम्भ घर के ही संसार से हुआ था, उदाहरणार्थ पूर्वोक्त 'आदर्श बहू', 'बड़ी बहू' आदि। इनमें प्रायः सामाजिक कुरीतियाँ की निन्दा और आदर्श चरित्रों की प्रतिष्ठा की गई, घटनावैचित्र्य और अद्भुत कौतूहल से हटकर मानव चरित्र और जीवन के समझाने का प्रयास किया गया। प्रेमचन्द के 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंग भूमि' में इसी प्रकार के सामाजिक प्रश्नों का कलात्मक निरूपण हुआ।

द्विवेदी-युग के उपन्यासों की चार प्रधान पद्धतियाँ लक्षित होती हैं—कथात्मक, काव्य-

---

१. द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, १९१२ ई०।
२. रामचरित उपाध्याय, सं० १९७७।
३. नरोत्तम व्यास, सं० १९८०।
४. गंगाप्रसाद गुप्त, सं० १९०३।
५. विनय गोपालबख्शी, सं० १९६७।
६. शिवसहाय चतुर्वेदी, सं० १९१८।
७. प्रसिद्ध नारायण, सं० १९२२ ई०।

त्मक, नाटकी और विश्लेषणात्मक। कथात्मक पद्धति मुख्यतः तीन रूपों में आई है— लोककथा, तटस्थ वर्णन और आत्मकथा। लोककथा-पद्धति मौखिक कथा प्रणाली का औपन्यासिक और उपन्यासकला का प्रारम्भिक रूप है। इस पद्धति का उपन्यासकार कथा सुनाता चला गया है और बीच बीच में पाठकों का सम्बोधन भी करता गया है, यथा रामदास जी वैश्यके 'धोखे की टट्टी'[1] में। तटस्थ वर्णन-पद्धति पूर्वोक्त पद्धतिका विकसित, साहित्यिक और कलात्मक रूप है। इसका लेखक अपना व्यक्तित्व पाठकों से छिपाए रहता है और उनका सम्बोधन आदि नहीं करता। इस प्रणाली के उपन्यासों में वर्णन के साथ साथ चरित्र-चित्रण और उपदेश आदि की भी प्रधानता है। प्रेमचन्द के कलापूर्ण विश्लेषणात्मक उपन्यासों में इस पद्धति का उत्तम विकास हुआ है। कथात्मक पद्धति का तीसरा रूप आत्म-कथा है। इस पर पश्चिम के व्यक्तिवाद और चरित्र चित्रण प्रणाली की स्पष्ट छाप है। योग में कठिन और असुविधाजनक होने के कारण यह पद्धति बहुत कम प्रयुक्त हुई है। 'सौदर्न्योपासक' (ब्रजनन्दन सहाय), 'घृणामयी' (इलाचन्द्र जोशी), 'कलंक' (रामचन्द्र शर्मा) आदि इस पद्धति के उपन्यास हैं। द्विवेदी युग के उपन्यासों की दो और पद्धतियां भी हैं—पत्र पद्धति और दैनंदनी पद्धति। बेचन शर्मा उग्र के 'चन्द हसीनों के खतूत' में पत्र पद्धति का प्रयोग हुआ है। दैनन्दिनी पद्धति पर तो हिन्दी में सम्भवतः एक ही उपन्यास है— 'शोणित तर्पण'।[2]

उस युग के उपन्यासो की कलाशैली का दूसरा व्यापक रूप काव्यात्मक था। वे उपन्यास तीन प्रकार के थे—चारण-काव्यानुयायी, रीतिकाव्यानुयायी और भाव प्रधान। चारणकाव्या-नुयायी उपन्यासों का सारा वातावरण काव्य के अनोखेपन में रंगा हुआ है। 'चन्द्रकान्ता' और चारण काव्य 'आल्हा खंड' एक ही काव्यात्मकता के दो रूप हैं, अन्तर केवल शरीर का है। रीति काव्यानुयायी उपन्यासों में परम्परागत रीति, मन, लज्जा आदि का चित्रण हुआ है। किशोरीलाल गोस्वामी का 'कुसमकुमारी' (१६१० ई०) इसी प्रकार का उपन्यास है। उनके 'तारा' (१६१० ई०) और 'अंगूठी का नगीना' (१६१८ ई०) तथा ब्रजनन्दनसहाय के 'राधा-कान्त' और 'राजेन्द्रमालती' आदि में इसी प्रणाली का प्रयोग हुआ है। काव्यात्मक प्रणाली का तीसरा प्रकार भाव प्रधान उपन्यासों में मिलता है। इन रचनाओं के पात्र प्रायः भावुक, भावव्यंजना कवित्वपूर्ण, प्राकृतिक दृश्य काव्यमय, उपमा और विरोध आदि का विशेष प्रयोग, भाषा अलंकृत और कोमल है। ब्रजनन्दनसहाय का 'सौन्दर्योपासक' और चंडीप्रसाद हृदयेश का 'मनोरमा' इसी कोटि के उपन्यास हैं।

---

१. १६०६ ई०

२. डा० श्रीकृष्ण लाल लिखित 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास', पृ० २८८।

द्विवेदी-युग के उपन्यासों का तीसरा मुख्य रूप नाटकीय था। यह रूप तीन प्रकार से व्यक्त हुआ—पारसी रंगमंच की अतिनाटकीयता, पाश्चात्य नाटकों की सी संघर्षात्मकता और यथार्थ तथा प्रभावकारी कथोपकथन। प्रथम प्रणाली का प्रयोग हिन्दी-उपन्यास के आरम्भिक युग में हुआ था जब हिन्दी साहित्यकार पारसी रंगमंच की कृत्रिम नाटकीयता की ओर अनायास ही आकृष्ट हो गया था। इस प्रकार के उपन्यासों का प्रत्येक परिच्छेद नाटक के एक दृश्य के समान है। नाटक की भाँति ही कथोपकथन के साथ उपन्यास की वस्तु का विस्तार होता है। ये उपन्यास अति नाटकीय चटकीले दृश्य विधान से विशिष्ट हैं। भगवान दीन का 'सती-सामर्थ्य', नयन गोपाल का 'उर्वसी' (१९२५ ई०), रामलाल का 'गुलबदन उर्फ रजिया बेगम' (१९२३ ई०) आदि इसी कोटि की रचनाएँ हैं। उपन्यासों की नाटकीयता का दूसरा रूप अन्य रूपों की भांति विशेष स्फुट नहीं हुआ। वस्तुतः द्विवेदी-युग के सभी साहित्यिक उपन्यासों में इस परिष्कृत नाटकीय रीति का प्रयोग हुआ है। प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि सिद्ध उपन्यासकारों ने घात प्रतिघात की ओर विशेष ध्यान दिया है। प्रेमचन्द के तो सभी उपन्यासों में नगर और गाँव, उच्च और नीच, नवीन और प्राचीन का व्यापक तथा अविराम संघर्ष उपस्थापित किया गया है और उसके द्वारा आदर्शवाद की प्रतिष्ठा की गई है। उपन्यासों में नाटकीयता लाने के लिए लेखकों ने बीच बीच में पात्रों के पारस्परिक संलाप का भी सन्निवेश किया। ये नाटकीय संलाप भी उस युग के प्रायः सभी श्रेष्ठ उपन्यासों में पाए जाते हैं।

द्विवेदी-युग के उपन्यासों का चौथा रूप विश्लेषणात्मक था। बीसवीं शताब्दी की बौद्धिक जागृति, मनोवैज्ञानिक दृष्टि, धार्मिक, सामाजिक आदि हलचलों के कारण इस पद्धति का विकास हुआ। इस पद्धति के उपन्यासकारों का ध्यान साधारण कथा और घटना से हटकर चरित्र, समाज और जीवन की व्याख्या की ओर अधिक आकृष्ट हुआ। 'हिन्दू-गृहस्थ' (लज्जा राम मेहता), 'छोटी बहू' (गिरजाकुमार घोष) आदि में विश्लेषण के बीजमात्र का दर्शन होता है। 'रामलाल' (१९१४ ई०) और 'कल्याणी' (१९१८ ई०) में मन्नन द्विवेदी ने चरित्र-विश्लेषण को प्रधानता दी। प्रेमचन्द के 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम' और 'रंग भूमि' में विश्लेषणात्मक पद्धति का सुन्दर और विकसित रूप प्रस्तुत हुआ। आगामी युग के बुद्धि प्रधान समस्या उपन्यास इसी भित्ति पर निर्मित हुए।

संवेदना की दृष्टि से द्विवेदी-युग के उपन्यासों की चार मुख्य कोटियां हैं-घटनाप्रधान, भावप्रधान, चरित्रप्रधान और चित्रप्रधान। किशोरीलाल गोस्वामी, गोपालराम गहमरी, देवकीनन्दन खत्री आदि के पौराणिक, जासूसी और तिलस्मी आदि उपन्यास घटनाप्रधान ही हैं। भावप्रधान उपन्यासों का विवेचन काव्यात्मक प्रणाली के प्रसंग में किया जा चुका है।

तत्कालीन बौद्धिकता और कर्मण्यता के कारण उस युग में इस प्रकार के उपन्यासों की रचना बहुत कम हुई। उस युग के प्रारम्भिक सामाजिक उपन्यास घटना और चरित्र की मध्यस्थ कोटि में आएँगे। चरित्रप्रधान उपन्यासों का सफल सर्जन प्रेमचन्द की ही लेखनी से हुआ। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' आदि में चरित्र ही उपन्यास के प्राण हैं। चित्रप्रधान उपन्यासों की ओर चन्द्रशेखर पाठक और बेचन शर्मा जैसे कुछ ही लेखकों ने ध्यान दिया। उनके क्रमशः 'वारांगना रहस्य' और 'घृणामयी' में कठोर यथार्थवादी चित्र अंकित किए गए।

द्विवेदी-युग के आरम्भ समस्त पौराणिक, तिलस्मी, जासूसी, ऐयारी और साहसिक उपन्यास प्रारम्भिक अवस्था के हैं। उपन्यास कला का नितान्त अभाव होने के कारण उनका कोई साहित्यिक मूल्य नहीं है। उस युग के मध्य में रचित उपन्यासों में नाटकीयता, काव्यात्मकता, विश्लेषण, संलाप आदि कलाओं का स्थान-स्थान पर सन्निवेश तो हुआ किन्तु कलात्मक सामंजस्य की प्रतिष्ठा नहीं हुई। युग के अन्तिम भाग में उत्तम कोटि के उपन्यासों का सर्जन हुआ जिनमें उपन्यास-कला की सभी विशेषताओं का सुन्दर रूप दिखाई पड़ा। उपन्यास-साहित्य के क्षेत्र में भी द्विवेदी-युग का दुहरा महत्व है। युग के समक्ष कोई आदर्श उपन्यास या उपन्यासकार नहीं था। उसने अपनी प्रशस्त भूमिका स्वयं ही प्रस्तुत की और अन्त में सेवासदन, प्रेमाश्रम और रंगभूमि जैसे उपन्यास रत्न हिन्दी साहित्य को भेंट किए। उस युग का महत्तर गौरव इस बात में है कि उसने प्रेमचन्द, वृन्दावन लाल वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि महान् उपन्यासकारों का निर्माण किया। और आगामी युग की कलात्मक उपन्यासरचना की ठोस भित्ति संस्थापित की।

उपन्यासों की भाँति द्विवेदी युग की कहानियों का कारण भी शास्त्राध्ययन, जीवन या जगत् ही था उपन्यास और कहानीरचना के उद्देश में भी अविकल साम्य था—मनोरंजन, सुधार या उभय। कहानी का विषय भी धार्मिक, पौराणिक, तिलस्मी, ऐयारी, जासूसी, साहसिक, वैज्ञानिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक या राजनैतिक था। उपन्यास-साहित्य की भाँति गद्य के विकास के साथ ही कहानीसाहित्य का भी विकास हुआ।

कलाशैली की दृष्टि से द्विवेदी-युग के कहानीसाहित्य में, उपन्यास-साहित्य की ही भाँति, चार विभिन्न पद्धतियों का समावेश हुआ—कथात्मक, काव्यात्मक, नाटकीय और विश्लेषणात्मक। विकासक्रम की दृष्टि से कथात्मक प्रणाली के तीन प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं—लोककथा, तटस्थवर्णन और आत्मकथा। हिन्दी कहानी का प्रारम्भ लोककथाप्रणाली से हुआ। इन कहानियों का लेखक श्रोताओं को कथा सी सुनाता चला जाता है और बीच

बीच में उनका ध्यान आकृष्ट करने के लिए उन्हें सम्बुद्ध भी करता चलता है किन्तु कला की दृष्टि से आधुनिक कहानियों में इनका कोई स्थान नहीं है। कथात्मक पद्धित का दूसरा प्रकार–तटस्थ वर्णन–कहानी की एक प्रधान प्रणाली है। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती',[१] मास्टर भगवान दीन की 'प्लेग की चुड़ैल',[२] द्विवेदी जी की 'तीन देवता',[३] रामचन्द्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय',[४] आदि कहानियों में इस प्रणाली का अविकसित और अकलात्मक रूप दिखाई पड़ता है। प्रारम्भिक कथावर्णन की शैली अलौकिक, दैवी, आश्चर्यजनक, असम्भव आदि तत्वों से आकीर्ण है, यथा 'भूतोंवाली हवेली',[५] एक अलौकिक-घटना',[६] 'चन्द्रहास का अद्भुत आख्यान',[७] 'भुतही कोठरी'[८] आदि। तटस्थवर्णन पद्धति की जिन कहानियों में दैवयोग, अतिप्राकृत तथा अद्भुत तत्वों का परित्याग और यथार्थता, विश्लेषण, मनोविज्ञान, नाटकीयता आदि का सम्मिश्रण हुआ उनमें आधुनिक कहानी का कलात्मक सुन्दर रूप व्यक्त हुआ, उदाहरणार्थ 'दुलाई वाली'[९] 'ताई'[१०] 'सौत'[११] आदि।

कथात्मक शैली के तृतीय प्रकार–आत्मचरित–का प्रयोग तीन प्रकार से हुआ। पहला प्रकार कल्पनाप्रधान वर्णन का है जिसमें मानवीकरण, कविकल्पना आदि के सहारे कहानी सौन्दर्य की सृष्टि की गई है, यथा 'इत्यादि की आत्मकहानी',[१२] एक 'अशरफी की आत्म-कहानी'[१३] आदि। दूसरा प्रकार यथार्थ घटनावर्णन का है जिसमें वास्तविक भ्रमण, शिकार आदि स्वानुभव तथा परानुभव की घटनाओं का वर्णन हुआ है, उदाहरणार्थ 'एक शिकारी की सच्ची कहानी',[१४] 'एक ज्योतिषी की आत्मकथा'[१५] आदि। इन कहानियों में घटनाओं

---

१. सरस्वती, जून, १९०३ ई०।
२. सरस्वती, १९०२ ई०।
३. सरस्वती, १९०३ ई०, पृष्ठ १२३।
४. सरस्वती, १९०३ ई०, पृ० ३०८।
५. लाला पार्वती नन्दन, सरस्वती १९०३ ई० पृ० २३५।
६. राजा पृथ्वीपाल सिंह सरस्वती, १९०४ ई०, पृ० ३१६।
७. सूर्य नारायण दीक्षित सरस्वती, १९०६ ई०, पृ० २०४।
८. मधुमंगल मिश्र, सरस्वती, १९०८ ई०, पृ० ४८८।
९. श्रीमती बंगमहिला, 'सरस्वती', १९०७ ई०, पृ० २७८।
१०. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, 'सरस्वती', १९२० ई०, पृ० ३१।
११. प्रेमचन्द, 'सरस्वती', १९१५ ई०, पृ० ३५३।
१२. यशोदानन्दन अखौरी, 'सरस्वती', भाग ५, पृ० ४४०।
१३. वेंकटेश नारायण तिवारी, 'सरस्वती', भाग ७, पृ० ३९९।
१४. श्री निज़ामशाह, 'सरस्वती', १९०५ ई०; पृ० २९९।
१५. श्रीलाल सालग्राम, 'सरस्वती', १९०९ ई०, पृ० ४०।

का बाहुल्य और मनोवैज्ञानिक चित्रण तथा आभ्यांतरिक विश्लेषण का अभाव होने के कारण कहानी की आत्मचरित शैली का साहित्यिक और कलात्मक प्रयोग इन दोनों रूपों में नहीं हो सका है। आत्मचरित प्रणाली का तीसरा प्रकार विश्लेषणात्मक है। विश्लेषणात्मक कहानियों में लेखक ने कहानी के पात्र के मुख से ही वस्तु विन्यास कराया है और मानव जीवन के किसी न किसी पक्ष की व्याख्या की है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की 'अंधेरी दुनिया' और 'कवि की स्त्री' तथा प्रेमचन्द की 'शान्ति' आदि कहानियाँ इसी कोटि की हैं।

कथात्मक प्रणाली के दो अप्रचलित रूप और भी हैं—पत्र पद्धति और दैनन्दिनी-पद्धति उदाहरणार्थ क्रमशः 'देवदासी' (जयशंकरप्रसाद) और 'विमाता का हृदय।'[१] कहानीकला की दृष्टि से ये दोनों ही रूप अवांछनीय हैं। संवेदना की तीव्रता न होने के कारण इस प्रकार की कहानियाँ प्रभावोत्पादक नहीं हो पातीं और उनका उद्देश ही अधूरा रह जाता है।

द्विवेदी-युग के कहानी साहित्य की दूसरी व्यापक शैली काव्यात्मक है। इसके प्रायः दो प्रकार परिलक्षित होते हैं—वस्तु चमत्कार प्रधान और भाषा-चमत्कार प्रधान। पहले प्रकार की कहानियों के पात्र प्रायः नवयुवक, कल्पनायुक्त, भावुक, आशावादी और प्रेम-पीड़ित होते हैं। घटनाओं का अधिकांश कल्पनाजन्य और सारा वातावरण ही काव्यमय होता है। भाषा कवित्वपूर्ण होते हुए भी निरलंकार है। 'रसिया बालम',[२] 'कानोंमें कंगना'[३] 'दिनों का फेर',[४] 'चित्रकार'[५] 'सच्चा कवि'[६] आदि भावात्मक कहानियाँ इसी काव्यात्मक शैली की हैं। भाषा चमत्कारप्रधान काव्यात्मक कहानियों के लेखकों ने वस्तु-चमत्कार योजनाके साथ ही भाषा को अलंकृत करने और कवित्वपूर्ण बनाने का विशेष प्रयास किया। हिन्दी-कथा-साहित्य के बाणभट्ट चण्डीप्रसाद हृदयेश इस शैली के प्रमुख कहानीकार हैं। उनकी 'सुधा', 'शान्ति निकेतन' आदि कहानियों में भाव की अपेक्षा भाषा की रमणीयता ही अधिक आकर्षक है। इस काव्यात्मक पद्धति पर कभी कभी रूपक-प्रणाली का आश्रय लेकर छोटी छोटी मार्मिक कहानियों की रचना की गई, उदाहरणार्थ अज्ञेय की 'अमर बल्लरी' सुदर्शन की 'कमल की बेटी', रायकृष्णदास की 'परदे का प्रारम्भ' आदि। इन

---

१. 'आधुनिक हिन्दी कहानियाँ' में संकलित।
२. प्रसाद, 'इन्दु', एप्रिल, १६१२ ई०।
३. राधिकारमण प्रसाद सिंह, 'इन्दु', कला ४, खंड २, किरण ५।
४ रायकृष्णदास, 'प्रभा', वर्ष २, खंड २।
५. कृष्णानन्द गुप्त, 'प्रभा', वर्ष ३, खंड १।
६. विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', 'माधुरी', वर्ष ३, खंड १

कहानियों की विशेषता यह है कि अचेतन वस्तु में चैतन्य का आरोप करके उसी की दृष्टि से सारी कहानी कही गई है। पात्र, वातावरण आदि अपरिचित हैं, हम जिन रूपों में उन्हें नित्यप्रति देखते हैं उन रूपों में उनका चित्रण नहीं किया गया है।

द्विवेदी-युग की कहानियों की तीसरी व्यापक शैली नाटकीय है। वस्तुतः सभी सुन्दर कहानियों में नाटकीयता का कुछ न कुछ समावेश हुआ है। इसका कारण स्पष्ट है। मानव जीवन की प्रत्येक संवेदनीय घटना अभिनयात्मक है और कहानी उसी घटना का चित्रोपस्थापन या रहस्योद्घाटन करती है। स्थूल रूप से नाटकीय शैली भी काव्यात्मक शैली के ही अन्तर्गत मानी जा सकती है क्योंकि नाटक स्वयं ही काव्य है। उस युग की कहानियों के अधिक विस्तृत अध्ययन के लिए इस सूक्ष्म वर्गीकरण की आवश्यकता हुई है। इन दोनों शैलियों में मुख्य अन्तर यह है कि काव्यात्मक कहानी सामान्य काव्यगत मनोहर कवि-कल्पना और अलंकारिकता से विशिष्ट है और नाटकीय शैली की कहानी नाटकोचित कथोपकथन एवं घात-प्रतिघात से। इस शैली के मुख्यतः तीन प्रकार दिखाई देते हैं—संलाप-प्रधान, संघर्ष-प्रधान और उभय-प्रधान। संलाप-प्रधान कहानियों में कहानी का सौन्दर्य पात्रों के स्वाभाविक और नाटकीय कथोपकथन पर विशेष आधारित है, उदाहरणार्थ 'महात्मा जी की करतूत'।[1] संघर्ष-प्रधान कहानियों में दो पक्षों के संघर्ष, कभी हार कभी जीत और अन्त में घटना के नाटकीय अवसान का उपस्थापन है, यथा 'शतरंज के खिलाड़ी'[2] इस पद्धति का सुन्दरतम रूप उन कहानियों में व्यक्त हुआ है जिनमें लेखक ने नाटकीय संलाप और संघर्ष दोनों का सामंजस सन्निवेश किया है, उदाहरणार्थ जयशंकरप्रसाद लिखित 'आकाशदीप'।

उस युग की कहानियों की चौथी व्यापक शैली विश्लेषणात्मक है। इस पद्धति की कहानियों में पूर्वोक्त तीनों पद्धतियों में से किसी एक का या अनेक का प्रयोग अवश्य हुआ है किन्तु पात्र या पात्रों के अन्तर्गत या वाह्य जगत का विश्लेषण ही कहानी की मुख्य विशेषता है। विश्लेषणात्मक कहानियो की भूमिका दो रूपों में अंकित की गई है। चण्डीप्रसाद हृदयेश और जयशंकरप्रसाद ने प्रायः सभी भावात्मक कहानियों में पात्रों के भावपक्ष का विश्लेषण प्रकृति की भूमिका में किया है। प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि की अधिकांश विश्लेषणात्मक कहानियों में मानव-मन के रहस्यों और घात-प्रतिघात की विवेचना समाज की भूमिका में की गई है, उदाहरणार्थ 'पंचपरमेश्वर', 'मुक्तिमार्ग' आदि।

---

१. राय कृष्णदास, 'प्रभा', वर्ष २, खंड २ पृ० २३१।
२. प्रेमचन्द, 'माधुरी', वर्ष ३, खंड १, सं० ३, पृ० २१०।

मनोवैज्ञानिक फ्रायड के सिद्धान्तों का युग अभी नहीं आया था। अतएव द्विवेदी-युग की कहानियों में मानव-मस्तिष्क की विशेष चीर-फाड़ नहीं हुई।

संवेदना की दृष्टि से द्विवेदी-युग की कहानियों के चार प्रधान वर्ग हैं—घटना-प्रधान, चरित्र-प्रधान, भाव-प्रधान और चित्र-प्रधान। प्रथम वर्ग की कहानियाँ घटनाओं की शृंखलामात्र हैं। किसी कल्पित, सुनी, पढ़ी या देखी हुई घटना अथवा घटनाओं से अति-प्रभावित कहानीकार उसे व्यक्त किए बिना नहीं रह सका है। उस युग की आरम्भिक घटना प्रधान कहानियों में अद्‌भुत तत्व की अधिकता है, यथा पूर्वोक्त 'भूतों वाली हवेली', 'भुतही कोठरी' आदि। किन्तु आगे चलकर कलात्मक घटना प्रधान कहानियों की रचना साधारण जीवन की आकर्षण घटनाओं को लेकर की गई है, उदाहरणार्थ प्रेमचन्द की 'सुहाग की साड़ी',[1] 'भूत'[2] आदि। इस वर्ग की कहानियों में चरित, भाव आदि के विवेचन के कारण आधुनिक कहानी कला के विकास के साथ ही घटनात्मकता का ह्रास होता गया है।

कहानीकला का सुन्दर रूप उस युग की चरित्र-प्रधान कहानियों मे व्यक्त हुआ। ये कहानियाँ मुख्यतः दो प्रकार की हैं। पहला प्रकार उन कहानियों का है जिसके पात्रों में किसी कारणवश कोई आकस्मिक परिवर्तन हो गया है और कहानी वहीं समाप्त हो गई है। आरम्भ से लेकर परिवर्तन के पहले तक पात्रों का एक रूप में चरित्र-चित्रण हुआ है और तत्पश्चात् उसका दूसरा रूप व्यक्त हुआ है, यथा 'आत्मराम' (प्रेमचन्द), 'ताई'[3] आदि। दूसरे प्रकार की चरित्र-प्रधान कहानियों का सौन्दर्य चरित्र के आकस्मिक विकास में न हो कर उसकी दृढ़ता, असामान्यता और प्रभावोत्पादकता में है, यथा 'उसने कहा था',[4] 'खूनी',[5] 'बूढ़ी काकी' (प्रेमचन्द), 'भिखारिन' (प्रसाद) आदि। इन कहानियों में आरम्भ से लेकर अन्त तक चरित्र ही कहानी की घटनाओं का मुख्य केन्द्र रहा है और उसके किसी एक पक्ष का उसका उद्‌घाटन करके कहानी समाप्त हो गई है। नायक या नायिका को ऐसी परिस्थितियों में इस कलात्मक रूप से चित्रित किया गया है कि उसकी अन्तर्हित विशेष-ताएँ आलोकित हो गई हैं। चरित्र को आकर्षक बनाने के लिये लेखक ने उसे भावुकता और मनोविज्ञान की दृष्टि से देखा है।

संवेदना के अनुसार द्विवेदी-युग की कहानियों की तीसरी प्रमुख कोटि भाव-प्रधान है।

---

१ 'प्रभा', वर्ष ३, खंड १, पृष्ठ ३१।
२. 'माधुरी', वर्ष ३, खंड १, सं १ पृष्ठ १।
३. कौशिक, 'सरस्वती', वर्ष २१, खंड २ पृष्ठ ३१।
४. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी. 'सरस्वती', भाग १६, खंड १, पृष्ठ ३१४।
५. चतुरसेन शास्त्री, 'प्रभा', जनवरी १९२४ ई०।

चरित्र-प्रधान कहानी से भाव-प्रधान कहानी की मुख्य विशेषता यह है कि भाव-प्रधान-कहानी लेखक कहानीकार के समान ही और कहीं कहीं उससे बढ़कर कवि भी है। यही कारण है कि वह भावुकतावश घटना, चरित्र या रूप की अपेक्षा पात्रों के भावों का ही विशेष भावन और अभिव्यंजन करता है। गद्य के माध्यम द्वारा घटना, चरित्र आदि पर आधारित जीवन के किसी अंग का शब्द चित्र होने के कारण ही ये रचनाएँ कहानी कहलाती हैं, कविता नहीं। इन भाव-प्रधान कहानियों में प्रेम, त्याग, वीरता, कृपणता आदि भावों का काव्यात्मकी उद्घाटन किया गया है, यथा 'कानों में कंगना' (राधिकारमणप्रसाद सिंह), 'उन्माद' (चंडीप्रसाद हृदयेश), 'आकाश दीप' (जयशंकर प्रसाद) आदि।

चौथा वर्ग चित्र-प्रधान कहानियों का है। भाव-प्रधान और चित्र-प्रधान दोनों ही प्रकार की कहानियां काव्यात्मक हैं। उनमें प्रमुख अन्तर यह है कि भाव प्रधान कहानी में कहानी-कार का उद्देश पात्रों के भावों का ग्रहण करना रहता है किन्तु चित्र प्रधान कहानी में वह पात्रों के वातावरण का बिम्ब-ग्रहण कराने का प्रयास करता है। 'आकाश दीप' सरीख कहानियों में तो भाव और बिम्ब दोनों ही का सुन्दर चित्रण हुआ है। अंकित चित्रों की काल्पनिकता या यथार्थता के अनुसार चित्र-प्रधान कहानियाँ दो प्रकार की हैं। एक तो वे हैं जिनका प्रधान सौन्दर्य उनके कवित्वपूर्ण कल्पनामंडित और अतिरंजित वातावरण के चित्रों में निहित है, यथा 'प्रतिध्वनि' (प्रसाद), 'योगिनी' (हृदयेश), 'मिलनमुहूर्त' (गोविन्दवल्लभ पंत), 'कामनातरु' (प्रेमचन्द) आदि। दूसरा प्रकार उन कहानियो का है जिनके चित्र वास्तविक जगत और दैनिक जीवन से लिए गए हैं। बेचन शर्मा उग्र और चतुरसेन शास्त्री इस प्रकार के प्रतिनिधि लेखक हैं।

द्विवेदी-युग में जब कि उपन्यास-कला-शैली का विकास हो रहा था तभी उस युग के कहानी-लेखक अमर कहानियों की रचना कर रहे थे। 'कानों में कंगना', 'पंचपरमेश्वर', 'उसने कहा था', 'मुक्ति मार्ग', 'आत्माराम', 'मिलनमुहूर्त', 'आकाशदीप', 'खूनी', 'ताई', 'चित्रकार', 'बलिदान' आदि सुन्दर कहानियाँ उसी युग में लिखी गईं। ज्ञान-विज्ञान की उन्नति, कहानी कला के विकास और द्विवेदी जी की आदर्शवादिता, सुधार तथा प्रोत्साहन से प्रभावित होने के कारण द्विवेदी-युग के कहानीकारों ने तिलस्मी, जासूसी, ऐयारी और भूत प्रेत के जगत से ऊपर उठकर मानव-मानस तथा समाज और जीवन तक आने में अद्भुत प्रगति दिखाई। सुन्दरतम हिन्दी कहानियों के किसी भी संकलन में द्विवेदी-युग की कहानियों का स्थान अपेक्षाकृत बहुत ऊँचा है।

निबन्ध

द्विवेदी-युग में गद्यविकास के साथ ही निबन्ध-साहित्य का अच्छा विकास हुआ। द्विवेदी जी के निबन्धों की भाँति उस युग के निबन्ध भी चार रूपों में प्रस्तुत किए गए। पहला रूप पत्रिकाओं के लिए लिखित लेखों का था। बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्दनारायण मिश्र, रामचन्द्र शुक्ल, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि लेखकों के अधिकांश निबन्ध पत्रिकाओं के लेख रूप में ही प्रकाशित हुए और आगे चलकर उन्हें संग्रह-पुस्तक का रूप दिया गया। दूसरा रूप ग्रन्थों की भूमिकाओं का था। इस दिशा में 'जायसी-ग्रन्थावली', 'तुलसी ग्रन्थावली' [द्वितीय भाग] और 'भ्रमरगीतसार' की भूमिकाएँ विशेष महत्व की हैं। तीसरा रूप भाषणों का था। द्विवेदी-युग में दिए गए हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के सभापतियों के महत्वपूर्ण भाषण इसी रूप के अन्तर्गत हैं। उस युग के निबन्धों का चौथा रूप पुस्तकों या पुस्तकों के आकार में दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ—द्विवेदी जी का 'नाट्यशास्त्र' या जयशंकर प्रसाद का 'चद्रगुप्त मौर्य।'

द्विवेदी-युग ने वर्णनात्मक, भावात्मक और चिन्तनात्मक सभी वर्ग के निबन्धों की रचना की। वर्णनात्मक निबन्धों के मुख्य चार प्रकार थे वस्तुवर्णनात्मक, कथात्मक, आत्मकथात्मक और चरितात्मक। वर्णनात्मक निबन्धों में निबन्धकार ने तटस्थ भाव से अपने या दूसरों के शब्दों में अभीष्ट विषय का वर्णन किया। उसमें उसने हृदय या मस्तिष्क को अभिभूत कर देने वाली भावविचार व्यंजना नहीं की। वस्तुवर्णनात्मक निबन्धों में किसी जड या चेतन पदार्थ का परिचयात्मक निरूपण किया गया, उदाहरणार्थ 'इंगलैंड की जातीय चित्रशाला',[1] सोना निकालनेवाली चीटियां[2] आदि। कथात्मक निबन्धों में लेखक ने श्रीमद्भागवत की कथा सुनाने वाले व्यास जी की भांति निबन्ध पाठकों का मनोरंजन करने का प्रयास किया है, यथा 'स्वर्ग की झलक',[3] 'एक अलौकिक घटना'[4] आदि। इन कथात्मक निबन्धों और आधुनिक वर्णनात्मक लघु कहानियों में अन्तर यह है कि कहानियों में कहानीकार ने कहानी की सीमा के अन्तर्गत रहकर विश्लेषण और वस्तु-विन्यास की ओर विशेष ध्यान दिया है किन्तु निबन्धकार आद्योपान्त ही स्वच्छन्द गति से चला है। इन दोनों के विकास के आरम्भिक रूपों में एकता है और एक ही रचना दोनों कोटियों में रखी जासकती है यथा 'इत्यादि की आत्मकहानी'। आत्मकथात्मक निबन्ध भी द्विवेदी-युग के साहित्य की मनोहर देन है। इन निबन्धों में वर्ण्य

---

१. काशीप्रसाद जायसवाल, 'सरस्वती', भाग ८, पृष्ठ ४१६।
२. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी 'सरस्वती' भाग १६, खंड २, पृष्ठ १३४।
३. महावीरप्रसाद, 'सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ ८२।
४. राजा पृथ्वीपालसिंह, 'सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ, ३१५।

विषय को ही वक्ता बनाकर निबन्धाकार ने उसी के मुख से उत्तम पुरुष में उसकी परिचयात्मक कहानी कही है।, यथा उपर्युक्त 'इत्यादि की आत्मकहानी',[1] 'एक अशरफी की आत्म-कहानी,[2] 'मुद्गरानन्द-चरितावली'[3] आदि। ये निबन्ध मनोरंजन की दृष्टि से विशेष आकर्षक हैं। चरितात्मक निबन्धों में ऐतिहासिक, साहित्यिक धार्मिक, राजनैतिक आदि महान् पुरुषों या स्त्रियों के जीवनचरित अंकित किए गए हैं। कुछ जीवनचरित अपने स्वामी, श्रद्धापात्र या प्रेमभाजन को सस्ती ख्याति देने के लिए भी लेखकों ने अवश्य लिखे किन्तु अधिकांश का उद्देश आदर्शचरित्रों के चित्रण द्वारा पाठकों के ज्ञान और चरित्र का विकास करना ही था। इस क्षेत्र में द्विवेदी जी के अतिरिक्त वेणीप्रसाद, काशीप्रसाद, गिरिजाप्रसाद द्विवेदी, रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मीधर बाजपेयी आदि ने महत्वपूर्ण कार्य किया। सैकड़ों जीवनचरित द्विवेदी-सम्पादित 'सरस्वती' में समय समय पर प्रकाशित हुए।

भावात्मक निबन्ध सहृदय निबन्धकार के हृदयोद्गार और पाठक के हृदय को अभिभूत कर देने वाले प्रभावाभिव्यंजक वस्तूपस्थापन हैं। द्विवेदी-युग के भावात्मक निबन्धों की तीन कोटियां हैं। एक तो साधारण भावात्मक निबन्ध हैं जिनमें चिन्तन और मर्मस्पर्शी कवित्व दोनों ही की अपेक्षाकृत न्यूनता है, उदाहरणार्थ 'कवित्व'[4] आदि। दूसरे विचारगर्भित भावात्मक निबन्ध हैं जिसमें काव्य की रमणीयता के साथ ही साथ चिन्तनीय सामग्री भी है, यथा आचरण की सभ्यता',[5] 'मजदूरी और प्रेम'[6] आदि और तीसरे गद्य-कविताओं के रूप में लिखे गए वे काव्यमय भावात्मक निबन्ध हैं जिनकी समीक्षा ऊपर कविता के प्रसंग में हो चुकी है।

चिन्तनात्मक निबन्धों में पाठकों के बौद्धिक विकास की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत की गई। बीच २ में कहीं कहीं वर्णनात्मकता या भावात्मकता का पुट होने पर भी चिन्तनात्मक निबन्धकार उनके प्रवाह में बहा नहीं है और अपनी विचार-व्यंजना के प्रति सदैव सावधान रहा है। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि ने हिन्दी साहित्य के इस अंग की सुन्दर पूर्ति की। द्विवेदी-युग के चिन्तनात्मक निबन्ध तीन श्रेणियों में रखे जासकते हैं—व्याख्यात्मक, आलोचनात्मक और

---

१. 'सरस्वती', भाग ५ पृष्ठ १६२।
२. 'सरस्वती' भाग ७, पृष्ठ ३६६।
३. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग १७ और १८ की अनेक संख्याओं में प्रकाशित।
४ चतुर्भुज औदीच्य, 'सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ १८।
५. पूर्णसिंह, 'सरस्वती', भाग १३, पृष्ठ १०१ और १४१।
६. पूर्णसिंह, 'सरस्वती', भाग १३ पृष्ठ ४१८।

तार्किक। उस युग के पाठकों की बौद्धिक इयत्ता सीमित होने के कारण उस समय चिन्तनीय विषयों की व्याख्या की नितान्त आवश्यकता थी। गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'वर्तमान नागरी अक्षरों की उत्पत्ति'[१], और 'नागरी अंकों की उत्पत्ति'[२] आदि रोचक, विचारयुक्त और ठोस निबन्ध लिखे। रामचन्द्र शुक्ल के 'साहित्य',[३] 'कविता क्या है',[४] 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य',[५] आदि निबन्ध भी व्याख्यात्मक कोटि के हैं। नागरी प्रचारिणीपत्रिका के सत्रहवें, अठारहवें, उन्नीसवें तथा तेईसवें भागों में प्रकाशित शुक्लजी के 'क्रोध', 'भ्रम', 'निद्रारहस्य', 'घृणा', 'करुणा', 'ईर्ष्या', 'उत्साह'' 'श्रद्धाभक्ति', 'लज्जा और ग्लानि' तथा 'लोभ या प्रेम आदि मनोवैज्ञानिक निबन्ध विशेष सारगर्भित और विश्लेषणात्मक हैं। श्यामसुन्दरदास का 'साहित्यालोचन' [सम्वत् १९७९] और पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का 'विश्वसाहित्य' [१९८१ ई०] आदि व्याख्याप्रधान चिन्तनात्मक निबन्धों के ही संग्रह हैं जिनमें कविता, उपन्यास, नाटक आदि का विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन किया गया है।

आलोचनात्मक निबन्ध साहित्यिक रचनाओं या रचनाकारों की समीक्षा के रूप में उपस्थित किए गए। मिश्रबन्धु का 'वर्तमानकालिक हिन्दी साहित्य के गुण दोष',[६] रामचन्द्र शुक्ल-लिखित जायसी, तुलसी और सूर की भूमिकाएं आदि निबन्ध की उसी कोटि में हैं। तार्किक निबन्धों में निबन्धकारों ने अपने सारगर्भित विचारों को युक्तियुक्त ढंग से व्यक्त किया। चिन्तनात्मक निबन्ध के इस प्रकार की विशेषता विषय के न्यायानुकूल सप्रमाण प्रतिपादन में है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, जयशंकर प्रसाद आदि के गवेषणात्मक और गुलाबराय के दार्शनिक निबन्धों का इस दिशा में महत्वपूर्ण स्थान है, उदाहरणार्थ उलूलुध्वनि [गुलेरी], 'चन्द्रगुप्त मौर्य' [प्रसाद] आदि।

भारतेन्दु युग के निबन्ध कहे जाने वाले लेखों में विषय या विचार की एकतानतान थी। एक ही निबन्ध में अनिबद्ध रूप से सबकुछ कह डालने का प्रयास किया गया था। द्विवेदी जी ने हिन्दी के निबन्ध को निबन्धता दी। उस युग के महान् निबन्धकारों के ललाट पर यशस्तिलक द्विवेदी जी के ही कृपालुकरों से लगा। वेणीप्रसाद, काशीप्रसाद, रामचन्द्रशुक्ल, लक्ष्मीधर बाजपेयी, चतुर्भुज औदीच्य, यशोदानन्दन अखौरी, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह,

---

१. प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, पृष्ठ १६।
२. 'द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्यविवरण', पृष्ठ २३।
३. 'सरस्वती', भाग ५, पृष्ठ १५४ और १८६।
४. 'सरस्वती', भाग, १०, पृष्ठ १५५।
५. 'माधुरी', भाग १, खंड, २, संख्या ५ और ६, पृष्ठ क्रमशः ७७३ और ६०३।
६. 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका', भाग १८, संख्या ३, ४, पृष्ठ ६३।

सत्यदेव, गणेशशंकर विद्यार्थी, पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी आदि के निबन्धों की आद्योपान्त काटछाँट, संशोधन और परिवर्द्धन करके द्विवेदी जी ने उन्हें पठनीय और ठोस बनाया। उदाहरणार्थ 'इत्यादि की आत्मकहानी' के लेखक यशोदानन्दन अखौरी ने भाषा-त्रुटियों के अतिरिक्त वस्तु के संग्रह और त्याग में भी अकुशलता दिखलाई थी जिसके कारण रचना का निबन्ध–सौन्दर्य नष्ट होगया था। द्विवेदी जी ने अन्य संशोधनों के साथ उसकी उपमा में लिखित पूरे अवच्छेद को ही निकाल दिया। वेंकटेश नारायण तिवारी की 'एक अशरफी की आत्मकहानी', सत्यदेव के 'राजनीति–विज्ञान'[1], पूर्णसिंह के 'आचरण की सभ्यता' तथा 'मजदूरी और प्रेम,' रामचन्द्र शुक्ल के 'कविता क्या है ?' और 'साहित्य' आदि निबन्धों में अत्यन्त शिथिलता होने के कारण उनके निबन्धत्व में दोष आ गया था। द्विवेदी जी ने उनका संस्कार और परिष्कार करके उन्हें निबन्ध का आदर्शरूप दिया।[2]

रीति और शैली

लेखक की भाषा की रीति और शैली का वास्तविक दर्शन उसके निबन्धों में ही होता है। क्योंकि नाटक, उपन्यास, कहानी आदि की अपेक्षा वह निबन्धों में अधिक स्वच्छन्दता पूर्वक लेखनी चलाकर अपने व्यक्तित्व और प्रवृत्ति की निर्बन्ध अभिव्यंजना कर सकता है। द्विवेदी-युग की भाषा और शैली का रूप भी इन्हीं निबन्धों में विशेष निखरा। द्विवेदी जी ने गद्यभाषा का परिष्कार और संस्कार भी इन्हीं निबन्धों के द्वारा किया। यह बात नागरी प्रचारिणी सभा के कलाभवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियों से स्पष्ट प्रमाणित है। 'भाषा और भाषा–सुधार' अध्याय में द्विवेदी जी की भाषा की रीति और शैली की विवेचना करते समय यह कहा गया था कि उनकी प्रौढ़ रचनाओं में आद्योपान्त कोई एक ही रीति या शैली नहीं है। उनमें सभी रीतियों और शैलियों के बीज विद्यमान थे जो आगे चलकर उनके युग के गद्य–लेखकों की कृतियों में विकसित हुए। द्विवेदी जी ने अपने युग के लेखकों की रीति और शैली का भी परिमार्जन किया था। निम्नांकित उद्धरण उनके शैली-सुधार-कार्य को और भी स्पष्ट कर देंगे :–

	मूल	संशोधित
(क)	गेरुए वस्त्र की पूजा छोड़ो। गिरजे की घन्टी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पाँच वक्त की निमाज किस काम की ? दोनों	गेरुये वस्त्रों की पूजा क्यों करते हो ? गिरजे की घंटी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पांच वक्त की नमाज क्यों पढ़ते हो, त्रिकाल सन्ध्या क्यों करते

१. 'सरस्वती', १९०९ ई०

२. द्विवेदी जी द्वारा संशोधित उपयुक्त तथा अन्य निबन्ध काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियों में देखे जा सकते हैं।

	मूल	संशोधित
	वक्तों की संध्या से क्या लाभ ? मजदूर के अनाथ नैनों, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो। दिनरात का साधारण जीवन एक ईश्वरीय रूप-भजन हो जायगा ।	हो ! मजदूर के अनाथ नयन, अनाथ आत्मा और अनाश्रित जीवन की बोली सीखो । फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो जायगा ।
	मजदूरी तो मनुष्य का व्यष्टी रूप समष्टी रूप का परिणाम है ।[1]	मजदूरी तो मनुष्य के समष्टि रूप का व्यष्टि रूप परिणाम है ।
(ख)	स्वर्णमुद्रा की आत्मकहानी गत सोमवार को मैं पं० शिव जी के सहित, कलकत्ते गया था । घूमते २ हम दोनों अद्भुतालय अजायबघर की तरफ जा निकले । (अजायबघर) की बात ही क्या ! वहा की सर्व संग्रहीत वस्तु अजीब हैं । वहां देश देशान्तर के सुन्दर, भयानक, छोटे, बड़े जीवजन्तु देखने में आते हैं यहाँ पर रंग बिरंगी चिड़ियाँ हैं, वहाँ पर नानाप्रकार की मछलियां हैं । कहीं शेर कटघरे में बन्द इस बात को बताते हैं कि 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य', और कहीं अजगरों को देखकर जगत्पिता की करुणा याद आती है ।[2]	एक अशरफी की आत्मकहानी एक दफा मैं पंडित जी के साथ कलकत्ते गया । घूमते घामते हम दोनों अजायबघर की तरफ जा निकले । अजायबघर की बात ही क्या ? वहाँ की सभी चीजें अजीब हैं । कहीं देश देशान्तर के अद्भुत २ जीव जन्तु हैं, कहीं पर रंग बिरंगी चिड़ियां हैं, कहीं नाना प्रकार की मछलियां हैं, कहीं शेर कटघरे में बन्द इस बात को बतलाते हैं कि बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, और कहीं अजगरों को देखकर हिन्दुस्तान की अजगर-वृत्ति का स्मरण होता है ।

---

१. 'पूर्णसिंह', मजदुरी और प्रेम, 'सरस्वती', १६११ ई०, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन में रक्षित 'सरस्वती' की हस्तलिखित प्रतियाँ ।

२. वेंकटेश नारायण तिवारी 'एक अशरफी की आत्मकहानी,' सरस्वती १६०६ ई०, उपर्युक्त स्थान पर रक्षित प्रतियाँ ।

(ग) कविता मनुष्यता की संरक्षिणी है कविता सृष्टि के किसी पदार्थ वा व्यापार के उन अंशों को छांट कर प्रत्यक्ष करती है जिनकी उत्तमता वा बुराई मनुष्यमात्र की कल्पना में इतनी प्रत्यक्ष हो जाती है कि बुद्धि को अपनो विवेचन क्रिया से छुट्टी मिल जाती है और हमारे मनोवेगों के प्रवाह के लिए स्थान मिल जाता है। तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उभाड़ने की एक युक्ति है।[1]	कविता से भाव की रक्षा होती है। सृष्टि के पदार्थ या व्यापार विशेष को कविता इस तरह व्यक्त करती है मानों वे पदार्थ या व्यापार विशेष नेत्रों के सामने नाचने लगते हैं। वे मूर्तिमान् दिखाई देने लगते हैं। उनकी उत्तमता या अनुत्तमता का विवेचन करने में बुद्धि से काम लेने की जरूरत ही नही। कविता की प्रेरणा से मनोवेगों के प्रवाह जोर से बहने लगते हैं तात्पर्य यह कि कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है।

द्विवेदी-युग की गद्य भाषा में मुख्यतः चार रीतियां दिखाई देती है :- संस्कृत-पदावली, उर्दू ए-मुअल्ला, ठेठ हिन्दी और हिन्दुस्तानी। गोविन्द नारायण मिश्र, श्यामसुन्दरदास चंडीप्रसाद हृदयेश आदि ने संस्कृत-गर्भित हिन्दी का प्रयोग किया है और अन्य भाषाओं के शब्दों को दूध की मक्खी की भांति निकाल फेंका है। वस्तुत: हिन्दी का कोई लेखक उर्दूए-मुअल्ला का एकान्त लेखक नहीं हुआ। यदि वह ऐसा करता तो हिन्दी का लेखक ही न रह जाता। बालमुकुन्द गुप्त, पद्मसिंह शर्मा, प्रेमचन्द आदि ने यत्र तत्र अरबी-फारसी- प्रधान भाषा का प्रयोग किया है, यथा 'सेवासदन' में म्यूनिसिपल बोर्ड की बैठक के अवसर पर। ठेठ हिन्दी का वास्तविक दर्शन हरिऔध जी के 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' में मिलता है। प्रेम चन्द, जी. पी॰ श्रीवास्तव आदि ने भी अपने देहाती पात्रों के मुख से ठेठ हिन्दी बुलवाई है। हिन्दुस्तानी [वर्तमान रेडिओ की हिन्दुस्तानी कही जाने वाली उर्दूए-मुअल्ला नहीं] का सुन्दर रूप देवकी नन्दन खत्री के उपन्यासों में दिखाई पड़ता है। प्रेमचन्द तथा कृष्णानन्द गुप्त आदि की भाषा में भी हिन्दी उर्दू के समिश्रण से हिन्दुस्तानी का प्रयोग हुआ है। संस्कृत की परुषा, उपनागरिका और कोमला वृत्तियों की दृष्टि से भी हम द्विवेदी-युग के गद्य की समीक्षा कर सकते हैं। गोविन्द नारायण मिश्र, श्यामसुन्दरदास आदि की भाषा में कर्णकटु शब्दों के बहुत प्रयोग के कारण परुषा, रायकृष्ण दास, वियोगी हरि आदि के गद्यकाव्यों में कोमलकान्त पदावली का समावेश होने के कारण कोमला और रामचन्द्र शुक्ल,

१. १९०९ ई॰ की 'सरस्वती' की उपर्युक्त प्रतियों में रामचन्द्र शुक्ल लिखित, 'कविता क्या है।'

सत्यदेव आदि की रचनाओं में उपर्युक्त दोनों वृत्तियां का समन्वय होने के कारण उपनागरिका वृत्ति का प्रयोग हुआ है।

द्विवेदी-युग की भाषा–शैली के निम्नांकित सात वर्ग किए जा सकते हैं:-- वर्णनात्मक, व्यंग्यात्मक, चित्रात्मक, वक्तृतात्मक, संलापात्मक, विवेचनात्मक और भावात्मक। राम नारायण मिश्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सत्यदेव आदि के भौगोलिक लेखों, काशी-प्रसाद जायसवाल, रामचन्द्र शुक्ल, लक्ष्मीधर बाजपेयी आदि के द्वारा लिखित जीवनचरित्रों प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा, वृन्दाबनलाल वर्मा आदि की अधिकांश कहानियो, यशोदा नन्दन अखौरी, वेंकटेश नारायण तिवारी, रामावतार पांडेय आदि के कथात्मक निबन्धों और मिश्रबन्धु आदि की परिचयात्मक आलोचनाओं की भाषा-शैली वर्णनात्मक है। इस शैली की विशेषता यह है कि लेखकों ने शब्द-चयन में किसी एक ही भाषा के शब्द-ग्रहण और अन्य भाषाओं के शब्दों के बहिष्कार का आग्रह नहीं किया है। आवश्यकतानुसार उन्होंने किसी भी भाषा के शब्द को निस्संकोच भाव से अपनाया है। भावव्यंजना अत्यन्त सरल और सुबोध हुई है। किसी भी प्रकार की क्लिष्टता या जटिलता अर्थ ग्रहण में बाधक नहीं है।

व्यंग्यात्मक शैली द्विवेदी-युग की भाषा की प्रमुख विशेषता है। द्विवेदी-युग के सम्पादकों और आलोचकों–बालमुकुन्द गुप्त, गोविन्द नारायण मिश्र, लक्ष्मीधर बाजपेयी आदि–के अतिरिक्त धर्म प्रचारकों ने भी इस शैली का अतिशय अवलम्बन किया। द्विवेदी-सम्बन्धित अनेक वाद-विवादों की चर्चा प्रस्तुत ग्रन्थ के 'साहित्यिक संस्मरण' अध्याय में हो चुकी है। उन वाद-विवादों और शास्त्रार्थ-पद्धति पर की गई आलोचनाओं में व्यंग्यात्मक शैली का पूरा विकास हुआ है। इस शैली की विशेषता यह है कि लेखकों ने किसी बात को सीधे सादे स्पष्ट शब्दो में न कहकर उसे घुमा फिराकर लक्षणा और व्यंजना के द्वारा व्यक्त किया है। यह शैली कहीं तो आक्षेप-प्रक्षेप से पूर्ण है, यथा उपर्युक्त विवादों में और कहीं काव्योपयुक्त ध्वनि के रूप में प्रयुक्त हुई है, यथा गद्य काव्यों, नाटको आदि में। भावना की गहनता और कोमलता के अनुसार ही विवादों में अन्य भाषाओं के भी चुभते हुए शब्दों का लट्ठमार प्रयोग किया गया है किन्तु दूसरे प्रकार की रचनाओं में संस्कृत की भावपूर्ण और ध्वन्यात्मक पदावली का ही प्रायः व्यवहार हुआ है।

चित्रात्मक शैली का कला-सौन्दर्य-प्रेमी गद्य-लेखक वस्तुतः एक चित्रकार है। अन्तर केवल इतना ही है कि लेखक के पास शब्द उपकरण हैं और चित्रकार के पास रंग, फलक तथा तूलिका। साधन की कमी के कारण लेखक का चित्रांकन-कर्म कठिनतर

है। इस शैली के द्विवेदी-युगीन प्रतिनिधि लेखक चण्डीप्रसाद हृदयेश हैं। उनकी प्रत्येक कृति इस शैली से विशिष्ट है। जयशंकरप्रसाद की कहानियों, रायकृष्णदास के गद्य-काव्यों, पूर्णसिंह के भावात्मक निबन्धों आदि में भी स्थान स्थान पर इस शैली का प्रयोग हुआ है। इस शैली के लेखकों ने संस्कृत की कोमलकान्त पदावली के प्रति विशेष आग्रह किया है।

धार्मिक, राजनैतिक आदि आन्दोलनों, उनके वक्ताओं और उपदेशकों ने वक्तृतात्मक शैली को विशेष प्रोत्साहन दिया। हिन्दी के प्राय: सभी पाठकों को सब कुछ सिखाने की आवश्यकता थी। परिस्थितियों ने द्विवेदी-युग के साहित्यकार को स्वभावत: उपदेशक और वक्ता बना दिया। फलस्वरूप लेखकों ने वक्तृतात्मक शैली का प्रयोग किया। इस शैली की विशेषता यह है कि लेखक सभा-मंच पर खड़े होकर भाषण करने वाले वक्ता की भांति धारावाहिक और ओजपूर्ण भाषा में अपना वक्तव्य देता हुआ चला जाता है। पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करने के लिए वह बीच बीच में संबोधन-शब्दों के प्रयोग, वाक्यों और वाक्यांशों की पुनरावृत्ति, प्रश्नों की योजना, विरोध और विरोधाभास, चमत्कारपूर्ण विशेषणों आदि की सहायता भी लेता है। द्विवेदी-युग के साहित्यकारों में श्यामसुन्दरदास और चतुरसेन शास्त्री इस शैली के श्रेष्ठ लेखक हैं। पद्मसिंह शर्मा, पूर्णसिंह, सत्यदेव आदि की भाषा में भी इसका यथास्थान समावेश हुआ है। इस शैली की रचनाओं की भाषा-रीति लेखकों के इच्छानुसार विभिन्न प्रकार की है। उदाहरणार्थ, श्यामसुन्दरदास की भाषा शुद्ध संस्कृत-प्रधान और चतुरसेन शास्त्री की संस्कृत-पदावली यत्र-तत्र उर्दू शब्दों से गुम्फित है।

संलापात्मक शैली का लेखक पाठक से एक घनिष्ठ सम्बन्ध सा स्थापित कर लेता है। वह अपने वक्तव्य को इस घरेलू ढंग से उपस्थित करता है कि मानो पाठक से समालाप कर रहा हो। वक्तृतात्मक और संलापात्मक शैलियों का मुख्य अन्तर यह है कि पहली में ओज की प्रधानता रहती है और दूसरी में माधुर्य की। द्विवेदी-युग में संलापात्मक शैली का सिद्ध लेखक कोई नहीं हुआ। नाटकों या संलाप-रचनाओं[1] की भाषा शैली को संलापात्मक नहीं कहा जा सकता क्योंकि वहाँ लेखक की प्रवृत्ति और व्यक्तित्व की कोई व्यंजना नहीं होती। वह तो लेखक-सन्निवेशित पात्रों के कथोपकथन की अनिवार्य प्रणाली है। कहानियों और उपन्यासों के पात्रों के कथोपकथन में लेखकों की संलापात्मक प्रवृत्ति अवश्य दिखाई देती है। लाला पार्वतीनन्दन के 'तुम हमारे कौन हो',[2] श्रीमती बंग महिला के 'चन्द्रदेव से

१. राय कृष्णदास का 'संलाप' आदि।
२. 'सरस्वती', १९०४ ई०, पृष्ठ ११८।

मेरी बातें"[1] आदि निबन्धों में भी संलापात्मक शैली का सुन्दर रूप व्यक्त हुआ है। इस शैली के लेखों में हिन्दी, उर्दू या हिन्दुस्तानी का स्वच्छन्द प्रयोग हुआ है। राय कृष्णदास वियोगी हरि आदि के अनेक गद्यगीत भी इस शैली से विशिष्ट हैं।

ठोस ज्ञान की अभिव्यंजन की दृष्टि से विवेचनात्मक शैली का साहित्य में विशिष्ट स्थान है। इस शैली का लेखक अपने निश्चित विचारों को निश्चित शब्दावली के द्वारा सारगर्भित ढंग से व्यक्त करता है। अन्य शैलियों से इस शैली की मुख्य विशिष्टता यह है कि इसमें विशेष विवेचन की सूक्ष्मता और विचारों की गहराई अपेक्षाकृत अधिक होती है। अन्य शैलियों में संवेदनात्मकता का भी बहुत कुछ पुट रहता है किन्तु विवेचनात्मक शैली हृदय संवादी न होकर मस्तिष्क प्रधान ही है। श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी आदि के चिन्तनात्मक लेखों में इस शैली का अच्छा विकास हुआ है। रामचन्द्र शुक्ल के चिन्तनात्मक निबन्ध उन्हें निर्विवाद रूप से शैली का महत्तम द्विवेदी-युगीन लेखक सिद्ध करते हैं। द्विवेदी-युग के विवेचनात्मक शैली के लेखकों की भाषा प्रायः संस्कृत-प्रधान ही है। अपनी विचार-व्यंजना को असमर्थ समझकर पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने कहीं कहीं कोष्टक और कहीं कहीं वाक्यक्रम में ही अँग्रेजी के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।[2]

भावात्मक शैली की विशेषता काव्यमयी भावव्यंजना है। इस शैली के लेखकों ने भावों की कोमलता के कारण तर्कसंगत शब्दावली के स्थान पर हृदयहारी कोमल कान्त पदावली के सन्निवेश पर ही विशेष ध्यान दिया है। इसके दो प्रधान रूप परिलक्षित होते हैं। पहला रूप 'कादम्बरी' आदि संस्कृत गद्यकाव्यों से प्रभावित चंडीप्रसाद हृदयेश, गोविन्द नारायण मिश्र आदि की आलंकारिक शैली है जिसमें उपमा, रूपक, अनुप्रास आदि अलंकारों की योजना द्वारा चमत्कार-प्रदर्शन का प्रयास किया गया है। इस का उत्कृष्टतम रूप हृदयेश जी की रचनाओं में ही है। कुछ लेखकों ने कहीं कहीं बरबस और अतिशय अलंकार-योजना के द्वारा भाषा और भाव के सौन्दर्य का नाश कर दिया है, यथा जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'अनुप्रास का अन्वेषण'[3] लेख में। इस शैली का दूसरा रूप पूर्णसिंह, रायकृष्णदास, वियोगीहरि, चतुरसेन शास्त्री आदि की निरलंकार या यत्र तत्र अनायास ही अलंकृत, प्रसाद, माधुर्यमयी मार्मिक भाव व्यंजना में मिलता है। 'मजदूरी और प्रेम', 'साधना', 'अन्तर्नाद', 'अन्तरतल' आदि रचनाएँ इस शैली की दृष्टि से विशेष उदाहरणीय हैं।

---

१. 'सरस्वती' १९०४ ई०, पृष्ठ ४४० ।

२. उदाहरणार्थ 'विश्व-साहित्य', और 'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका ।

३. छठे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्यविवरण, भाग २ पृ० १६...।

आलोचना

भारतेन्दु-युग ने कवि, नाटककार, कथाकार, निबन्धकार आदि के पद से जीवन की सर्वतोमुखी आलोचना की और कारयितृप्रतिभा ही उन समीक्षाओं का कारण रही। किन्तु उस युग का कोई भी साहित्यकार भावयितृप्रतिभा के आधार पर साहित्य का गणयमान्य समालोचक नहीं हुआ। समीक्षा-सिद्धांत के क्षेत्र में भारतेन्दु ने 'नाटक' नाम की पुस्तिका तो लिखी भी परन्तु रचनाओं की आलोचना में कुछ भी नहीं प्रस्तुत किया। १८९७ ई० की नागरी प्रचारिणी पत्रिका [पृष्ट १५ से ४७] में गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना' निबन्ध प्रकाशित हुआ। उसमें समालोचना के गुणों–मूल ग्रन्थ का ज्ञान, सत्यप्रीति, शान्त स्वभाव और सहृदयता–का परिचयात्मक शैली में वर्णन किया गया, आलोचना के तत्वों का ठोस और सूक्ष्म विवेचन नहीं। उसी पत्रिका [पृष्ठ ८८ से ११६] में जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'समालोचनादर्श' लिखा। वह लेखक के स्वतंत्र चिन्तन का फल न होकर अँग्रेजी साहित्यकार पोप के 'एसे ऑन क्रिटिसिज़्म' का अनुवाद था। उसी पत्रिका के अन्तिम ५३ पृष्ठों में अम्बिकादत्त व्यास का 'गद्यकाव्य-मीमांसा' लेख छपा। उस लेख में आलोचक ने आधुनिक गद्यकाव्य की मौलिक समीक्षा न करके संस्कृत आचार्यों, विशेष कर साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ, के अनुसार संस्कृत की कथा और आख्यायिका का सांगोपांग वर्णन किया है। १९· ई० की 'सरस्वती' में द्विवेदी जी ने 'नायिकाभेद' [पृष्ठ १९५] और कविकर्त्तव्य' [पृष्ठ २३२] लेख लिखे। इन लेखों में उन्होंने कवियों को युग-परिवर्तन करने की चेतावनी दी। नायिकाभेद-विषयक पुस्तकों के लेखन और प्रचार को रोकने के लिए उन्होंने आचार्य के साहित्यकार स्वर में कहा—

"इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुंचेगी, उल्टा लाभ होगा। इनके न होने ही से समाज का कल्याण है। इनके न होने ही से नववयस्क युवाजनों का कल्याण है। इनके न होने ही से इनके बनाने और बेचनेवालों का कल्याण है।[1]"

उन्होंने संहारात्मक सिद्धान्तों का केवल उपदेश ही नहीं दिया, कवियों के समक्ष निश्चित रचनात्मक कार्यक्रम भी उपस्थित किया—

"आजकल हिन्दी संक्रान्ति की अवस्था में है। हिन्दी कवि का कर्त्तव्य यह है कि वह लोगों की रुचि का विचार रख कर अपनी कविता ऐसी सहज और मनोहर रचे कि साधारण पढ़े लिखे लोगों में भी पुरानी कविता के साथ साथ नई कविता पढ़ने का अनुराग उत्पन्न हो जाय।······"[2]

---

१. 'रसज्ञरंजन', नायिकाभेद', पृ० १६।

२. 'रसज्ञरंजन', पृ० १७।

उसी वर्ष की 'सरस्वती' [पृष्ट ३२८] में सेठ कन्हैयालाल पोद्दार का 'कवि और काव्य' लेख छपा जिसमें उन्होंने संस्कृत आचार्यों के मतानुसार कवि और काव्य की रूपरेखा का चित्र खींचा। जैसा ऊपर कहा जा चुका है १९०३ ई० से द्विवेदी-युग आरम्भ हुआ उसमें सभी विषयों पर सैद्धान्तिक आलोचनाएँ लिखी गईं। भारतेन्दु-युग ने अपने को छन्द, अलंकार आदि के बन्धन से मुक्त करने का प्रयास किया था परन्तु वह अधूरा ही रहा। उन रीतिकालीन बन्धनों का प्रभाव द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध में भी बना रहा। परिवर्तनशील परिस्थितियाँ और द्विवेदी जी की आदर्श भावनाओं के परिणामस्वरूप द्विवेदी-युग के उत्तरार्द्ध में उनका प्रभाव नष्ट होगया।

संस्कृत-आचार्यों के अनुकरण पर पिंगल, रस, अलंकार और नायक-नायिका भेद पर सामयिक पत्रों में प्रकाशित लेखों के अतिरिक्त अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। हरदेवप्रसाद ने 'पिंगल वा छन्दपयोनिधि भाषा' (सं० १९८३), कन्हैयालाल मिश्र ने 'पिंगलसार' (द्वितीय सं० १९११ ई०), जगन्नाथप्रसाद भानु ने 'काव्यप्रभाकर' (सं० १९६६), और 'छन्दः सारावली' (१९१७ ई०), बलदेवप्रसाद निगम ने 'श्यामालंकार' (१९६७), बाबूराम शर्मा ने 'काव्य प्रदीपिका' (सं० १९६७), मागीलाल गुप्त ने 'भाषा पिंगल' (सं० १९६७) रामनरेश त्रिपाठी ने पद्य प्रबोध' (१९१३ ई०) और 'हिन्दी पद्य रचना' (१९७४ वि०) विनायकराव ने 'काव्य-कुसुमाकर',[1] पुत्तनलाल विद्यार्थी ने 'सरल पिंगल' और वियोगी हरि ने 'वृत्तचन्द्रिका' (१९७९ वि०) नामक पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों में छन्दःशास्त्र के नियमों का संक्षिप्त निरूपण किया गया। रस और अलंकार के क्षेत्र में 'रस वाटिका',[2] 'समास-विवरण',[3] 'काव्यप्रवेश',[4] 'अलंकार-प्रबोध',[5] 'अलंकार प्रश्नोत्तरी',[6] 'हिन्दी-काव्यालंकार',[7] 'प्रथमालंकार-निरूपण',[8] 'नवरस',[9] 'अनूदित साहित्य दर्पण',[10] 'साहित्य-

---

१. प्रथम भाग, सं० १९७३ और द्वि० भाग १९१९ ई०।
२. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री, सं० १९६०।
३. अध्यापक रामरत्न।
४. अध्यापक रामरत्न, सं० १९७१।
५. अध्यापक रामरत्न सं० १९७४।
६. जगन्नाथ प्रसाद साहित्याचार्य, १९१८ ई०।
७. जगन्नाथ प्रसाद साहित्याचार्य, १९१८ ई०।
८. चन्द्रशेखर शास्त्री, १९७६ वि०।
९. गुलाबराय, सं० १९७०।
१०. शालग्राम शास्त्री, सं० १९७८।

परिचय',[१] और 'भाषा-भूषण',[२] नामक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। द्विवेदी जी के कठोर अनुशासन के कारण नायक-नायिका भेद और नख शिख-वर्णन पर अधिक ग्रन्थ-रचना नहीं हुई। आरम्भ में विद्याधर त्रिपाठी ने 'नवोढ़ादर्श' (१६०४ ई०) और माधवदास सोनी ने 'नखशिख' (सं० १६६२) लिखे। आगे चलकर केवल जगन्नाथप्रसाद भानु की 'रस-रत्नाकर' १६०६ ई० और 'नायिका भेद-शंकावली' (१६२५ ई०) को छोड़कर इस विषय पर कोई अन्य उल्लेखनीय रचना नहीं हुई।

द्विवेदी-युग में लिखित अधिकांश साहित्य शास्त्र-समीक्षाएँ ठोस और गम्भीर नहीं हैं। रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, श्यामसुन्दरदास, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि कुछ ही लेखकों ने साहित्य सिद्धान्तो का सूक्ष्म और विशद विवेचन किया। सुधाकर द्विवेदी ने अपने 'हिन्दी साहित्य' लेख में संस्कृत की सहायता से साहित्य की व्याख्या की और साहित्य को सागोपांग काव्य बतलाया। साहित्य के विविध पक्षों का विस्तृत विवेचन न करके उन्होंने उसके रूप का एक स्थूल लक्षण मात्र बताया—"काव्य के नाटक, अलंकार···जितने अंग हैं सबो के सहित होने से साहित्य कहा जाता है।"[३] अपने उसी लेख में उन्होंने राजशेखर, मम्मट आदि संस्कृत-आचार्यों का उद्धरण देते हुए काव्य की थोथी परिभाषा की—"जो देश की भाषा हो उसी में कुछ विशेष अर्थ दिखलाने को जिससे उस देश के सुनने वालों को एक रस मिल जाने से खुशी हो, काव्य कहते हैं।" काव्य को किसी देश-भाषा और उसी देश के सुनने वालों तक सीमित कर देने में अव्याप्ति है। 'रस', 'खुशी' आदि शब्दों का ढीले ढाले अर्थ में प्रयोग करने से वाक्य की गम्भीरता नष्ट हो गई है और वह अभीष्ट अर्थव्यंजना करने में असमर्थ हो गया है। गोविन्दनारायण मिश्र ने द्वितीय साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर अपने सभापति के भाषण में लच्छेदार और आलंकारिक भाषा में साहित्य का काव्यमय चित्र खींचा।[४] उन्होंने उसकी कोई चिन्तनाजनक परिभाषा नहीं की। गोपालराम

---

१. रामशंकर त्रिपाठी, सं० १६८१।

२. ब्रजरत्नदास।

३. प्रथम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, पृ० ३४।

४. पूरा उद्धरण निम्नांकित है:—

कोई कहते हैं कि साहित्य स्वर्ग की सुधा है, यह किसी व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति नहीं, रचयिता की भी निज की वस्तु नहीं, यह देवताओं की अमृतमयी रसीली वाणी है। कोई कहते हैं स्त्री पुरुषों की विचार-शक्ति को पुष्ट कर ज्ञान और विवेक बुद्धि का गठ जोड़ा बांध, सार्वजनिक कर्त्तव्य बुद्धि और सब सद्गुणों सहित शील सम्पन्न बनाने के साथ ही मनुष्यों के मन को सर्वोत्कृष्ट अपूर्व अलंकारों से अलंकृत कर अपूर्व रसास्वादन का आनन्द उपभोग कराने के अद्वितीय साधन का नाम ही साहित्य है। मैं भी इन विद्वानों के स्वर में अपना

गहमरी ने अपने 'नाटक और उपन्यास' लेख में चुलबुली भाषा में नाटक से उपन्यास की भिन्नता को लेकर कुछ स्थूल बातें बतलाईं। उपन्यास के तत्वों की सूक्ष्म विवेचना नहीं की। बदरी नारायण चौधरी ने रूपक का लक्षण बतलाया—रूप के आरोप को रूपक कहते हैं जो सामान्यतः चार प्रकार से अनुकरण किया जाता है।"[1] जगन्नाथदास विशारद ने नाटक की परिभाषा करते हुए लिखा-'नाटक उसको कहते हैं जिसमें नाट्य हो, 'अवस्थानुकृति नाट्यम्' अवस्था का अनुकरण करने का नाम नाट्य है।"[2] श्यामसुन्दरदास ने भी यही त्रुटि की है—"किसी भी अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं।"[3] "इन समीक्षकों ने धनञ्जय और धनिक के कथन का अक्षरशः अनुवाद मात्र कर दिया है। उन्हें चाहिए था कि 'अवस्था' और 'अनुकृति' शब्दों की विशद् व्याख्या करके उनके अर्थ को स्पष्ट करते। दश रूपक में प्रयुक्त 'अवस्था' का अर्थ क्षुधावस्था, तुष्टावस्था बाल्यावस्था, वृद्धावस्था, सम्पन्नावस्था, विपन्नावस्था आदि न होकर धीर, उदात्त आदि नायकों के स्थायी भाव की अवस्था है। इसका कारण संस्कृत नाटककार की दृष्टि की विशिष्टता है। उसका मानव जीवन के धर्म आदि पदार्थों में से किसी एक को पाने का प्रयास करता है और संघर्षों के पश्चात् उसे प्रतिनायक के विरोध पर विजय तथा अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति होती है। नाट्यकला के प्रभाव से संस्कृत-नाटक का पाठक या

स्वर मिलाकर यही कहता हूँ कि सरद् पूनों के समुदित पूरनचन्द की छिटकी जुन्हाई सकल मन भाई के भी मुँह मसि मल, पूजनीय अलौकिक पद नख चन्द्रिका की चमक के आगे तेजहीन मलीन औ कलंकित कर दरसाती, लजाती, सरस सुधा धवली, अलौकिक सुप्रभा फैलाती, अशेष मोह जड़ता प्रगाढ़ तमतोम सटकाती, मुकाती निज भक्त जन मन वांछित बराभय भुक्ति मुक्ति सुचारु चारों हाथों से मुक्ति लुटाती, सकल कलापालाप कलकलित सुललित सुरीली मीड़ गमक झनकार सुतार तार सुर ग्राम अभिराम लसित बीन प्रवीन पुस्तकाकलित मखमल से समधिक सुकोमल अतिसुन्दर सुविमल ताल प्रवाल से लाल कर पल्लव वल्लव सुहाती, विविध विद्या विज्ञान सुभ सौरभ सरसाते विकसे फूले सुमनप्रकाश हास वास वसे अनायास सुगंधित सित वसन लसन मोहा सुप्रभा विकसाती, मानसबिहारी मुक्ताहारी नीर क्षीर विचार सुचतुर कवि कोविद राज राजहंस हिय सिंहासन निवासिनी मन्दहासिनी त्रिलोक प्रकासिनी सरस्वती माता के अति दुलारे प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम अनोखी अतुल बल वाली परम प्रभावशाली सुजन मनमोहनी नव रस भरी सरस सुखद विचित्र वचन रचना का नाम ही साहित्य है।

द्वितीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग १, पृ० २६, ३०।

१. द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग १ पृष्ठ ४५।
२. द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, पृष्ठ २३८।
३. रूपक रहस्य, पृ० ४७।

दर्शक नाटक के प्रत्येक कार्य को नायक की दृष्टि से ही देखता है। नायक ही सम्पूर्ण नाटक का केन्द्र होता है। अतएव उसी की मानसिक अवस्था की अनुकृति नाटक का लक्षण मानी गई है। 'अनुकृति' का अर्थ 'अनुकरण' करने में भी उपर्युक्त सभी समीक्षकों ने भूल की है। नाटक अनुकरण नहीं है। अनुकरण में अनुकार्य और अनुकारक दोनों उपस्थित रहते हैं किन्तु नाटक में अनुकारक अभिनेताओं के समक्ष अनुकार्य नायकादि उपस्थित नहीं रहते अनुकृति का वास्तविक अर्थ अनुव्यवसाय पुनः सर्जन है। नाटक में अभिनेता द्वारा नायक के स्थायी भाव की पुनः सर्जना की जाती है। अभिनय, नेपथ्य आदि इसी अनुसर्जना के साधक हैं। नाट्यकला का विवेचन यहाँ अपेक्षित नहीं है। इस आलोचना का तात्पर्य केवल इतना ही है कि उपर्युक्त समालोचकों ने साहित्य-सिद्धान्तों का तर्क सम्मत विवेचन नहीं किया। प्रेमचन्द ने अपने 'उपन्यास-रचना'[१] लेख में पाश्चात्य आलोचकों के मतानुसार उपन्यास के तत्वो और साधनों का वर्णनात्मक शैली में निरूपण किया। श्यामसुन्दरदास के 'नाट्यशास्त्र' निबन्ध[२] का आधार धनञ्जय का दसरूपक और विश्वनाथ-कृत साहित्य-दर्पण है। उनका 'रूपक-रहस्य' इसी लेख का परिवर्द्धित और संशोधित संस्करण है।

रामचन्द्र शुक्ल की प्रवृत्ति आरम्भ से ही गम्भीर और विवेचनात्मक रही। अपने 'साहित्य'[३] निबन्ध में उन्होंने उसके तत्वों की सूक्ष्म व्याख्या की। उसमें उन्होंने साहित्य को काव्य सम्बन्धी साहित्य माना है—"विज्ञान पदार्थ या तत्व का बोधक है और साहित्य कल्पना और विचार का, विज्ञान ब्रह्मांड व्याप्त है और साहित्य का स्थान किसी एक व्यक्ति में।" किन्तु आगे चलकर उन्होंने उसकी सीमा को अधिक विस्तृत माना। "साहित्य के अन्तर्गत वह सारा वाङ्मय लिया जा सकता है जिसमें अर्थ-बोध के अतिरिक्त भावोन्मेष अथवा चमत्कारपूर्ण अनुरंजन हो तथा जिसमें ऐसे वाङ्मय की विचारात्मक समीक्षा या व्याख्या हो।"[४] तेरहवें हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर द्विवेदी जी ने गागर में सागर भरने की कहावत चरितार्थ करते हुए साहित्य की संक्षिप्त और सुन्दर परिभाषा की—"ज्ञान राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है।"[५] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने 'विश्व-साहित्य' में विज्ञान पर भी एक अध्याय लिखकर साहित्य को अँगरेजी 'लिटरेचर' का समानार्थी माना है। श्यामसुन्दरदास ने अपने 'साहित्यालोचन' में (पृष्ठ

---

१. माधुरी, भाग १, खंड १, पृ० ३२४।

२. नागरी प्रचारिणी पत्रिका सं० १९८२, पृ० ४३ से १०२।

३. सरस्वती, १९०४ ई०, पृ० १२४ और १९५।

४. इन्दौरवाले भाषण का आरम्भ।

५. तेरहवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष पदसे भाषण

१२, १३) साहित्य और विज्ञान के अन्तर का विवेचन करके साहित्य को केवल काव्य सम्बन्धी साहित्य के अर्थ में ग्रहण किया है। शुक्ल जी ने द्विवेदी-युग में आचार्य-पद्धति पर कोई ग्रन्थ नहीं लिखा। उसके अभाव की कुछ कुछ पूर्ति उनके निबन्धों द्वारा हो जाती है। 'कविता क्या है',[1] 'काव्यमय प्राकृतिक दृश्य',[2] आदि में उन्होंने साहित्य सम्बन्धी विषयों की तर्कपूर्ण व्याख्या की है। जायसी, सूर, तुलसी आदि पर लिखित आलोचनाओं में भी यथास्थान सिद्धान्तों का अभिनिवेश-पूर्वक निरूपण किया है।[3] द्विवेदी-युग के सिद्धान्त समीक्षकों में शुक्ल जी के अतिरिक्त चार और आलोचकों का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। गुलाबराय ने अपने 'रसों का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध'[4] नामक लेख तथा 'नव रस ग्रन्थ' में, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी अपने 'हिन्दी साहित्य विमर्श' (सं० १९८०) और 'विश्व-साहित्य' (सं० १९८१) में तथा श्यामसुन्दरदास ने अपने 'साहित्यालोचन' (सं० १९७६) में भारतीय और पश्चिमीय साहित्य-सिद्धान्तों सामंजस्य और गम्भीर विवेचना की है। रामचन्द्र शुक्ल और गुलाबराय के अधिकांश सिद्धान्त भारतीय और विचार-व्यंजना प्रणाली पश्चिम की है। उन्होंने यथास्थान पश्चिम के विचारों का भी सन्निवेश कर दिया है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और श्यामसुन्दरदास की अभिव्यंजना-शैली तो पश्चिम की है ही, उन्होंने पाश्चात्य विचारों को भी प्रधानता दी है। भारतीयता के संस्कार के कारण उन्होंने भारतीय सिद्धान्तों का यथास्थान सन्निवेश किया है, उदाहरणार्थ 'साहित्यालोचन' के काव्य, नाटक, रस आदि प्रकरणों में। किन्तु उनका संस्कृत साहित्य का ज्ञान परार्जित है। रामचन्द्र शुक्ल की दूसरी विशेषता यह है कि उनकी आलोचनाओं में सर्वत्र ही स्वतंत्र चिन्तन और मौलिक विवेचन की छाप है। 'साहित्यालोचन' विचारों की दृष्टि से मौलिक न होते हुए भी उस विषय पर हिन्दी-साहित्य का अद्वितीय ग्रन्थ है। उसने अतीत में हिन्दी की बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है और वर्तमान में भी कर रहा है। शालग्राम शास्त्री के 'साहित्य-दर्पण' ने एक टीका होते हुए भी हिन्दी के तद्विषयक अभाव की अनुपेक्षणीय पूर्ति की है। द्विवेदी-युग में जब हिन्दी-साहित्य का विकास हो रहा था, संस्कृत के साहित्य-

---

१. सरस्वती, १९०९ ई०, पृ० १५५।

२. माधुरी, भाग १, खंड २, सं० ५ और ६, पृ० ४७३ और ६०७, १९२३ ई०।

३. "कवि कर्मविधान के दो पक्ष होते हैं–विभाव पक्ष और भाव पक्ष। कवि एक ओर ऐसी वस्तुओं का चित्रण करता है जो मन से कोई भाव उठाने या उठे हुए भी को और जगाने में समर्थ होती हैं और दूसरी ओर उन वस्तुओं के अनुरूप भाव के अनेक स्वरूप शब्दों द्वारा व्यक्त करता है······आदि

"त्रिवेणी" महाकवि सूरदास पृ० ९१।

४. नवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्य-विवरण, भाग २, पृ० ७९।

सिद्धान्तो की सम्यक् विवेचना की बड़ी आवश्यकता थी। थोड़े बहुत जो लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए उनमें किसी आचार्य के मत की अन्तः समीक्षा नहीं हुई। इसका कारण यह था कि यदि आलोचक संस्कृत का पंडित होता था तो हिन्दी से अनभिज्ञ था और यदि हिन्दी का विद्वान होता था तो संस्कृत का पल्लवग्राही। शास्त्री जी हिन्दी और संस्कृत दोनों ही साहित्यों के धुरन्धर विद्वान थे अतएव उन्होंने विश्वनाथ के सिद्धान्तों की सफलतापूर्वक व्याख्या की।

द्विवेदी-युग में टीका पद्धति पर तीन प्रकार की रचनाएँ हुईं—अर्थ-परिचय, रचना-परिचय और रचनाकार-परिचय के रूप में। इन परिचयों को टीका-पद्धति के अन्तर्गत मानने का आधार यह है कि इनकी विचारव्यंजना-शैली उसी पद्धति की भाँति वर्णनात्मक है और बीच बीच में उसी की भांति काव्यगत विशेषताओं का भी परिचय दिया गया है। अर्थ परिचय दो प्रकार का है--शुद्ध टीका और आलोचनाओं के बीच बीच में सुन्दर काव्य-मय पदों की व्याख्या। साहित्यदर्पण की टीका का उल्लेख ऊपर हो चुका है। लाला भगवानदीन ने संस्कृत की टीका-पद्धति पर 'रामचन्द्रिका' आदि की आलोचना की जिसमें उन्होंने पदों के अर्थ की व्याख्या के साथ साथ छन्द, अलंकार आदि का भी निर्देश किया। पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' की टीका में उपर्युक्त समीक्षा के अतिरिक्त बिहारी के दोहों का तुलनात्मक दृष्टि से भी विवेचन किया। बिहारी को श्रेष्ठ प्रमाणित करने में उन्होंने अच्छा पांडित्य प्रदर्शित किया किन्तु उनकी आलोचना पक्षपात ग्रस्त होने के कारण आदर्श से गिर गई है। द्विवेदी-युग में टीका पद्धति पर की गई आलोचना का सुन्दरतम रूप जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के 'बिहारी रत्नाकर' में है। अर्थ और अलंकार आदि की व्याख्या के अतिरिक्त रत्नाकर जी ने आधुनिक आलोचक की भांति कवि की भावनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। टीका के अतिरिक्त आलोचनाओं में पदों की व्याख्या दो कारणों से हुई है। कभी कभी आलोच्य विषय की भाषा अहिन्दी होने के कारण उदाहरणीय पदों के भाव का स्पष्टीकरण अनिवार्य हो गया है, यथा—

"उपमा की तरह रूपक का भी समुचित प्रयोग अश्वघोष ने किया है। इन रूपकों में भी अनुरूपता तथा नवीनता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है:—

सोहासहंसा नयनद्विरेका,
पीनस्तनाभ्युन्नत पद्म कोषा।
भूयो बभाषे स्वकुलोदितेन,
स्त्रीपद्मिनी नन्द दिवाकरेण॥

वह सुन्दरी नन्द के द्वारा अत्यन्त शोभित होती थी। वह स्त्री-पद्मिनी नन्द-रूपी सूर्य से जो अपने कुल में उदित हुआ था, बारम्बार विकसित की जाती थी। सुन्दरी रूपी कमलिनी का हास हंस था, नेत्र भौंरे थे, स्थूल मोटे स्तन पद्म कोष थे, इस प्रकार सुन्दरी एक पद्मिनी थी, जिसने मन्दरूपी सूर्य से विकास पाया था।"[1] कभी कभी आलोचक आलोचित रचना के मनोहर पदों से इतना अभिभूत हो गया है कि वह उनके अर्थ सौन्दर्य को व्याख्या द्वारा व्यक्त किए बिना नहीं रह सका है। उसके समीक्षात्मक कथन के उदाहरण-रूप में उद्धृत ये पद कहीं तो व्याख्या के पूर्व और कहीं पश्चात् रक्खे गए हैं--

"जिस व्यक्ति में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, तो फिर क्या वह किसी के छिपाए छिप सकता है? मुख से स्वीकार न किया गया तो आँखें तो हृदयावेग को रो रोकर बतला ही देती हैं:--

प्रेम छिपाया ना छिपे जा घट परघट होय,
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय।[2]
(कबीर)

आलोचना की उपर्युक्त दोनों शैलियाँ द्विवेदी जी की टीका-पद्धति पर ही चली हैं।

टीका पद्धति के दूसरे प्रकार (रचना-परिचयात्मक आलोचना) के तीन रूप हैं। पहला रूप पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामयिक पुस्तकों की परीक्षा है। इस क्षेत्र में 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका', 'सरस्वती', 'समालोचक', 'मर्यादा', 'माधुरी', 'प्रभा' आदि ने पुस्तक-परीक्षा के लिए एक विशिष्ट खंड निर्धारित करके महत्वपूर्ण कार्य किया। इन परीक्षाओं में प्राय: पुस्तक की छपाई सफाई के अतिरिक्त एक दो विशेषताओं का परिचय दे दिया गया है। दूसरे रूप में पुस्तकों की भूमिकाएँ हैं। प्रकाशकों या लेखकों के प्रेमियों द्वारा लिखित भूमिकाएँ प्रशंसात्मक हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल आदि ने अपनी भूमिकाओं में आत्मश्लाघा न करके संक्षिप्त पुस्तक-परिचय ही दिया है।[3] टीका-पद्धति का तीसरा रूप पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित परिचयात्मक लेखों का है। शेक्सपीयर का 'हैमलेट',[4] बाण भट्ट की 'कादम्बरी',[5] 'हिन्दी आईने अकबरी'[6] आदि इसी

---

१. 'महाकवि अश्वघोष तथा उनकी कविता', बलदेव उपाध्याय।
प्रभा, जनवरी १९२५ ई०, पृ० २३।

२. कृष्ण बिहारी मिश्र, 'कबीर और बिहारी', माधुरी भाग १, खंड १, सं० ४, पृ० ३७६।

३. 'रसज्ञरंजन', 'साहित्यालोचन', 'भ्रमरगीत-सार' आदि में लेखकों का प्राक्कथन।

४. सूर्यनारायण दीक्षित, सरस्वती, १९०६ ई०, पृ० ४५२।

५. नरदेव शास्त्री, सरस्वती, १९१४ ई०, पृ० ३७।

६. मुंशी देवीप्रसाद, सरस्वती, १९११ ई०, पृ० १४।

कोटि के लेख हैं। इनमें आलोचित रचना के वस्तु-वर्णन के साथ साथ उसके गुणों और कभी कभी दोषों का भी निर्देश किया गया है। टीका-पद्धति का तीसरा प्रकार रचनाकार-परिचय भी हिन्दी के आलोचना साहित्य के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। भारतीय आलोचक ने केवल साहित्य को ही आलोच्य मान कर साहित्यकारों के जीवन-चरित का विस्मरण कर दिया था। पश्चिम के आलोचकों ने जीवनी मूलक आलोचना को आलोचना का एक विशिष्ट प्रकार ही स्वीकार किया। हिन्दी में वैष्णवों की वार्ताएँ धार्मिक दृष्टि से लिखी गई थीं। द्विवेदी-युग के पूर्व भी 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में 'नागरीदास का जीवन चरित',[१] 'गोस्वामी तुलसीदास का जीवन चरित',[२] 'कुछ प्राचीन भाषा कवियों का वर्णन'[३] 'प्राचीन कवि'[४] आदि कवि-परिचयात्मक आलोचनाएँ निकलीं। द्विवेदी जी ने साहित्यकारों की जीवनियों की ओर विशेष ध्यान दिया। इसकी समीक्षा हो चुकी है। इसी पद्धति पर १६१० ई० की 'सरस्वती' में मिश्रबन्धुओं के 'महाकवि सेनापति' (१२२ पृष्ठ), 'भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र' (पृ० १६८), 'महात्मा सूरदास' (पृ० १६३), महाकवि केशवदास (पृ० २४१), पद्माकर भट्ट (पृ० ३०६), रहीम (पृ० ३३६), 'सूदन' (पृ० ३६३), 'लालकवि' (पृ० ४३३) और 'मलिक मुहम्मद जायसी' (पृ० ५०३) लेख प्रकाशित हुए। सं० ६६,७० मे 'मिश्र बन्धु-विनोद' तीन भागों में प्रकाशित हुआ जिसमें ३७५७ कवियों और लेखकों का विवरण दिया गया। सन् १६२५ ई० में चार भागो में प्रकाशित उसके दूसरे संस्करण में साहित्यकारों की संख्या ४५०० कर दी गई। इन परिचयों में रचनाकारों की अन्तःप्रवृत्ति का विश्लेषण नहीं है। इनकी सबसे अधिक उपयोगिता हिन्दी-साहित्य के ठोस आलोचनात्मक इतिहासो और जीवनीमूलक समीक्षाओं की भूमिका-रूप में है। इन्हीं परिचयों के संस्कृत और वैज्ञानिक रूप ने रामचन्द्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में प्रत्येक अध्याय की भूमिका बन कर सामान्य परिचय का रूप धारण किया है।

द्विवेदी जी ने सूक्ति पद्धति पर बहुत ही कम आलोचनाएँ की थीं। उनकी यह विशेषता उनके युग में भी व्याप्त है। उसके अनेक कारण हैं। उस युग के स्वच्छन्द, सिद्धान्तवादी, अभिमानी और कर्तव्यपरायण लेखकों ने किसी की अधिक प्रशंसा करना अपमानजनक समझा। द्विवेदी जी आदि ने दोष-विवेचन-प्रणाली का पुनरुत्थान करके लोगों की आँखें खोल दीं। उस युग के आलोचक केवल गुणों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित न रख सके।

---

१. राधाकृष्णदास, १८६८ ई०।
२ रेवरेन्ड एडविन ग्रीव्स, १८६६ ई०।
३. राधाकृष्णदास, १६०१ ई०।
४. मुंशी देवीप्रसाद, १६०१ ई०

पश्चिम की वैज्ञानिक आलोचना लोगों को लोचन पद्धति की ओर खींचती जा रही थी। आलोचना-शास्त्र-सम्बन्धी सिद्धान्तों की चर्चा ने आलोचकों की दृष्टि व्यापक कर दी। वे केवल प्रशंसात्मक आलोचना को पक्षपातपूर्ण और अपूर्ण समझने लगे।[१] फिर भी आलोचक मानव के सहज प्रशंसक भाव से मुक्त नहीं होसकता। उसकी सूक्तियां और कटूक्तियों में सापेक्ष न्यूनाधिकता अवश्य आ जाती है। द्विवेदी-युग के समालोचकों ने अपनी समीक्षाओं में केवल गुणदर्शन को ही एकान्त स्थान नहीं दिया, परन्तु सम्पादकों और भूमिका-लेखकों ने सूक्तिपद्धति की रक्षा की। उस युग ने यह सिद्ध कर दिया था कि पत्र-पत्रिकाओं को विज्ञापन का साधन बनाना अत्यन्त आवश्यक है। लेखकों और प्रकाशकों ने धन और यश की कामना से पुस्तक-परीक्षा के रूप में अपनी पुस्तकों की प्रशंसात्मक आलोचनाएँ प्रकाशित कराने का प्रयास किया। उस युग के अन्य सम्पादक द्विवेदी जी की भाँति निर्भीक, कर्त्तव्य-परायण और स्पष्टवादी न थे। उन्होंने लोभ, मैत्री, भय या ज्ञानाभाव के कारण असुन्दर पुस्तकों की भी सूक्तिप्रधान आलोचना की। किसी विद्वान साहित्यिक के द्वारा भूमिका लिखाने में भी लेखक का उद्देश विज्ञापन ही रहा है। आवश्यकतानुसार प्रकाशकों ने स्वयं ही इस उद्देश्य की पूर्ति की है, उदाहरणार्थ दुलारेलाल भार्गव द्वारा लिखित पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी के 'विश्व-साहित्य' का निम्नांकित अवतरण—

...."इसमें आपने साहित्य का मूल, साहित्य का विकास ,साहित्य का सम्मिलन, काव्य विज्ञान, नाटक,कला आदि पर सरल, सुन्दर भाषा में अपने और औरों के समयोपयोगी बहुमूल्य विचार प्रगट किये हैं। अपनी कलम से इस पुस्तक और प्रणेता के विषय में अधिक प्रशंसा के वाक्य लिखना उचित नहीं प्रतीत होता। फिर 'नहि कस्तूरिकागन्धः शपथेन विभाव्यते'।...अतः अधिक न लिखकर हम इतनी ही प्रार्थना करेंगे कि अब हिन्दी संसार के लेखकों, प्रकाशकों , पाठकों और गुणग्राहक ग्राहकों को ऐसे सत्साहित्य की सृष्टि, प्रचार पठनपाठन और आदर करना चाहिये।"[२] पद्मसिंह शर्मा द्वारा लिखित 'बिहारी सतसई' की टीका में भी पदों की सूक्ति-प्रधान आलोचना की गई है।

द्विवेदी जी की आलोचना के संदर्भ में यह कहा जा चुका है कि आलोचना की दोष दर्शन-प्रणाली भारतीय साहित्य से तिरोहित होगई थी और हिन्दी में द्विवेदी जी ने उसकी पुनः प्रतिष्ठा की। द्विवेदी जी की भांति उनके युग की खंडनात्मक आलोचना-पद्धति भी

---

१. "निष्पक्षपात भाव से किसी वस्तु के गुणदूषणों की विवेचना करना समालोचना है।"
कृष्णबिहारी मिश्र, मर्यादा, भाग ४, सं २, पृ० १२।

२. 'विश्व-साहित्य', सम्पादकीय वक्तव्य, पृ० ६,७।

दो प्रकार की है—अभावमूलक और दोषमूलक। द्विवेदी जी की ही भांति उस युग के अन्य आलोचकों, श्यामसुन्दरदास, कामताप्रसाद गुरु आदि ने भी हिन्दी के अभावों का अनुभव किया। स्वयं तो वे व्याकरण, साहित्यालोचन आदि की रचना द्वारा उन अभावों की पूर्ति में प्रयत्नशील रहे ही, अपनी अभावमूलक आलोचनाओं द्वारा उन्होंने दूसरों के मन में भी विपन्न हिन्दी को सम्पन्न बनाने की प्रेरणा उत्पन्न करने का प्रयास किया। विषय की दृष्टि से दोषमूलक आलोचना तीन प्रकार की हुई—लक्ष्य ग्रन्थों या ग्रन्थकारों की आलोचना के रूप में, आलोचनाओं की प्रत्यालोचना के रूप में और साहित्य-सम्बन्धी विषयों-पत्र पत्रिका, सम्पादक, लेखक, अनुवादक, उर्दू आदि—की आलोचना रूप में। आलोचक द्विवेदी का महत्व इस बात में भी है कि उनकी आलोचनाएँ सर्वव्यापक थीं। लक्ष्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों की दोष मूलक आलोचना की ओर विशेष ध्यान द्विवेदी जी ने ही दिया। इसका प्रधान कारण सम्भवतः यह था कि अन्य आलोचकों में द्विवेदी जी की भाँति हिन्दी साहित्यकारों के सुधार की दृढ़ भावना न थी और वे द्विवेदी जी की भांति निर्भय और अदम्य न होने के कारण हिन्दी के संख्यातीत कच्चे लेखकों से लोहा लेने के लिए प्रस्तुत न थे। उनकी अधिकांश आलोचनाएँ प्रत्यालोचनाओं और साहित्य-सम्बन्धी विषयों तक ही सीमित रहीं। द्विवेदी जी की 'कालिदास की निरंकुशता' खंडनात्मक आलोचनापद्धति पर जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'निरंकुशता-निदर्शन' लिखा। इसमें उन्होंने द्विवेदी जी की आलोचना का सविस्तार खंडन करने की चेष्टा की। अपने कथन की पुष्टि में द्विवेदी जी ने अनेक प्राचीन और अर्वाचीन प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों की सम्मतियाँ भी उद्धृत की थीं। चतुर्वेदी जी के प्रमाण पुष्ट नहीं थे। तर्कसंगत और सारगर्भित न होने के कारण ही उनका 'निदर्शन' विद्वत्समाज में आदरणीय नहीं हुआ।

उपर्युक्त 'निरंकुशता निदशन', बालमुकुन्द गुप्त का 'भाषा की अनस्थिरता' और गोविन्द नारायण मिश्र का 'आत्माराम की टें टें'[1] तथा इस प्रकार के अन्य लेखों में शास्त्रार्थ का बहुत कुछ पुट होने पर भी खंडन की ही प्रधानता है। द्विवेदी-युग की खंडनात्मक आलोचनाओं में एक बात विशेष अवेक्षणीय है। द्विवेदी जी की आलोचनाओं का प्रेरक था उनका हिन्दी-शुभचिन्तक स्थायी भाव। किन्तु उस युग के अन्य आलोचकों के दोषदर्शन के मूल में कारणभूत प्रवृत्तियाँ कुछ और ही थीं। 'निरंकुशता-निदर्शन' 'भाषा की अनास्थिरता' आदि के लेखकों ने ईर्षा, द्वेष आदि के वशीभूत होकर लेखनी चलाई थी। कभी कभी आलोचक के व्यक्तिगत कटु अनुभव उसे खंडनात्मक आलो-

---

१. इन लेखों का उल्लेख "साहित्यिक संस्मरण" अध्याय में हो चुका है।

चना लिखने के लिए विवश करते थे। बदरीनाथ भट्ट का 'सम्पादकों और अनुवादकों का ऊधम'[1] इसी प्रकार का लेख है। कवियों ने भी इस शैली पर व्यंग्यात्मक आलोचनाएँ कीं। मैथिलीशरण गुप्त की 'सम्पादक और लेखक' कविता स्वानुभूति का ही शब्दचित्र जान पड़ती है।

"अच्छे तो हैं आप"? "मरा जाता हूँ भाई,"
"अन्त समय का दान आपको हो सुखदाई,"
"क्या दूं?" कोई लेख", लेख में तथ्य न होगा।"
"तो भी क्या इस रुग्णपत्र का पथ्य न होगा। ?"
"हैं,हैं" "हां, हां कोसता कौन चाँद के दाग को ?"
"हा ! चाट गए कीड़े यही मेरे मरे दिमाग को',[2]

अस्वस्थ और शय्याग्रस्त व्यथित लेखक से स्वार्थान्ध सम्पादक की दुराग्रहपूर्ण लेखयाचना निस्सन्देह कठोर आलोचना का विषय है। कभी कभी आलोचक अपने सिद्धान्त या मित्र आदि की प्रतिकूल आलोचना नहीं सह सकता है और उसका तर्कसंगत या काव्यमय और व्यंग्यात्मक खंडन करने पर उतारू हो गया हैं। "आत्माराम की टें टें', 'पंचपुकार', 'पंचपुकार का उपसंहार आदि में इसी प्रकार की प्रवृति परिलक्षित होती है। उस युग में हिन्दी-उर्दू की समस्या भी वादविवाद का एक प्रधान विषय थी। नाथूराम शंकर ने अपनी पंचपुकार कविता में उर्दू की लिपि का इस प्रकार खंडन किया—

उर्दू की बेनुक्त इबारत लिख दूं काबिलदीद,
बीनी खुद बुरीद को पढ़ लो बेटी···द यज़ीद,
चुनीदा नज़्र गुज़ारूंगा।
किसी से कभी न हारूंगा ॥[3]

जब श्यामसुन्दर दास ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में 'सरस्वती' की कविता को भद्दी कहकर उसकी आलोचना की तब द्विवेदी जी के भक्त शिष्य मैथिली शरण गुप्त ने अपनी 'पंचपुकार

---

१ सरस्वती, १९१८ ई०, पृ० १७१।

२. प्रभा, वर्ष १, खंड १, पृ० ४००, १९२३ ई०।

३. सरस्वती, १९०८ ई०, पृ० २१३।
इस कविता की हस्तलिखित प्रति को देखने से पता चला कि शंकर जी ने दूसरी पंक्ति में अश्लील शब्द का प्रयोग किया था और प्रकाशन के समय द्विवेदी जी ने उसे निकाल दिया।

का उपसंहार' नामक कविता में बाबू साहब की उक्ति का आक्षेपपूर्ण खंडन करने के लिए आलोचक का शस्त्र धारण कर लिया—

> वीणाधारिणि की भी कविता भद्दी रही मान,
> ऐसा अद्भुत प्रकट करूंगा समालोचना ज्ञान,
> मान मम्मट का मारूंगा।
> किसी से कभी न हारूंगा ॥[१]

इन आलोचनाओं का कारण आलोचित लेखक के प्रति ईर्ष्या, द्वेष आदि न होकर समर्थित सिद्धान्त या व्यक्ति के प्रति प्रेम या श्रद्धा का भाव ही है। द्विवेदी-युग की खंडनात्मक आलोचनाओं में द्विवेदीकृत आलोचनाओं का ही विशेष ऐतिहासिक महत्व है। किसी निश्चित उद्देश या ठोस कार्यक्रम के अभाव के कारण अन्य समालोचकों की समीक्षाएँ केवल उस युग की समालोचना-शैली और समालोचकों की प्रवृत्तियों की दृष्टि से ही न्यूनाधिक महत्व की हैं।

द्विवेदीयुग में शास्त्रार्थ- पद्धति पर की गई आलोचना संस्कृत-साहित्य की उस समीक्षा प्रणाली से इस बात में भिन्न है कि संस्कृत में लक्षण ग्रन्थों या साहित्य सिद्धान्त-निरूपण को लेकर शास्त्रार्थ चला था किन्तु द्विवेदी-युग में सैद्धान्तिक समालोचना पर शास्त्रार्थ नहीं हुआ। व्याकरण के क्षेत्र में विभक्ति विचार विषयक वादविवाद ने सिद्धान्तों की आलोचना प्रत्यालोचना का रूप अवश्य ग्रहण किया। उस युग की शास्त्रार्थात्मक आलोचना किसी लक्ष्यग्रन्थ की असम्मत समीक्षा या किसी के अरुचिकर लेख या वक्तव्य को लेकर हुई। 'निरंकुशता-निदर्शन' की चर्चा ऊपर हो चुकी है। मिश्रबन्धुओं ने 'हिन्दी नवरत्न' में देव को तुलसी और सूर के समकक्ष स्थान देते हुए उन्हें बिहारी आदि से श्रेष्ठ प्रमाणित करने की चेष्टा की। पक्ष और विपक्ष के समालोचक शास्त्रार्थ पर तुल आए। पद्मसिंह शर्मा ने अपनी 'बिहारी की सतसई' में बिहारी की तुलनात्मक और सूक्तिप्रधान समीक्षा कर के उन्हें केवल देव और हिन्दी कवियों से ही नहीं, संस्कृत, प्राकृत, उर्दू और फारसी के कवियों से भी महत्तर शृंगारिक कवि घोषित किया। इसकी पांडित्यपूर्ण आलोचना कृष्ण-बिहारी मिश्र ने अपनी 'देव और बिहारी' पुस्तक में की। मिश्र जी के तर्क और विचार ठोस तथा मान्य हैं। उनकी आलोचना-दृष्टि भी व्यापक, गम्भीर, विश्लेषणात्मक और वैज्ञानिक है। शास्त्रार्थ-पद्धति पर की गई इन तुलनात्मक समीक्षाओं में एक बहुत बड़ा

---

१. सरस्वती, १६०८ ई०, पृ० २७७।

दोष यह है कि आलोचक पहले ही से किसी कवि की उच्चतर या उच्चतम सिद्ध करने का संकल्प किए बैठा है और उस निर्णय की पुष्टि के लिए अपनी सारी तर्कशक्ति लगा देता है। चाहिए तो यह था कि वह निष्पक्ष भाव से कविताओं की तुलनात्मक समीक्षा करता और किसी को गुरुतर या लघुतर समझने का निर्णय पाठकों पर छोड़ देता।

द्विवेदी जी से सम्बन्धित अनेक साहित्यिक वादविवादों का उल्लेख 'साहित्यिक संस्मरण' अध्याय में हो चुका है। द्विवेदी जी ने मिश्रबन्धुओं के 'हिन्दी-नवरत्न' की खंडनात्मक आलोचना की थी। वह प्रतिकूल, तीव्र और खरी समीक्षा मिश्रबन्धुओं को असह्य हुई और उन्होंने उसका प्रतिवाद करने के लिए 'मर्यादा' के तीसरे, चौथे और पांचवें भागों की अनेक संख्याओं में हिन्दी-नवरत्न की आलोचना पर विचार प्रकाशित किया। इस प्रत्यालोचना में पांडित्य या चिन्तन सामग्री का अभाव और वाग्जाल तथा असंबद्ध बातों का ही विस्तार है। लाला भगवानदीन ने 'लक्ष्मी' में 'इन्दु' और जयशंकर प्रसाद के 'उर्वशी चम्पू' की आलोचना की जिसमें उनके दोषों की समीक्षा की गई। उसकी प्रत्यालोचना में 'इन्दु' ने लट्ठमार पद्धति का अवलम्बन किया। अपनी पहिली कला की छठवीं किरण में उसने व्यक्तिगत आक्षेपों से भरी हुई 'समालोचक की समालोचना' निकाली। लाला जी ने 'लक्ष्मी' में उस 'समालोचना का स्पष्टीकरण' किया। 'इन्दु' ने 'तुम डार डार हम पात पात' की कहावत चरितार्थ करते हुए अपनी पहिली कला की आठवीं किरण में 'स्पष्टीकरण का स्पष्टीकरण' प्रकाशित करके लाला जी पर कटाक्षपूर्ण तीखा व्यंग्य प्रहार किया। एक बार ललित कुमार वन्द्योपाध्याय विद्यारत्न ने 'अनुप्रासेर अट्टहास' शीर्षक बँगला प्रबन्ध पढ़ा। उसपर 'बँगला बंगवासी' के सम्पादक बाबू बिहारीलाल ने कहा—'बंगला ही कविता की भाषा है क्योंकि इसमें जितना अनुप्रास है उतना और किसी भाषा में नहीं।' बंगला के प्रति यह सूक्ति जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की सहनशक्ति के बाहर थी। उन्होंने 'अनुप्रास का अन्वेषण'[1] निबन्ध आद्योपान्त सानुप्रास भाषा में लिखकर हिन्दी को अनुप्रासमयी सिद्ध करने का पराक्रम किया। कतिपय आलोचनामूलक उक्त साहित्यिक घटनाओं के उल्लेख का उद्देश यह प्रमाणित करना है कि तत्कालीन समालोचकों में असाधारण जीवन, अभिमान, ओज, असंयम और कुछ कुछ सनकीपन था। राजनैतिक, धार्मिक आदि खंडन-मंडन ने तितलौकी को नीम पर चढ़ा दिया। यही कारण है कि उस युग के आलोचकों की प्रवृत्ति वादविवाद और शास्त्रार्थ-पद्धति की समालोचनाओं की ओर अधिक रही। हिन्दी का अभाग्य था कि अतिसंख्यक आलोचकों में द्विवेदी जी या कृष्ण बिहारी मिश्र की आलोचकोचित,

---

१. षष्ठम हिन्दी-साहित्य सम्मेलन का कार्यविवरण, भाग २।

व्यापक सूक्ष्मदर्शिता न आ सकी जिसके परिणामस्वरूप इस पद्धति पर की गई अधिकांश समालोचनाएँ भद्दी, ओछी और तिरस्करणीय हो गईं।

लोचन-पद्धति पर की गई समालोचनाओं ने पूर्वोक्त प्रकार की आलोचनाओं की न्यूनता की प्रशंसनीय पूर्ति की। इस पद्धति के आलोचकों ने आलोच्य वस्तु पर समालोचक की सभी अपेक्षित दृष्टियों से प्रायः एक साथ विचार किया है। उद्देश की दृष्टि से उनके तीन विभाग किए जा सकते हैं--गवेषणात्मक, सौन्दर्यमूलक और तुलनात्मक। शैली की दृष्टि से भी उनके तीन प्रकार हैं--निर्णयात्मक, भावात्मक और चिन्तनात्मक। यह वर्गीकरण न्याय की कसौटी पर खरा नहीं उतरता क्योंकि लोचनपद्धति की कोई भी आलोचना किसी एक ही रूप या शैली से विशिष्ट नहीं है सब में सबका सन्निवेश है। अतएव यह विभाजन अतिव्याप्ति अव्याप्ति से दूषित है। कहीं कहीं एक ही रूप या शैली औरों की अपेक्षा अधिक प्रधान हो गई है। इसी आधार पर वर्गीकरण की सम्भावना हुई है। युग-निर्माता द्विवेदी ने अपने युग का पूर्वार्द्ध भाषा के संस्कार और परिष्कार तथा लेखकनिर्माण में ही बिता दिया अतएव लोचन पद्धति पर ठोस आलोचना उनके युग के उत्तरार्द्ध में ही हो सकी। आलोचना की गम्भीरता और ठोसपन के लिए माध्यम की समर्थता और आलोचकों की विकसित बौद्धिक भूमिका की अनिवार्य अपेक्षा थी।

गवेषणात्मक आलोचना तीन प्रकार की हुई--साहित्यिक ग्रन्थों और ग्रन्थकारों पर खोजसम्बन्धी लेख, रचनाओं और रचनाकारों की जीवनीमूलक आलोचना और रचनाओं तथा रचनाकारों की ऐतिहासिक समीक्षा उन्नीसवीं शताब्दी ई० के उत्तरार्द्ध में यूरोपीय विद्वानों ने सरकारी और असरकारी तौर पर प्राचीन भारतीय साहित्य की खोज प्रारम्भ की। भारतीय पुरातत्व-विभाग ने इस दिशा में पर्याप्त कार्य किया। सन् १९०० ई० से काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने प्राचीन हिन्दी-ग्रन्थों की खोज, अध्ययन और प्रकाशन का कार्य आरम्भ किया। सन् १९०२ ई तक श्यामसुन्दर दास ने और तदनन्तर साढ़े तेरह वर्ष तक मिश्रबन्धुओं ने घोर परिश्रम और सच्चाई से इस खोज कार्य को आगे बढ़ाया। समय-समय पर इसका कार्य-फल भी रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित होता रहा। साहित्यिक और असाहित्यिक संस्थाओं ने भारतीय साहित्य के सहस्रों अज्ञात और अप्राप्य ग्रन्थ खोज निकाले। इन खोजों द्वारा प्राप्त सामग्री के आधार पर ही द्विवेदी जी ने कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष आदि के कालनिर्णय पर गवेषणात्मक लेख लिखे थे। मिश्रबन्धुओं का उल्लेख ऊपर हो चुका है। बाबूरावविष्णु पराड़कर द्वारा लिखित 'वररुचि का समय' [1] ठोस और गवेष-

---

१. सरस्वती, १९०९ ई०, पृ० १२०।

णात्मक लेख है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने अनेक सारगर्भित और पाडित्यपूर्ण लेख लिखे, यथा 'जयसिंह काव्य'[1], 'पृथ्वीराज विजय महाकाव्य'[2] आदि तथा 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित अन्य निबन्ध। ये निबन्ध गुलेरी जी के गहन अध्ययन के परिचायक हैं।

गवेषणात्मक समलोचना का दूसरा प्रकार था रचनाओं और रचनाकारों की ऐतिहासिक आलोचना। संस्कृत-साहित्य ने ऐतिहासिक आलोचना की ओर ध्यान नहीं दिया था और इसी कारण उसकी उत्तराधिकारिणी हिन्दी ने भी युगों तक उसकी अवहेलना की। युगनिर्माता द्विवेदी जी ने आलोचना के इस अंग के महत्व को समझा, यथाशक्ति स्वयं उसकी अभावपूर्ति की और सच्चे पथप्रदर्शक के रूप में आदर्श उपस्थित करने के साथ ही साथ उपदेशक की भाँति उसकी आवश्यकता का निर्देश भी किया—

"भाद्रपद की घोर अन्धकारमयी रजनी में जैसे अपना पराया नहीं सूझ पड़ता वैसे ही इतिहास के न होने से ग्रन्थसमूह का समय निरूपण अनेकाश में असम्भव सा हो गया है। कौन आगे हुआ कौन पीछे हुआ कुछ नहीं कहा जा सकता। इससे हमारे साहित्य के गौरव की बड़ी हानि हुई है। कभी कभी तो समय और प्रसंग जानने ही से परमानन्द होता है। परन्तु, खेद है, संस्कृत भाषा के ग्रन्थों की इस विषय में बड़ी ही दुरवस्था है। समय और प्रसंग का ज्ञान न होने से अनेक ग्रन्थों का गुरुत्व कम हो गया है। जिस प्रकार वन में पड़ी हुई एक सौन्दर्यवती मृत स्त्री के हाथ, पैर, मुख आदि अवश्यमात्र देख पड़ते हैं, परन्तु यह पता नहीं चलता कि वह कहाँ की है और किसकी है, उसी प्रकार इतिहास के बिना हमारा संस्कृतग्रन्थ-साहित्य लावारिस सा हो रहा है। यही साहित्य यदि इतिहासरूपी आदर्श में रखकर देखने को मिलता, तो जो आनन्द मिलता है, उससे कई गुना मिलता।[3]

ऐतिहासिक समालोचना ने आलोच्य विषय पर दो दृष्टियों से विचार किया—कभी तो उसने रचना को मुख्य स्थान दिया और उसके सूक्ष्म अध्ययन के आधार पर तत्कालीन समाज आदि की अवस्था का विवेचनात्मक निरूपण किया। 'श्रीहर्ष का कलियुग'[4], 'कालिदास के समय का भारत'[5], 'मृच्छकटिक और उसके रचनाकाल का हिन्दू समाज'[6]

---

१. सरस्वती, १९१० ई०, पृ० ४११।
२. सरस्वती, १९१३ ई० पृ० ३०७।
३. नैषधचरितचर्चा, पृ० ५३।
४. द्विवेदी जी, सरस्वती, मार्च, १९२१ ई०।
५. द्विवेदी जी, सरस्वती, जून, १९११ ई०।
६. बाबूराम सक्सेना, सरस्वती, १९१९ ई०, पृ० २०३।

आदि इसी प्रकार के आलोचनात्मक लेख हैं और कभी ऐतिहासिक समालोचक की दृष्टि में युग ही प्रथम आलोच्य हुआ। उसने रचनाओं या रचनाकारों की कालविषयक छानबीन की। उस काल की राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि परिस्थितियों का गहरा अध्ययन करके ठोस ऐतिहासिक ज्ञान की भूमिका में आलोच्य रचना की अन्तर्गत विशिष्टता या रचनाकार की अन्तः प्रवृत्ति का वैज्ञानिक विश्लेषण किया। यह ऐतिहासिक समालोचना तीन रूपों में प्रस्तुत की गई—किसी एक ही रचना या रचनाकार की आलोचना, साहित्य के किसी विशिष्ट अंग, देश या काल की आलोचना और समूचे साहित्य का इतिहास। 'जायसी-ग्रन्थावली' (१६२२ ई०) और 'भ्रमरगीतसार' (१६२५ ई०) की भूमिका में रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी और सूर पर लिखी गई आलोचनाओं में युग की ज्ञानभूमिका में एक ही रचना या रचनाकार की तह तक जाकर अन्तर्गत विशेषताओं का सूक्ष्म अन्वेषण किया है, यथा—

"सौ वर्ष पहले कबीर दास हिन्दू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते, पर साधारण जनता राम और रहीम की एकता मान चुकी थी। ...मुसलमान हिन्दुओं की रामकहानी सुनने को तैयार हो गए थे और हिन्दू मुसलमानों का दास्तानहम्ज़ा। ...इधर भक्ति मार्ग के आचार्य और महात्मा भगवत्प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और उधर सूफी महात्मा मुसलमानों को इश्क़ हक़ीक़ी का सबक़ पढ़ाते आ रहे थे।

चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और रामानन्द के प्रभाव से प्रेमप्रधान वैष्णव धर्म का जो प्रवाह बंगदेश से लेकर गुजरात तक बहा, उसका सबसे अधिक विरोध शाक्तमत और वाममार्ग के साथ दिखाई पड़ा शाक्तमतविहित पशुहिंसा, यंत्रतंत्र तथा यक्षिणी आदि की पूजा वेदविरुद्ध अनाचार के रूप में समझी जाने लगी। हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के बीच साधुता का सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था। बहुत से मुसलमान फकीर भी अहिंसा का सिद्धान्त स्वीकार करके मांस भक्षण को बुरा कहने लगे थे। ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान प्रेम की पीर की कहानियाँ लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरे।"[1]

उपर्युक्त कथन की पुष्टि के लिए जायसी पर लिखित आलोचना के कई प्रारम्भिक पृष्ठों के उद्धरण की अपेक्षा थी, किन्तु अतिविस्तार के कारण यह असम्भव है। जायसी की आलोचना की भूमिका रूप में शुक्लजी ने तत्कालीन दर्शन, धर्म, समाज आदि की अवस्था और प्रेमगाथा की परम्परा, पद्मावत के ऐतिहासिक आधार आदि का संक्षिप्त

१. जायसी पर लिखित आलोचना, प्रथम दो अवच्छेद।

किन्तु गम्भीर विवेचन किया है। इस ऐतिहासिक अध्ययन के परिणामस्वरूप उनकी आलोचना अधिक ठोस और युक्तिसंगत हो सकी है। "हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास"[१], "विलायती समाचार पत्रों का इतिहास'[२] आदि में साहित्य के एक ही अंग की समीक्षा की गई है। 'गोरखपुर के कवि'[३], सरीखी पुस्तकों में एक देशीय कवियों की ही आलोचना हुई है। 'अकबर के राजत्वकाल में हिन्दी'[४] जैसी आलोचनाओं में केवल एक ही काल पर विचार किया गया है। द्विवेदीयुग में साहित्य के अनेक इतिहास भी प्रस्तुत किए गए। मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धुविनोद'[५], रामनरेश त्रिपाठी ने 'हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' (सं० १९८०) बदरी नाथ भट्ट ने 'हिन्दी' (सं० १९८१) और महेश चन्द्र प्रसाद ने 'संस्कृत साहित्य का इतिहास, (१९२२ ई०) लिखा। मिश्रबन्धु-विनोद' में ऐतिहासिक अन्तः समीक्षा का अभाव और परिचयात्मक सामग्री का ही उपस्थापन है।[६] रामनरेश त्रिपाठी ने अपने इतिहास में हिन्दी साहित्य के विभिन्न कालों की प्रवृत्तियां और विशेषताओं तथा कवियों और उनके काव्यगत सौन्दर्य का कुछ गम्भीर विवेचन किया है, किन्तु उनकी आलोचना साधारण पाठकों और विद्यार्थियों के ही योग्य है। उस काल में लिखे गए अन्य आलोचनात्मक इतिहासों में आधुनिक आलोचना के तत्वों—रचनाओं की मौलिक विशेषताओं, रचनाकारों की अन्तःप्रवृत्तियों आदि—का विश्लेषण नहीं है। फिर भी हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उनका महत्व है। उस युग के इन्हीं अनाप्त और उथले इतिहासकारों की भूमि पर ही परवर्ती युग आप्त और गम्भीर इतिहासों की रचना कर सका।

गवेषणात्मक आलोचना का तीसरा प्रकार था—रचनाओं या रचनाकारों की जीवनी-मूलक आलोचना। इस प्रकार के आलचोक ने आलोच्य विषय पर दो दृष्टियों से विचार

---

१. नाथूराम प्रेमी सं० १९७३।
२. प्यारेलाल मिश्र १९१६ ई०।
३. मन्नन द्विवेदी, सं० १९६०।
४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका, १९०७ ई०, पृ० ८५ से १७२।
५. सं० १९६९ ७० में तीन भाग और १९२५ ई० के द्वितीय संस्करण में परिवद्धित ४ भाग।
६. इस बात को उसके लेखकों ने स्वयं स्वीकार किया है—"पहले हम इस ग्रन्थ का नाम 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' रखनेवाले थे, परन्तु इतिहास की गंभीरता पर विचार करने से ज्ञात हुआ कि हममें साहित्यइतिहास लिखने की पात्रता नहीं है। फिर इतिहास ग्रन्थ में छोटे बड़े सभी कवियों एवं लेखकों को स्थान नहीं मिल सकता।"
—भूमिका
लेखकों का उपर्युक्त कथन सर्वथा यथार्थ है।

किया। पहली दशा में, रचनाकार की जीवनी और अन्तःप्रवृत्ति के आधार पर समालोचक ने उसकी रचना में निहित रहस्यों का उद्घाटन किया। द्विवेदी जी द्वारा लिखित 'कालिदास के मेघदूत का रहस्य'[१] इस प्रकार की रचना का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसकी विवेचना 'आलोचना' अध्याय में हो चुकी है। इस प्रकार की आलोचनाओं में रचना ही साध्य और रचनाकार का जीवनवृत्त या उसकी प्रवृत्ति उस रचना की समीचीन समालोचना का साधन-मात्र है। दूसरी दशा में, रचनाकार का चरित ही साध्य और उसकी कृति साधन बन गई है। आलोचक रचनाकार का जीवनचरितलेखक बन गया है। इसीलिए इस प्रकार की आलोचनाएँ पहले प्रकार की आलोचनाओं की तुलना में निम्नकोटि की हुई हैं। इन्हें आलोचना के अन्तर्गत मान लेने के दो कारण हैं एक तो ये, गौण रूप में ही सही, कवि की रचनागत आत्माभिव्यक्ति-विषयक विशेषता पर प्रकाश डालती हैं और यह भी महत्वपूर्ण आलोच्य विषय है। दूसरे आलोचना का मुख्य उद्देश है रचना को ठीक ठीक समझने में पाठक की सहायता करना और इस प्रकार की समीक्षाएँ भी आलोचना की उद्देशपूर्ति में, ही अंश तक सही, साधक हैं। 'मेघदूत में कालिदास का आत्मचरित'[२] में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने कालिदास के आत्मचरित को प्रधानता देते हुए भी मेघदूत की आलोचना की है।

रचनाओं और रचनाकारों की तुलनात्मक समीक्षा भी द्विवेदीयुग के आलोचनासाहित्य की एक विशिष्टता है। द्विवेदी जी द्वारा लिखित तुलनात्मक समीक्षा की 'आलोचना' अध्याय में और देवबिहारी-विषयक वादविवाद से सम्बन्धित इस प्रकार की आलोचना का उल्लेख इसी अध्याय के अन्तर्गत उपरिलिखित शास्त्रार्थपद्धति के अन्तर्गत हो चुका है। द्विवेदीयुग के तुलनात्मक-आलोचना-लेखकों में पद्मसिंह शर्मा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होने तुलनात्मक दृष्टि से अनेक आलोचनाएँ लिखीं–'भिन्न भिन्न भाषाओं में समानार्थवाची पद्य,,[३] 'संस्कृत और हिन्दी कविता का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव'[४] आदि। 'बिहारी-सतसई' में उन्होंने बिहारी के दोहों की संस्कृत, प्राकृत, उर्दू आदि की कविताओं से तुलना की। 'कालिदास और भवभूति',[५] 'कालिदास और शेक्सपियर'[६] आदि आलोचनात्मक लेख

---

१. सरस्वती, अगस्त, १९११ ई०।

२. सरस्वती, भाग १, खंड २, पृ० २८६।

३. सरस्वती, भाग ८, पृ० २१४।

४. सरस्वती, १९०८ ई०, पृ० ३१८ और ४०८, सरस्वती, १९११ ई०, पृ० ४३८ और ६१५ तथा सरस्वती, १९१२ ई०, पृ० ६७२।

५. जनार्दन भट्ट, सरस्वती, १९१३ ई०, पृ० ३७३।

६. मनोहर लाल श्रीवास्तव, सरस्वती, १९११ ई०, पृ० ३०२।

भी इसी पद्धति पर लिखे गए। सं० १९७७ में द्विजेन्द्र लाल राय लिखित 'कालिदास और भवभूति' का हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित हुआ। अनुवादि होने के कारण इस पुस्तक की आलोचनात्मक विशिष्टताओं का अध्ययन यहाँ पर अनपेक्षित है। १९२३ ई० में छन्नू लाल द्विवेदी ने 'कालिदास और शेक्सपियर' नामक आलोचनापुस्तक लिखी। हिन्दी साहित्य में तुलनात्मक प्रणाली के प्रारम्भ, प्रचार और प्रसार का श्रेय इन्हीं आलोचकों को है। किन्तु आदर्श आलोचना की ईक्षा की दृष्टि से इनके द्वारा लिखी गई समीक्षाएँ उच्च कोटि की नहीं हैं। इनमें निष्पक्षता, तत्वाभिनिवेश और उदार दृष्टि की कमी है। कृष्ण बिहारी मिश्र के 'देव और बिहारी' (सं० १९७७) में अपेक्षाकृत अधिक गम्भीरता और सूक्ष्म विवेचन की झलक है।

तुलनात्मक समीक्षा का सुन्दरतम रूप रामचन्द्रशुक्ल की आलोचनाओं में दिखाई पड़ा। यद्यपि उन्होंने केवल तुलना करने के उद्देश से कोई आलोचना नहीं लिखी तथापि आलोच्य कवियों या काव्यों की समीक्षा को गुरुतर बनाने के लिए यथास्थान उनकी तुलनात्मक समीक्षा भी की। उदाहरणार्थ, सूर की आलोचना करते समय उन्होंने यह अपेक्षित समझा की उनकी तुलना हिन्दी के अन्य सिद्ध कवियों तुलसी, जायसी, बिहारी आदि–से कर दी जाय जिससे उनका तारतम्य समझने, हिन्दी साहित्य में सूर का स्थान निश्चित करने और काव्यानन्द का विशेष चर्वण करने में पाठकों को सुविधा हो। निम्नांकित उद्धरण इस कथन को स्पष्ट कर देंगे।

क. "तुलसी के समान लोकव्यापी प्रभाव वाले और लोकव्यापिनी दशाएँ सूर ने वर्णन के लिए नहीं ली हैं। ··· कुछ लोग रामचरित मानस में राम के प्रत्येक कर्म पर देवताओं का फूल बरसाना देखकर ऊबते से हैं। उन्हें समझना चाहिए कि गोस्वामी जी ने राम के प्रत्येक कर्म को ऐसे व्यापक प्रभाव का चित्रित किया है जिस पर तीनों लोकों की दृष्टि लगी रहती थी। कृष्ण का गोचारण और रासलीला आदि देखने को भी देवगण एकत्र हो जाते हैं, पर केवल तमाशबीन की तरह"।[1]

ख. "तुलसी की उपासना सेव्यसेवक भाव से कही जाती है और सूर की सख्य भाव से। सूर में जो कुछ संकोच का अभाव या प्रगल्भता पाई जाती है वह गृहीत विषय के कारण।"[2]

ग. "सूरदास जी अपने भावों में मग्न रहने वाले थे, अपने चारों ओर की परिस्थिति की आलोचना करने वाले नहीं।······तुलसीदास जी लोक गति के सूक्ष्म पर्यालोचक थे।"[3]

१, २, ३, भ्रमरगीतसार की भूमिका, पृ० ६-१०, ४४, ४८ और ५१।

घ. "दूर की सूझ या ऊहा वाले पद भी सूर ने बहुत कहे हैं, जैसे—

मन राखन को बेनु लियो कर, मृग थाके उडुपति न चरै।
अति आतुर ह्वै सिंह लिख्यो कर जेहि भामिनि को करु न टरै॥

राधा मन बहलाने के लिए, किसी प्रकार रात बिताने के लिए, वीणा लेकर बैठीं। उस वीणा या वेणु के स्वर से मोहित होकर चन्द्रमा के रथ का हिरन अड़ गया और चन्द्रमा के रुक जाने से रात और भी बढ़ गई। इस पर घबराकर के सिंह का चित्र बनाने लगीं, जिससे मृग डर कर भाग जांय। जायसी की 'पद्मावत' में भी यह उक्ति ज्यों की त्यों आई है-

गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि बाहन तहं रहै ओनाई।
पुनि धनि सिंह उरेहै लागै। ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै॥

जायसी की पद्मावत विक्रम संवत् १५६७ में बनी और 'सूरसागर' संवत् १६०७ के लगभग बन चुका था। अतः जायसी की रचना कुछ पूर्व की ही मानी जायगी। पूर्व की न सही तो भी किसी एक ने दूसरे से यह उक्ति ली हो, इसकी संम्भावना नहीं। उक्ति सूर और जायसी दोनो मे पुरानी है। दोनो ने स्वतन्त्र रूप में इसे कवि परम्परा द्वारा प्राप्त किया।"[1]

उपर्युक्त उदाहरणों में लोचन पद्धति पर की गई तुलनात्मक आलोचना कुछ विशिष्ट तथा स्पष्ट लक्षित होती है। एक तो आलोचक नख से शिख तक ईमानदार है। उसका किसी भी लेखक के प्रति पक्षपात नहीं है। तुलसी, सूर या जायसी को उसने सच्चाई के साथ पढ़ा है और अपने मत की निष्पक्ष भाव से अभिव्यक्ति कर दी है। दूसरी विशेषता यह है कि आलोचक ने रचनाओं या रचनाकारों पर निर्णय मात्र देकर ही सन्तोष नहीं कर लिया है, उसके कारण की अन्तःसमीक्षा भी की है। तुलसी की रचनाओं में देवता लोग बारबार पुष्पवर्षा क्यों किया करते हैं और सूरसागर में क्यों नहीं करते? सूर की भक्ति सख्य भाव की क्यों है? सूर की अपेक्षा तुलसी लोकप्रिय क्यों हुए? एक दूसरे की उक्ति से अनभिज्ञ होने पर भी जायसी और सूर की कविता में बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव कैसे आया? इन शंकाओं का समाधान करने का भी उसने प्रयास किया है। तीसरी विशेषता तुलनात्मक समीक्षा के दो प्रकार सूचित करती है-कहीं तो आलोचक ने दो रचनाओं की (जैसा कि प्रथम तीन उद्धरणों से सिद्ध है) और कहीं उसने दो कवियों के पदों की परस्पर तुलना की है जैसा कि चौथे उद्धरण से प्रमाणित है। तुलनात्मक समीक्षा के ये दोनों प्रकार उस युग के अन्य आलोचकों की आलोचनाओं में अधिक स्पष्ट हैं। 'देव और बिहारी', 'बिहारी और देव' आदि में सामान्यतः कवियों की व्यापक रूप से तुलना की गई है, पदों की तुलना उदाहर-

१. भ्रमरगीतसार की भूमिका, पृ० ६-१०, ४४, ४८ और ४१।

णार्थ और गौण रूप में आई है। पद्मसिंह शर्मा की पूर्वोक्त तुलनात्मक आलोचनाओं में पदों की तुलना ही प्रधान है। तुलनात्मक समीक्षा की दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल अपने समकालीन कृष्ण बिहारी मिश्र, लाला भगवान दीन या पद्म सिंह शर्मा आदि की अपेक्षा महान आलोचक इसलिए हैं कि अन्य आलोचकों की भाँति उन्होंने तुलना को साध्य न मानकर साधन माना है। प्रसंगानुकूल उसका विवेचन संक्षिप्त रखा है और तुलनात्मक समीक्षा करते समय तटस्थता, सहृदयता तथा अन्तर्दृष्टि से काम लिया है।

लोचन पद्धति पर ही नहीं, अन्य पद्धतियों पर भी चलने वाले आलोचक की सौन्दर्यमूलक दृष्टि भारतीय आलोचना साहित्य की परम्परागत प्रणाली है। भारतीय समालोचक ने रस, अलंकार, गुण, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि या चमत्कार को ही कवित्व माना और तदनुसार काव्यों की उत्तमता, मध्यमता या अधमता की विवेचना की। पश्चिम के आलोचक ने काव्यगत सुन्दरता या असुन्दरता की कारणभूत परिस्थितियों पर भी उदारतापूर्वक विचार किया। कलात्मक कृतियों की समीक्षा करते समय उसने अपनी दृष्टि को रसादि तक ही सीमित नहीं रखा। उसने इस बात पर भी विचार किया कि कलाकार ने अपनी कृति में मानव और प्रकृति के विविध रूपों की कितनी और कैसी व्याख्या की है, हृदय और मस्तिष्क की विविधि प्रवृत्तियों का कितना सूक्ष्म और सुन्दर विश्लेषण किया है, जीवन और जगत् को कितनी दृष्टियों से देखने का प्रयास किया है और उनके रहस्यों का रमणीयार्थप्रतिपादक उद्घाटन करने में उसे कहाँ तक सफलता मिली है। द्विवेदीयुग के हिन्दी-समालोचक में भारतीय पद्धति का संस्कार विद्यमान था। पश्चिम की ज्ञानसम्पत्ति और तद्गत विशेषताओं ने भी उसे अनिवार्यतः प्रभावित किया। इसीलिए उस युग के हिन्दी-समालोचक की आलोचना, विशेषतः सौन्दर्यमूलक, तीन धाराओं में दिखाई देती है। कहीं तो उसका रूप शुद्ध भारतीय, कहीं शुद्ध पाश्चात्य और कहीं उभयात्मक है।

शुद्ध भारतीय रूप में समालोचक ने किसी पद या प्रबन्ध के अन्तर्गत रस, अलंकार आदि संस्कृत के समालोचकों की भाँति विवेचना की है। यथा——

"उपमानों की आनन्ददशा का वर्णन करके" सूर ने अप्रस्तुत-प्रशंसा द्वारा राधा के अंगों और चेष्टाओं का विरह से द्युतिहीन और मंद होना व्यंजित किया है-

तब ते इन सबहिन सचुपायो।
जब ते हरि संदेस तिहारो सुनत तावरो आयो।
फूले व्याल दुरे ते प्रकटे, पवन पेट भरि खायो।
ऊँचे बैठि विहंग सभा बिच कोकिल मंगल गायो।

निकसि कन्दरा ते केहरिहू माँथे पूँछ हिलायो।
वन गृह ते गजराज निकसि के अंग अंग गर्व जनायो।

चेष्टाओं और अंगों का श्रीहीन होना कारण है, और उपमानों का आनन्दित होना कार्य है। यहाँ अप्रस्तुत कार्य के वर्णन द्वारा प्रस्तुत कारण की व्यंजना की गई है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने जानकी के न रहने पर उपमानों का प्रसन्न होना राम के मुख से कहलाया है--

कुन्दकली दाड़िम दामिनी। कमल सरदससि अहिभामिनी॥
श्रीफल कनक कदलि हरखाहीं। नेकु न संक सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहिं बिनु आजू। हरखे सकल पाइ जनु राजू॥

पर यहाँ उपमानों के आनन्द से केवल सीता के न रहने की व्यंजना होती है।[1] सूर की अप्रस्तुतप्रशंसा में उक्ति का चमत्कार भी कुछ विशेष है और रसात्मक भी।"[2]

शुद्ध पाश्चात्य-रूप में उस युग के हिन्दी समालोचक ने रचनाकार की मानसिक प्रवृत्तियों और सहृदयता की भली भाँति छानबीन करके रचनागत सौन्दर्य की विशिष्टता का विश्लेषण किया है--

"जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे। भारतीय पद्धति के कवियों की दृष्टि फारस वालों की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों पर कहीं अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखने वाली होती है। इसमें उस रहस्यमयी सत्ता का अभ्यास देने के लिए जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य संकेत उपस्थित करने

---

१. शुक्ल जी का यह कथन चिन्त्य है। इसमें उन्होंने सीता के न रहने को व्यंग्य माना है किन्तु वह व्यंग्य न होकर वाच्य ही है। 'जानकी तोहि बिनु आजू' का दूसरा अर्थ ही क्या होगा? इन पंक्तियों के व्यंग्य को हम अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-- ये उपमान अपने से (उपमानों से) भी सुन्दर सीता जी के वियोग में राम के हृदय की ज्वाला को और भी उद्दीप्त कर देते हैं सीता की अनुपस्थिति में उपमानों का हर्षित होना यह व्यंजित करता है कि वे सीताजी की उपस्थिति में लज्जित और संकुचित रहते थे क्योंकि सीता जी उनकी अपेक्षा अधिक रूपवती थीं। राम ने कुन्दकली आदि का ही नाम क्यों लिया? क्योंकि कुन्दकली, श्रीफल आदि को देखकर उन्हें सीता के दाँतों, कुचों आदि का स्मरण हो आया था। इससे यह भी ध्वनित होता है कि संयोगावस्था में कुन्दकली, श्रीफल आदि सुखदायक थे। किन्तु वियोगावस्था में दुखदायक हो गए हैं। इस प्रकार हमारे उपर्युक्त कथन की पुष्टि हो जाती है। अस्तु, शुक्ल जी के कथन से हम सहमत हों या असहमत, परतुत अवतरण के उदाहरणत्व में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

२. 'भ्रमरगीतासार' की भूमिका, पृ० ४०।

में समथ हुए हैं। कबीर में चित्रों की न अनेकरूपता है, न वह मधुरता। देखिए, उस परोक्ष ज्योति और सौन्दर्य-सत्ता की ओर कैसी लौकिक दीप्ति और सौन्दर्य के द्वारा जायसी संकेत करते हैं—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।......
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन, पदारथ, मानिक, मोती॥
नयन जो देखत कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर॥"[1]

भारतीय और पाश्चात्य दृष्टियों के समन्वित रूप में आलोचना का उत्कृष्ट रूप और निखर गया है, उदाहरणार्थ—

"आइ साह उमराव जो लाए। फरे, झरे, पै जय नहिं पाए॥

सच पूछिये तो वस्तुव्यंजनात्मक या ऊहात्मक पद्धति का इसी रूप में अवलम्बन सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ता है इसमें अनुमान का आधार सत्य या स्वतः सम्भवी है। जायसी अनुमान या ऊहा के आधार के लिए ऐसी वस्तु सामने लाए हैं जिनका स्वरूप प्राकृतिक है। और जिससे सामान्यतः सब लोग परिचित होते हैं। इस प्रकार एक गीत में एक वियोगिनी नायिका कहती है कि मेरा प्रिय दरवाजे पर जो नीम का पेड़ लगा गया था वह बढ़ कर अब फूल रहा है, पर प्रिय न लौटा।' आधार के सत्य और प्राकृतिक स्वरूप के कारण इस उक्ति से कितना भोलापन बरस रहा है।"[2]

उपर्युक्त अवतरण में 'वस्तुव्यंजना', 'स्वतःसम्भवी' आदि भारतीय साहित्यशास्त्र की बातें हैं। कवि की प्राकृतिक स्वरूप वाली वस्तु को ऊहा का आधार मानने की अन्तःप्रवृत्ति के निदर्शन तथा आधार की सत्यता एवं प्राकृतिकता के कारण उक्ति को सुन्दर मानने में पाश्चात्य दृष्टि का अनुसरण किया गया है।

द्विवेदी-युग की आलोचना का आलोच्य विषय हिन्दी साहित्य तक ही सीमित नहीं रहा। इस दृष्टि से उसके तीन विभाग किए जा सकते हैं—हिन्दी-साहित्य, संस्कृत-साहित्य और भाषाओं के साहित्य पर लिखित आलोचना। उदाहरणार्थ, 'खड़ी बोली की काव्य स्वतंत्रता'[3] अन्य 'तुलसी दास की अद्भुत उपमाएं'[4], 'मिश्र भ्राताओं के नवरत्न'[5] आदि हिन्दी-रचनाकारों

१. जायसी पर लिखित आलोचना, त्रिवेणी, पृ० ८२।
२. जायसी पर लिखित आलोचना, त्रिवेणी, पृ० ५३, ५४।
३. कामता प्रसाद गुरु, सरस्वती, १९१२ ई०, पृ० ३१८।
४. अक्षयवट मिश्र, सरस्वती, १९१२ ई०, पृ० २७१।
५. ठा० रतन सिंह, सरस्वती, १९१२ ई० पृ० १२१।

और रचनाओं पर लिखित आलोचनाएँ हैं। 'कालिदास के काव्यों में 'नीतिबोध'[1], 'कालिदास के ग्रन्थ'[2], 'महाकवि क्षेमेन्द्र और अवदान कल्पलता'[3], 'पार्वती परिणय नाटक'[4], 'कविवर-राजशेखर'[5] 'भट्ट नारायण और वेणी संहार नाटक'[6] आदि की आलोच्यवस्तु संस्कृत साहित्य की है।' मराठी साहित्य की वर्तमान दशा'[7], 'जर्मनी का कवि सम्राट गोथे'[8], 'अरबी कविता और अरबी कविता का कालिदास'[9] आदि के विषय अन्य भाषाओं के साहित्य से लिए गए हैं। 'कालिदास और शेक्सपियर' में संस्कृत और अँग्रेजी कवियों की तुलनात्मक समीक्षा है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अपने 'विश्व साहित्य' (सं० १६८०) में हिन्दी, संस्कृत अँग्रेजी आदि अनेक भाषाओं के साहित्य के आधार पर साहित्य-सिद्धान्तों का विवेचन किया।

द्विवेदी-युग की आलोचना के विषय में उपर्युक्त विवेचन के अतिरिक्त कुछ और भी आलोचनीय है। शैली की दृष्टि से ये आलोचनाएँ तीन प्रकार की हैं—निर्णयात्मक, भावात्मक और चिन्तनात्मक। निर्णयात्मक शैली में आलोचक आलोच्य वस्तु की आलोचना करने के पूर्व अपना सिद्धान्त भी उपस्थित कर देता है। संस्कृत की आचार्य-पद्धति से सिद्धान्त-निरूपण प्रधान और लक्ष्य-ग्रन्थ या पद गौण तथा उदाहरणस्वरूप हैं, किन्तु निर्णयात्मक आलोचना में इसके ठीक विपरीत आलोचित रचना या रचनाकार ही प्रधान तथा सिद्धान्त कथन आलोचना को समझने या सुलझाने का साधन अतएव गौण है। द्विवेदी जी और द्विवेदी-युग की आलोचनाओं की अचार्यपद्धति के विवेचन से यह स्पष्ट है कि उसमें संस्कृत की आचार्य-पद्धति और अँग्रेजी की निर्णयात्मक शैली दोनों का समन्वय है। द्विवेदी जी द्वारा लिखित 'कालिदास के ग्रन्थों की समालोचना'[10] निबन्ध दोनों के समन्वित रूप का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। उसमें कुछ पृष्ठों तक सिद्धान्त–निरूपण ही किया गया है और

---

१ त्रिमूर्त्ति, सरस्वती, १६११ ई०, पृ० २११।
२. अक्षयवट मिश्र, सरस्वती, १६११ ई० पृ० ६०४।
३. ,, ,, १६१२ ई, पृ० ६०४।
४. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती १६१८ ई०, पृ० २७४।
५ भूप नारायण दीक्षित, सरस्वती, १६१६ ई० पृ० ३६।
६. गिरिजा प्रसाद द्विवेदी, सरस्वती, १६१६ ई०, पृ० १७८।
७. लक्ष्मीधर वाजपेयी, सरस्वती, १६१२ ई०, पृ० ६६७।
८. श्याम सुन्दर जोशी, सरस्वती, १६१७ ई०, पृ० १।
९. महेशचन्द्र मौलवी, सरस्वती, १६१६ ई०, पृ० १०४,१२७।
१०. 'कालिदास के ग्रन्थों की समालोचना' में 'कालिदास और उनकी कविता' में संकलित है।

तदनन्तर कालिदास की कविता की समालोचना। द्विवेदी जी युगनिर्माता थे, वस्तुतः आचार्य थे। अतएव उनका उद्देश न तो केवल सिद्धान्त निरूपण था और न केवल लक्ष्य ग्रन्थों की आलोचना ही। उनके उद्देश के मूल में दोनों ही बातें अभिन्न रूप से उपस्थित थीं। सिद्धान्त-निरूपण द्वारा वे उदीयमान कवियों के प्रशस्त मार्ग का निर्देश करना चाहते थे और साथ ही लक्ष्य ग्रन्थों की आलोचना द्वारा पाठकों की रुचि और ज्ञान का विकास। रामचन्द्र शुक्ल आदि की जायसी, तुलसी आदि पर लिखित आलोचनाओं में किए गए सिद्धान्तनिरूपण में ऐसी कोई बात नहीं है। उनका एकमात्र उद्देश अपने वक्तव्य की भूमिका पुष्ट करना है, यथा—

"प्रबन्धकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चल सकता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं। रामकथा के भीतर ये स्थल अत्यन्त मर्मस्पर्शी हैं--राम का अयोध्यात्याग और पथिकरूप में वनगमन··· भरत की प्रतीक्षा। इन स्थलों को गोस्वामी जी ने अच्छी तरह पहचाना है, इनका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद वर्णन किया है।"[1]

आलोचना की भावात्मक शैली निर्णयात्मक शैली से इस बात में भिन्न है कि निर्णयात्मक शैली में किसी एक समीक्षा-सिद्धान्त के अनुसार आलोचना की जाती है। किन्तु भावात्मक शैली का आलोचक आलोचना के सभी सिद्धान्तों को भूल जाता है और जो विषय उसके हृदय पर जिस प्रकार का प्रभाव डालता है उसकी वह उसी प्रकार की प्रभावाभिव्यंजक आलोचना कर देता है द्विवेदी-युग में सूक्ति, खंडन और शास्त्रार्थ की पद्धतियों पर की गई आलोचनाओं में स्थाम स्थान पर भावुक कवि की सी प्रभावाभिव्यंजना का परिचय मिलता है। उस युग के लेखक अपने अक्खड़पन, मस्ती और सजीवता के कारण उमंग के साथ ललकारते हुए ही आगे बढ़े हैं। कहीं तो भाव के प्रभाव में विचार का सर्वथा अभाव हो गया है और आलोचना कही जाने वाली रचना आलोचना नामकरण के अयोग्य हो गई है। द्विवेदी जी की आलोचनाओं में प्रभावाभिव्यंजकता का अजस्र प्रवाह होते हुए भी कहीं भी सिद्धान्त का अभाव नहीं है। वे युग के आधार होते हुए भी युग के अपवाद हैं। आधार इस अर्थ में हैं कि उनका युग-निर्माता का व्यक्तित्व साहित्य के प्रत्येक क्षेत्र में और आलोचना की प्रत्येक पद्धति पर विद्यमान है। अपवाद इस अर्थ में है कि वे युग की निर्बलताओं से स्वयं ऊपर उठ गये हैं और उस युग को भी ऊपर उठा दिया है। आलोचनों के क्षेत्र में प्रभावाभिव्यंजक आलोचना करते हुए भी उनकी दृष्टि से यह सिद्धान्त या आदर्श कभी भी

---

१. शुक्ल जी द्वारा तुलसीदास पर लिखित आलोचना, त्रिवेणी, पृ० १३८।

ओझल नहीं हुआ है कि दुष्ट रचनाओं की प्रतिकूल और गुणमुक्त रचनाओं की अनुकूल आलोचना करके हिन्दी की हानिकारिणी शक्तियों को रोकना और विकासकारिणी शक्तियों को प्रोत्साहित करना हिन्दी के प्रत्येक उपासक का कर्तव्य है। अपने इस उद्देश की अनन्यता के कारण भी द्विवेदी जी उस युग के अप्रतिम समालोचक हैं। आलोच्य रचना की सुन्दरता और असुन्दरता से प्रभावित होने के साथ ही साथ द्विवेदी जी हिन्दी-हित की भावना से और पद्मसिंह शर्मा, मिश्रबन्धु, लाला भगवानदीन, बालमुकुन्द गुप्त आदि पक्षपात तथा द्वेष आदि से भी प्रभावित हैं। किन्तु रामचन्द्र शुक्ल केवल सौन्दर्य से प्रभावित हैं, यथा--

परिहरि राम सीय जगमाहीं। कोउ न कहहिं मोर मत नाहीं ॥

राम की सुशीलता पर भरत को इतना विश्वास वह सुशीलता धन्य है जिस पर इतना विश्वास टिक सके, और वह विश्वास धन्य है जो सुशीलता पर इस अविचल भाव से जमा रहे! ...उनकी शपथ उनकी अन्तर्वेदना की व्यंजना है

जे अघ मातु पिता सुत मारे।

इस सफाई के सामने हजारों वकीलों की सफाई कुछ नहीं है, इन कसमों के सामने लाखों कसमें कुछ नहीं हैं। यहाँ वह हृदय खोलकर रख दिया गया है जिसकी पवित्रता को देख जो चाहे अपना हृदय निर्मल करले।"[1]

वास्तविक समालोचना की दृष्टि से प्रभावाभिव्यंजक आलोचनाओं का विशेष साहित्यिक महत्व नहीं है। तो फिर साहित्य में उनका प्रयोजन क्या है? इस विषय में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि वे आलोचनाएँ प्रयोजन की उपयोगिता की दृष्टि से लिखी ही नहीं गई हैं। वे तो प्रभावित हृदय की आत्माभिव्यक्ति मात्र हैं। इसलिए उनमें ठोस आलोचनात्मक विवेचना ढूढ़ना ही व्यर्थ है। दूसरी बात यह है कि साहित्य में जिस प्रकार आनन्ददायक काव्य और तद्विषयक ज्ञानप्रद आलोचना का प्रयोजन है उसी प्रकार ऐसी रचनाओं का भी प्रयोजन है जिनमें काव्य की रमणीयता और आलोचना की ज्ञानप्रदता एक साथ हो। वस्तुतः द्विवेदी-युगमें उच्च कोटि की प्रभावाभिव्यंजक समालोचनाएँ नहीं हुईं। क्योंकि आलोचकों के हृदय और मस्तिष्क को युग के आन्दोलनों, उसकी आवश्कताओं तथा व्यक्तिगत भावों ने आक्रान्त कर रखा था। वे एकान्त-सौन्दर्योपासक न रह सके।

परिस्थितियों के आक्रामक प्रभावों से मुक्त रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-आलोचना क्षेत्र में पदार्पण किया था। द्विवेदी-युग के पूर्वार्द्ध में भी उनके 'साहित्य', 'कविता क्या है' आदि आलोचनात्मक लेख प्रकाशित हो चुके थे। उन लेखों में आलोचना का पर्याप्त ठोसपन

---

१. गोस्वामी तुलसीदास पर लिखित आलोचना, त्रिवेणी, पृ० १५४, १५५।

नहीं था। वे कृतियाँ लक्ष्य ग्रन्थों की समालोचनाएँ न होकर सिद्धान्त समीक्षाएँ थीं। हिन्दी-साहित्य में आलोचना का आदर्श रूप द्विवेदी-युग के अन्तिम वर्षों में शुक्ल जी के द्वारा लिखित जायसी, तुलसी और सूर की आलोचनाओं में मिलता है। ये आलोचनाएँ चिन्तनात्मक कोटि की हैं। इनमें आलोचक ने आलोच्य विषय पर गवेषणात्मक तुलनात्मक और सौन्दर्यमूलक सभी दृष्टियों से गम्भीर विचार करके रचना की सुन्दरता, विशिष्टता और हीनता तथा रचनाकार की प्रकृति, प्रवृत्ति, कलाकुशलता, सफलता और असफलता का वैज्ञानिक ढंग से सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उदाहरणार्थ—

"जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और ज्ञेय की एकता है उसी प्रकार प्रेम भाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। अतः भगवद्भक्त की साधना के लिए इसी प्रेमतत्व को वल्लभाचार्य ने सामने रक्खा और उनके अनुयायी कृष्णभक्त कवि इसी को लेकर चले। गोस्वामी तुलसीदास की दृष्टि व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त लोक-पक्ष पर भी थी, इसी से वे मर्यादा पुरुषोत्तम के चरित को लेकर चले और उसमें लोकरक्षा के अनुकूल जीवन की ओर और व्यक्तियों का भी उन्होंने उत्कर्ष दिखाया और अनुरंजन किया।

उस प्रेमतत्व की पुष्टि में भी सूर की वाणी मुख्यतः प्रयुक्त जान पड़ती है। रतिभाव के तीनों प्रबल और प्रधान रूप—भगवद्विषयक रति, वात्सल्य और दाम्पत्य रति—सूर ने लिए हैं। यद्यपि पिछले दोनों प्रकार के रतिभाव कृष्णोन्मुख होने के कारण तत्त्वतः भगवत्प्रेम के के अन्तर्भूत ही हैं पर निरूप भेद से और रचना-विभाग की दृष्टि से वे अलग रक्खे गए हैं। इस दृष्टि से विभाग करने से विनय के जितने पद हैं वे भगवद्विषयक रति के अन्तर्गत आवेंगे, बाललीला के पद वात्सल्य के अन्तर्गत और गोपियों के प्रेमसम्बन्धी पद दाम्पत्य रति भाव के अन्तर्गत होंगे। हृदय से निकली हुई प्रेम की इन तीनों प्रबल धाराओं से सूर ने बड़ा भारी सागर भर कर तैयार किया है।"[1]

युग-निर्माता पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके निर्मित युग की यही संक्षिप्त समीक्षा है। कामताप्रसाद गुरु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास. मैथिलीशरण गुप्त आदि महान् साहित्यकारों ने अपने पत्रों में द्विवेदी जी को आचार्य माना है, उनसे संशोधन की प्रार्थना की है और समय समय पर कृतज्ञता प्रकाश भी किया है। ये पत्र काशी नागरी प्रचारिणी सभा के कला भवन तथा कार्यालय और दौलतपुर (द्विवेदी जी की जन्मभूमि) में रक्षित हैं। उस युग के महान् साहित्यकारों की रचनाओं के संस्कार और परिष्कार की विस्तृत विवेचना पूर्ववर्ती पृष्ठों में हो चुकी है। 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (१६३३ ई०), 'हंस' के

---

१. 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका', पृ० ३, ४।

'अभिनन्दनांक' (१६३३ ई०), 'बालक' के 'द्विवेदी-स्मृत-अंक', 'साहित्य-संन्देश' के द्विवेदी-अंक' (१६३८ ई०), 'सरस्वती' के 'द्विवेदी-स्मृति-अंक' (१६३६ ई०) आदि में गंगानाथ झा, गोपाल शरण सिंह, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, लक्ष्मीधर वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे, बाबू राव विष्णु पराड़कर आदि ने निस्संकोच भाव से द्विवेदी जी को अपना गुरु स्वीकार किया है। सच तो यह है कि द्विवेदी जी का व्यक्तित्व उनकी निजी रचनाओं की अपेक्षा उनके युग की रचनाओं में ही अधिक पूर्णतया और सुन्दरतया व्यक्त हुआ है। हिन्दी-साहित्य में जो कुछ परिवर्तन हुए वे अनिवार्य थे। द्विवेदी जी का गौरव इस बात में है कि यदि हिन्दी-साहित्य-जगत् में उनका अवतार न हुआ होता तो वह आज से कई दशाब्द पीछे होता। रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह, सत्यदेव आदि इतने महान् साहित्यकार कैसे हो पाते—

'महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद'।[1]

---

१. मैथिलीशरण गुप्त, 'साकेत' का समर्पण-पृष्ठ।

परिशिष्ट १

नागरी-प्रचारिणी सभा को पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का दान।

१ पत्रिकाएं

[निम्नांकित पत्रिकाओं की क्रमबद्ध या फुटकल प्रतियाँ काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के आर्य भाषा-पुस्तकालय में रक्षित हैं।]

(क) हिन्दी-पत्रिकाएँ

१-२. आदर्श
३. आनन्द-कादम्बिनी
४. आर्य-जीवन
५. आर्य-महिला
६. आलोक
७. आशा
८. इन्दु
९. उत्थान
१०. ऊषा
११. औदुम्बर
१२. औषध
१३. कथामुखी
१४. कमला
१५. कमलिनी
१६. कल्याण
१७. कवि व चित्रकार
१८-२१. कान्यकुब्ज
२२. कान्यकुब्ज-नायक
२३. कान्यकुब्ज-बन्धु
२४. कान्यकुब्ज-सुधारक
२५. कान्यकुब्ज-हितकारी
२६. काशी-पत्रिका
२७. काव्य कलाधर
२८. काव्य-कलानिधि
२९. किशोर
३०. किसानोपकारक
३१. कृषि-सुधार
३२. गंगा
३३. गृह-लक्ष्मी
३४. ग्राम-सन्देश
३५. चाँद
३६. चिकित्सा
३७. चित्रमय जगत्
३८. चैतन्य-चन्द्रिका
३९. छत्तीसगढ़
४०. जासूस
४१ जैन-सिद्धान्त-भास्कर
४२. जैन-हितैषी
४३. तपोभूमि
४४. तरंगिणी

४५. तेली-समाचार
४६. त्याग-भूमि
४७. दलितोदय
४८. दिगम्बरजैन
४९. दीपक
५०. देवनागर
५१. धर्म-कुसमाकर
५२. धर्माभ्युदय
५३. नवजीवन
५४. नवनीत
५५. नागरी-प्रचारक
५६. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका
५७. नागरी-हितैषिणी
५८. नारायण
५९. निगमागम-चन्द्रिका
६०. नृसिंह
६१. परिवर्तन
६२. परोपकारी
६३. प्रकाश
६४. प्रतिभा
६५-६६. प्रभा
६७. प्रेमा
६८. बालक
६९. बाल-प्रभाकर
७०. बाल-सखा
७१. बाल-हितैषी
७२. ब्रह्मचारी
७३. ब्राह्मण-सर्वस्व
७४-७५. भारती
७६. भारतोदय
७७. भाषा-भूषण
७८. भ्रमर
७९-८०. मनोरमा
८१-८२. मर्यादा
८३. माधुरी
८४. मारवाड़ी-सुधार
८५. मालव-मयूर
८६. यादवेन्द्र
८७. युगान्त
८८. युवक
८९. रत्नाकर
९०. रसिक-वाटिका
९१. राघवेन्द्र
९२. राम
९३. लक्ष्मी
९४. लेखक
९५. वाणी
९६. विकास
९७. विज्ञान
९८. विद्यापीठ
९९. विद्यार्थी
१००. विनोद-वाटिका
१०१. विशाल-भारत
१०२. विश्वमित्र
१०३. वीणा
१०४. वीर-संदेश
१०५. वैदिक-सर्वस्व
१०६. वैद्य-कल्पतरु
१०७. वैशाली
१०८. वैश्योपकारक
१०९. वैष्णव-धर्म-पताका
११०. वैष्णव-सर्वस्व

१११. व्यापारी
११२. ब्रजवासी
११३. शिक्षण-कौमुदी
११४. शिक्षण-पत्रिका
११५. श्री शारदा
११६ श्री स्वदेश
११७. श्रय
११८. संकीर्तन
११९. संसार
१२० सत्यकेतु
१२१. सत्ययुग
१२२. सत्य-संदेश
१२३. समन्वय
१२४. सनाढ्योपकारक
१२५–२६ समालोचक
१२७. सम्मेलन-पत्रिका
१२८. सरस्वती
१२९. सरोज
१३०. सहेली
१३१. साहित्य
१३२. साहित्य-पत्रिका
१३३. साहित्य-संदेश
१३४. साहित्य-सुधानिधि
१३५. सुकवि
१३६. सुदर्शन
१३७. सुधा
१३८. सुधानिधि
१३९. सुवर्ण-माला
१४०. स्वदेश-बान्धव
१४१. स्वार्थ
१४२. हंस
१४३. हरिश्चन्द्र-कला
१४४. हलवाई वैश्य-संरक्षक
१४५. हितकारिणी
१४६. हिन्दी-प्रचारक
१४७. हिन्दी प्रदीप
१४८. हिन्दी-मनोरंजन

(ख) बँगला-पत्रिकाएँ

१. साहित्य-परिषद्-पत्रिका
२. भारत-महिला
३. प्रवासी
४. भारतवर्ष
५. गृहस्थ
६. मानसी व मर्मवानी
७. भारती
८. विक्रम कपूर
९. उद्बोधन

(ग) गुजराती-पत्रिकाएँ

१. समालोचक
२. बीसवीं सदी
३. श्रीजैन श्वेताम्बर कान्फ्रेंस हेरल्ड
४. स्त्री-सुख-दर्पण
५. सुन्दरी-सुबोध
६. प्रचीन-भारत
७. भोम-सौन्दर्य

(घ) मराठी पत्रिकाएं

१. हिन्दूपंच
२. मनोरंजन
३. केरल-कोकिल
४. महाराष्ट्र-कोकिल

५ बालबोध

६. लोक-मित्र

७. नवयुग

८ सुवर्ण-माला

(ङ) संस्कृत-पत्रिकाएँ

१. मित्र-गोष्ठी

२. शारदा

३. संस्कृत-चन्द्रिका

४ संस्कृत-काव्य-कादम्बिनी सभा-समस्या पूर्ति

५. संस्कृत-भारती

६. संस्कृत-रत्न

७. बहुश्रुत

८. संस्कृत-परिषद्

९. गीर्वाण-भारती

(च) उर्दू पत्रिकाएँ

१. आर्य-समाचार

२. साधू

३. विज्ञानी

४. ज़माना

५. सन्त संदेश

६. अदीब

७. मुफ़ीदुल मज़ार ऐन

८. आर्य मुसाफिर

९. तर्जुमा

१०. रोज़गार

११. रोशन

१२. दिलकश

१३. अलअसर

१४. सुबहे उम्मीद

(छ) अँगरेजी पत्रिकाएँ

1. The Gazette of India, Calcutta.
2. Government Gazette, Allahabad.
3. Provincial Press Bureau, Allahabad.
4. Government Gazette, United Provinces, Agra, Oudh, Allahabad.
5. Provincial Press Bureau, Nainital.
6. India
7. Memoirs of the Asiatic Society, Bengal
8. Gazette of India, Simla.
9. Prabuddh Bharata.
10. The Dawn.
11. Journal and Proceeding of the Asiatic society of Bengal.
12. The Indian Ladies Magazine.

13. The Central Hindu College Magazine.
14. The Science Grounded Religion.
15. Indian antiquary.
16. The Collegian.
17. Rajput.
18. The Indian Review.
19. Review of Reviews.
20. African Times.
21. Student World.
22. The Moderen Review.
23. The Kayastha Samachar.
24. The Hidustan Review and Kayastha Samachar
25. The Hindustan Review.
26. Pearson's Magazine.
27. The Agricaltural Journal of India.
28. Scientific American.
29. Standard Bearer.
30. The Indian Humanitarian.
31. Golden Number of Indian Opinion.
32. The Humanitarian Era
33. The Indian Settler.
34. The Wealth of India.
35. The Collegian And Progress of India.
36. The India Temperance Record and White Ribbon.
37. Review.
38. The Hindustani Student.
39. Indian Thought.
40. The Madras Ayurvedic Journal.
41. The Poona Agriculteral College Magazine.
42. The Ferguson College Magazine.

43. Vedic Magazine.
44. The Sufi.
45. The Jain Gazette.

२. आर्यभाषा पुस्तकालय में रक्षित पुस्तकें

भाषा		पुस्तकसंख्या
(क) हिन्दी		२३२६
(ख) संस्कृत		३३३
(ग) बंगला	लगभग	६५
(घ) मराठी		११६
(ङ) गुजराती	लगभग	१६२
(च) अँगरेजी		११६८
(छ) उर्दू		६१
(ज) गोरखा		५

३. कलाभवन में रक्षित हस्तलिखित रचनाएँ

(क) 'सरस्वती' की स्वीकृत रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ--

१६०३ ई०	१ बंडल
१६०४	,,
१६०५	,,
१६०६	,,
१६०७	,,
१६०८	,,
१६०६	,,
१६११	,,
१६१२	,,
१६१३	,,
१६१४	,,
१६१५	,,
१६१६	,,
१६१७	,,

१६१८	१ बंडल
१६१६	,,
१६२०	२ बंडल
	१८ बंडल

(ख) 'सरस्वती' की अस्वीकृत रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियाँ—

१६०३ ई०	१ बंडल
१६०३-१६०४	,,
१६०४	,,
१६०५	,,
१६०६	२ ,,
१६०७	१ ,,
१६०६	,,
१६११	,,
१६१२	,,
१६१३	,,
१६१४	२ ,,
१६१६	१ ,,
१६१६-१६१७	,,
१६१८	२ ,,
१६१८-१६१६-१६२०	१ ,,
	१८ बंडल

(ग) कलाभवन में रक्षित पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतियाँ तथा अन्य रचनाएँ आदि—

१	बंडल	'सम्पत्ति शास्त्र', 'कविताकलाप' और 'शिक्षा'
१	,,	'जिला कानपुर का भूगोल', 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' और 'विक्रमांक-देवचरित चर्चा'
१	,,	'रघुवंश'
१	,,	'कुमार सम्भव' और 'मेघदूत'
१	,,	'महाभारत'
२	,,	'लोअर प्राइमरी रीडर' और 'अपर प्राइमरी रीडर' हस्तलिखित पुस्तकें, कविता, लेख आदि

१	,,	'नाट्यशास्त्र', 'अमृत लहरी', 'कुमारसम्भवसार', 'नैषध चरित चर्चा', 'हिन्दी कालिदास की समालोचना', 'कुमार सम्भव भाषा' और 'ऋतुसंहार भाषा' की समालोचनाएँ, 'कौटिल्य कुठार', 'थर्ड हिन्दी रीडर', स्फुट लेख (दो संग्रह), स्फुट कविताए, निरंकुशता विषयक कतरनें, पत्रादि, 'अभ्युदय' और 'मर्यादा' की महत्ता—पत्र, कतरनें, लेख आदि, भवभूति, के काल-निर्णय पर कतरनें, मिडिल-परीक्षा के प्रश्न (दिसम्बर, १९०० ई०), प्रेस ऐक्ट, कापी राइट ऐक्ट, नजीरें आदि।
१	,,	हस्तलिखित फुटकर लेख--'शीलनिधान जी की शालीनता', 'कवि की दिव्य दृष्टि', 'प्लेगस्तवराज' आदि
१	,,	फुटकर लेख—गद्य और पद्य
१	,,	फुटकर पत्र--३ डायरियां
१	,,	साहित्य-सम्मेलन-सम्बन्धी पत्रादि
१	,,	साहित्यिक वादविवाद, 'आत्माराम की टें टें'
१	,,	मानहानि का दावा
२	,,	विभक्ति विचार-वितंडा
१	,,	'सरस्वती', भाग १५, संख्या २, से सम्बन्धित 'पढ़े लिखों का पांडित्य' आदि पर कतरनें--जुलाई से दिसम्बर, १९१४
१	,,	दी मीर्स आफ़ हिन्दी रीडर्स
१	,,	हस्तलिखित पुस्तकें—(प्राचीन लेखकों की) 'रामचन्द्रिका', 'बिहारी-सतसई' आदि
१	,,	डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'प्राचीन साहित्य' पुस्तक का हिन्दी अनुवाद–अस्वीकृत–१९१५ ई०
१	,,	क्लर्क की जगह के लिए प्रार्थना पत्र
१	,,	गज़ट ऑफ़ इंडिया
१	,,	दी पीपुल्स बैंक आफ़ इंडिया लिमिटेड--१९१६ ई० से सम्बन्धित कागद पत्र
१	,,	कुछ सरकारी प्रकाशन
२५ बंडल		

कला-भवन में रक्षित

'सरस्वती' की स्वीकृत रचनाएँ	१८ बंडल
'सरस्वती' की अस्वीकृत रचनाएँ	१८ "
अन्य रचनाएँ, पत्रादि	२५ "
	कुल योग ६१ बंडल

४. नागरी-प्रचारिणी-सभा के कार्यालय में रक्षित पत्रादि

पहला बंडल	संख्या
(क) विविध	१ से ५१
(ख) "	५२ से १०१
(ग) "	१०२ से १६७
(घ) द्विवेदी जी के दो फ़ोटोग्राफ	१६८ से १६६
(ङ) पत्नी वियोग सम्बन्धी	१७० से २७६
दूसरा बंडल	
(क) छोटेलाल बार्हस्पत्य के	२७६ से ३४८
(ख) माधवराव सप्रे के 'ग्रन्थ प्रकाशन-मंडली सम्बन्धी'	३४६ से ४६७
(ग) राजा पृथ्वीपालसिंह के व्यक्तिगत	४६५ से ४७४
(घ) गिरिधर शर्मा के (अधिकतर व्यक्तिगत)	४७५ से ५३०
(ङ) गुरुकुल कांगड़ी के गवर्नर महात्मा मुंशीराम से संबंधित	५३१ से ५४८
(च) लुई कूने (लिपज़िग) के	५४६ से ५६५
(छ) 'मर्यादा' सम्बन्धी	५६६ से ५८०
(ज) परमानन्द चतुर्वेदी के (व्यक्तिगत)	५८१ से ६२३
(झ) छतरपुर रियासत के	६२४ से ६४६
(ञ) आर० पी० ड्यूहर्स्ट से संबंधित	६४७ से ६४६
(ट) नाथूराम शर्मा 'शंकर' के	६५० से ७०६
तीसरा और चौथा बंडल	
(क) इन्दौर दरबार को भेजे गए	७०७ से ७१५
(ख) से (ङ) तक—विविध (नागरी प्रचारिणी महासभा के विवाद, वैज्ञानिक कोष, दार्शनिक परिभाषा आदि के विषय में)	७१६ से ८६०

·········१६०६ ई० की 'सरस्वती' में 'विषस्य विषमौषधम्' का विज्ञापन देखकर भेजे गए कागद पत्र, 'अनस्थिरता' सम्बन्धी पत्र, विविध विषयक पत्र, द्विवेदी जी का मृत्यु लेख (१६०७ ई०) जो बाद में तिरस्कृत कर दिया गया।

परिशिष्ट २

वर्णानुक्रम से द्विवेदी जी की रचनाओं की सूची—

१. अतीत स्मृति
२. अद्भुत आलाप
३. अपर प्राइमरी रीडर
४. अमृत लहरी
५. अवध के किसानों की बरबादी
६. आख्यायिका-सप्तक
७. आत्मनिवेदन (अभिनन्दन के समय का भाषण)
८. आध्यात्मिकी
९. आलोचनांजलि
१०. ऋतु-तरंगिणी
११. औद्योगिकी
१२. कविता-कलाप
१३. कान्यकुब्ज-अबला-विलाप
१४. कान्यकुब्जली-व्रतम्
१५. कालिदास और उनकी कविता
१६. कालिदास की निरंकुशता
१७. काव्य मंजूषा
१८. किरातार्जुनीय
१९. कुमारसम्भव
२०. कुमार-संभव-सार
२१. कोविद-कीर्तन
२२. कौटिल्य-कुठार
२३. गंगालहरी
२४. चरितचर्या
२५. चरित्र-चित्रण
२६. जल-चिकित्सा
२७. जिला कानपुर का भूगोल
२८. तरुणोपदेश
२९. दृश्यदर्शन
३०. देवी-स्तुति-शतक
३१. द्विवेदी-काव्यमाला
३२. नागरी
३३. नाट्यशास्त्र
३४. नैषध-चरित-चर्चा
३५. पुरातत्व-प्रसंग
३६. पुरावृत्त
३७. प्राचीन-चिन्ह
३८. प्राचीन पंडित और कवि
३९. बालबोध या वर्णबोध
४०. बेकन-विचार-रत्नावली
४१. भामिनी-विलास
४२. भाषण (द्विवेदी-मेला)
४३. भाषण (साहित्य-सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष पद से)
४४. महिम्न-स्त्रोत्र
४५. महिला-मोद
४६. मेघदूत

४७. रघुबंश
४८. रसज्ञ-रंजन
४९. लेखांजलि
५०. लोअर प्राइमरी रीडर
५१. वनिता-विलास
५२. वाग्विलास
५३. विक्रमांक देवचरित-चर्चा
५४. विज्ञ-विनोद
५५. विज्ञान-वार्ता
५६. विचार-विमर्श
५७. विदेशी-विद्वान
५८. विनय-विनोद
५९. विहार-वाटिका
६०. वेणी-संहार
६१. वैज्ञानिक-कोष
६२. वैचित्र्य-चित्रण
६३. शिक्षा
६४. शिक्षा-सरोज रीडर
६५. संकलन
६६. संपत्ति-शास्त्र
६७. समाचार-पत्र-संपादकस्तव
६८. समालोचना-समुच्चय
६९. साहित्य-संदर्भ
७०. साहित्य-सीकर
७१. साहित्यालाप
७२. सुकवि-संकीर्तन
७३. सुमन
७४. सोहागरात
७५. स्नेहमाला
७६. स्वाधीनता
७७. हिन्दी कालिदास की समालोचना
७८ हिन्दी की पहली किताब
७९. हिन्दी भाषा की उत्पत्ति
८० हिन्दी महाभारत
८१. हिन्दी शिक्षावली, तृतीय भाग की समालोचना

परिशिष्ट ३

'सरस्वती' सम्पादक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा संशोधित एक लेख।

मूल लेखक—पांडुरंग खानखोजे

प्रकाशन का देश काल – 'सरस्वती', भाग १२, संख्या ४, पृ० १५१–५५।

केवल मोटे और काले अक्षर छोड़ कर द्विवेदी जी ने परिवर्तन, परिवर्द्धन या काँटछाँट की है।

मूल	संशोधित
ग्रन्थालयों का जन्म साधन व्याख्या और प्रणाली ग्रन्थालयों का जन्म	लिखने के साधन
"Libraries are the shrines where all the relics of saints, full of true virtue, and that without delusion and imposture, are presented and reposed. Bacon	
वनचरावस्था से बाहर निकलने का प्रयत्न मनुष्य प्राणी जिस समय करता है उसही समय निसर्ग का त्रासदायी पर्वत उल्लंघन करने की वह चेष्टा करता है। **इस** ही उत्क्रमण की शास्त्रवेत्ता **वानर से नर अवस्था में आना** कहता है। अस्तित्व जीवन कलह और योग्य बलवान को यश इन शक्तियों के कारण केवल पशु शक्ति को छोड़ कर मानव शक्ति का स्वीकार करना आवश्यक हो जाता है। मानव-शक्ति से **बुद्धि विकास और बुद्धि विकास से ही सभ्यता जन्म लेती है**। इस **सभ्यता के विचार विकास तथा विचार प्रचार** आवश्यक हो जाते हैं। इसी ही से भावोत्पत्ति होकर विचार रत्न भांडार एकत्रित करने की लोक चेष्टा करते हैं। बस इस ही से **मानसिक ग्रन्थों** को जीवन मिलता है। **ऐसे ग्रन्थ अति मूल्यवान** बन जाते हैं। कारण **इन ग्रन्थों में ही परमेश्वर की अगाध लीला** प्रथम ग्रथित **होती है। ऐसे ग्रन्थों का** सन्मान	वनचरावस्था से **बाहर निक**लने का प्रयत्न जिस समय मनुष्य करता है उस समय उसे एक नया जन्म सा मिलता है। इस उत्क्रमण की शास्त्रवेत्ता

मूल	संशोधित
कितना होता है इसकी कल्पना करना हो तो जगन्मान्य वेदों का थोड़ा स्मरण कीजियेगा। इन वेदों ने भारतीय पंडितों को प्रेम से पागल किया है परन्तु म्याक्समुलर आदि पाश्चात्य पंडितों को भी पागल कर डाला है। मानसिक ग्रन्थ स्मृति ग्रन्थालय में रखना मानव प्राणी को जिस समय अति कठीण हो जाता उस ही समय वह लेखन की चेष्टा करता है। लेखन कला उत्पन्न होने से लिखित ग्रन्थ उत्पन्न होते है। और ग्रन्थों से ग्रन्थालय उत्पन्न होते हैं। जिस समय ग्रन्थ लेख शुरू हो जाता है। पुस्तक लेखन से पुस्तक संग्रह और पुस्तक संग्रह से पुस्तकालय उत्पन्न होते हैं। उपरि लिखति उत्क्रमण से यह सिद्ध होता है कि ग्रन्थालय को योग्य कल्पना आने के वास्ते पहिले ग्रन्थालय के साधनो को जानना अत्यन्त आवश्यक है। हमने इस लेख में ग्रन्थ और पुस्तक तथा ग्रन्थालय और पुस्तकालय ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है उससे पाठकों के मन में भ्रम उत्पन्न होने का संभव है कर के इस समय ग्रन्थ की व्याख्या तथा साधन का वर्णन करेंगे। ग्रन्थ की व्याख्या—व्यापक दृष्टी से ग्रन्थ उस पदार्थ को कहना ठीक है कि जिसमें मनुष्य प्राणी के विचार कल्पना, ज्ञान, भाषा आदि ग्रथित	वानर से नर अवस्था में आना कहते हैं। इस अवस्था में बुद्धि विकास होता है। बुद्धि विकास से सभ्यता जन्म लेती है। सभ्यता की वृद्धिगत करने के लिए विचार विकास और विचार-प्रचार की आवश्यकता होती है। इसी समय भाषा की उत्पत्ति होती है। तदनन्तर मानसिक ग्रन्थों का जन्म होता है। ऐसे ग्रन्थ अति मूल्यवान समझे जाते हैं। क्योंकि इन्हीं ग्रन्थों में परमेश्वर की अगाध लीला का प्राथमिक वर्णन ग्रथित होता है। ऐसे ग्रन्थों का कितना सम्मान होता है, इसकी कल्पना करना हो तो जगन्मान्य वेदों का स्मरण करना चाहिए। वेदों ने भारतीय पंडितों को तो प्रेम से पागल किया ही है, परन्तु मैक्समूलर आदि पाश्चात्य पंडितों को भी पागल कर डाला है। मानसिक ग्रन्थों का स्मरण रखना मनुष्य को जिस समय कठिन हो जाता है उस समय वह उन्हें लिखने की चेष्टा करता है। लेखन-कला उत्पन्न होने से लिखित ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं। धीरे धीरे पुस्तक-कल्पना व्यक्त होकर पुस्तकें लिखी जाने लगती हैं। पुस्तक लेखन से पुस्तक-संग्रह और पुस्तक-संग्रह से पुस्तकालय उत्पन्न होते हैं।

मूल	संशोधित
किये गये हों और जिसका उद्देश उनका प्रचार मनुष्य प्राणीओं में करने का हो। यह व्याख्या व्यापक होने के कारण इसमें निम्नलिखीत बातों का समावेश होता है। स्मृति ग्रन्थ (इसका अर्थ भारतीय धर्मशास्त्र। जैसे कि मनुस्मृति, पाराशर स्मृति इत्यादि नहीं है) स्मृति ग्रन्थ ऐसे ग्रन्थ है कि जिससे स्मरण में रखे हुए विचारों का प्रचार हो। इसमें अति प्राचीन दंत कथा, काव्य, कविता, पदे, गीत और सम्भाषण आदि का समावेश होता है। होली में जो निंद्य शब्दों का प्रचार केवल स्मृति से आजकल के जमाने में हो गया है और हो रहा है इस कारण मनुष्य के ऊपर यह कल्पना प्रचार का संस्कार रह गया है यह है। होली के कवित्त न की गीत है ना सम्भाषण है। भला इन कवितों को अनपढ़ लोगो को ध्यान में रखना भी मुष्कील नहीं जाता है। इस ही के समान न गद्य ना पद्य अश्लील नही भाषा का प्रचार इस स्मृति ग्रन्थ के समय में था ऐसा विद्वान लोगों का तर्क है। पुराण भाषाओं में धार्मिक मन्त्र जादू के मन्त्र तन्त्र, पैशाचिक संस्कार ऐसे ही विचित्र भाषाओं में लिखे गये है। इस ही भाषा से जगत के **मनोरम भाषाओं ने जन्म लिया है।** भिन्न भिन्न भाषाओं की उन्नति यह एक उत्क्रमण का उत्तम उदाहरण है। ऐसे भाषाओं का प्रचार इन स्मृति ग्रन्थों का प्रचार प्रपितामह से पितामह के पास पितामह के मूं से पिता के पास इस ही परम्परा से हुआ करता था। इससे लोगों की स्मरण शक्ति बहुत ही अच्छी तरह से बढ़ती थी। एक समय भारतवर्ष में यह प्रणाली का प्रचार सार्वत्रिक था। हमने अपने पूर्वजों को धन्यवाद देना चाहिये कारण इस ही शक्ति से उन्होंने वेद, उपनिषद, स्मृति आदि ग्रन्थ परदेशीयों के आक्रमणो से और उनके ग्रन्थ प्रलय से बचाये। नही तो आज बचे हुये थोड़े ग्रन्थ भी अग्नये स्वाहा हो जाते !! मुखस्त करके स्मृति	मानसिक ग्रन्थ मन से उत्पन्न होते हैं। यही स्मृति ग्रन्थ हैं। इन में प्राचीन कथाएँ, कविता पद और गीत आदि होते हैं पुराने धार्मिक और ऐन्द्रजालिक मन्त्र तन्त्र तथा पैशाचिक बातें भी इस तरह के ग्रन्थों में समाविष्ट रहती हैं। वे एक विचित्र भाषा में होती हैं। इन्हीं भाषाओं से संसार की मनोरम भाषाओं ने जन्म लिया है। ऐसी भाषाओं का प्रचार—ऐसे स्मृति ग्रन्थों का ज्ञान--प्रपितामह से पितामहको, पितामहसे पिताको और पिता से पुत्र को हुआ करता था। इससे स्मरण शक्ति बहुत बढ़ती थी। इसी शक्ति की कृपा से हमारे पूर्वजों ने वेद उपनिषद्, स्मृति आदि को ग्रन्थों को हजारों वर्ष तक अक्षुण्ण रक्खा। यदि वे ऐसा न करते तो इस समय के अवशिष्ट ग्रन्थ भी कब के लुप्त हो गये होते। स्मृति ग्रन्थों का प्रकार केवल भारतवासियों हीं ने नहीं किया, हिन्दू भाषा के ग्रन्थों का प्रचार भी प्राचीन काल में इसी तरह होता था।

मूल	संशोधन
ग्रन्थों का प्रचार केवल भारवासीयों ने ही नहीं किया तो हिब्रु ग्रन्थों का प्रचार भी प्राचीन काल में ऐसा ही हुवा करता था। युरोपीय ग्रन्थों में होमर के महाकाव्य को रामायण के समान सम्मान है। इस महाकाव्य का प्रचार कैसा हुवा केवल एक के मूं से दूसरे पास ईसामसी के ४७६ साल पहिले होमर के महाकाव्य इलियड तथा ओडिसे लिखे गये है। ऐसा कहते है कि यह महाकवि ग्रीक वाल्मिकी-प्रवास में ही अन्धा हो गया करके अपने काव्य को गाते हुवे हेलास के भिन्न भिन्न नगरों में भ्रमण करता था इस अमर काव्य का होमर के मुख से श्रवण करने में लोक हर्ष चित्त हुवा करते थे। और इस ही कारण से बहुत लोगो ने इसको मुखस्त करके इस महाकाव्य का प्रचार किया। आधुनिक जर्मन पंडितों का मत है कि होमर के महाकाव्य इलियड और ओडिसे एक कवि की कृति नहीं है किन्तु अनेक कवियों ने उनको बनाया है। जो सत्य हो सो हो परन्तु हमे इन काव्यों के मुखोमुखी प्रचार से हो जरूरत है। जापानीयो के कोजीकी का प्रचार ऐसे ही तरीके से हुवा करता था। चीन देश में लेखन और मुद्रण कला का प्रचार होने के पहिले और वहां पर बुद्ध धर्म का प्रचार होने के बहुत ही पहिले उनकी पुराण नीति, उपदेश धर्म आदि का प्रचार स्मृति पथ मे ही हुवा करता था। इजिप्त देश की ऐतिहासिक लेखों में सर्वदा लोक बहुत प्रतिष्ठा करते है इसका कारण शिवाय उनके स्मृतिग्रन्थ की धनिकता यह ही है।	ग्रीस के महाकवि होमर के महाकाव्य का बड़ा आदर है। उसका प्रचार श्रवण परम्परा ही से हुआ था। ईसा के ४७६ वर्ष पहले होमर के महाकाव्य इलियड और आडिसी प्रणीत हुए थे। यह महाकवि अन्धा हो गया था। यह अपने काव्य को गाते हुए भ्रमण किया करता था। इन काव्यों को होमर के मुख से सुनकर ही लोगों ने याद कर लिया था। जापानियों के कोजकी ग्रन्थ का प्रचार भी इसी तरह हुआ था। चीन में लेखन और मुद्रण कला का प्रचार होने के पहले वहाँ के पुराण, नीति उपदेश और धर्म ग्रन्थों का प्रचार भी स्मृति पथ से ही हुआ था।
२ शिला तथा इष्टिका ग्रन्थ इन ग्रन्थों में पाषाण, शीला, हड्डी, शींगार, हास्तिदन्त, मिट्टी के कच्चे पात्र, इंटा या यष्टिका आदि कठीण पदार्थों का लिखने के वास्ते व्यवहार किया गया है। अति प्राचीन काल में जिस समय मनुष्य प्राणी सभ्य होते चला था उस समय इन सब पदार्थों का उपयोग उन्होंने किया है। शिला-	मानसिक ग्रन्थों की वृद्धि होते होते उनका याद रखना कठिन हो गया इससे उनको लिख रखने की जरूरत हुई। पर कागज पहले था नहीं। इससे पत्थर, शिला, हड्डी, सींग, हाँथी दांत, मिट्टी के पक्के पात्र

मूल	संशोधित
काल इतिहास में अति प्राचीन काल है। भूगर्भ शास्त्र-वेत्ताओं ने इस काल का निरीक्षण प्रयत्नपूर्वक किया है। इस काल के सामान्यताः दो विभाग किये गये हैं। एक अति प्राचीन शिला युग और दूसरा प्राचीन नव शिला युग। हमे अति प्राचीन शिला युग से जरूरत नहीं है। नव शीला युग के आरंभ से भी विशेष परिचय की आवश्यकता नहीं है परन्तु शिला युग के अन्त में और धातु युग के प्रारम्भ में ग्रन्थालय का मनोरंजक इतिहास मिश्रित हो गया है। स्मृति ग्रन्थ का काल जैसा जानना अशक्य है वैसा ही प्राचीन ग्रन्थ का काल जानने की कोशिश करना है। इस प्राचीन काल को जानने की की इच्छा हो तो Man before Metals Joly साहब का Primitive Man Horners का, Beginning of Writing Hoffman का, Story of the Alphabet Clodd का, और भारतीय प्राचीन ग्रन्थों के काल को जानना होता तो मान्यवर तिलक के Orion, Arctic Home in the Vedas इत्यादि ग्रन्थ और पंडित म्याक्समूलर के ग्रन्थ पढ़ने से बहुत कुछ मालूम हो जायेगा। जगत् के अति प्राचीन ग्रन्थ मृग, हाथी, आदि चित्रों से हड्डी, पाषाण आदि पर लिखे गये है। परन्तु जिस समय भाषा को ऐसा व्यक्त स्वरूप आने लगा उस ही समय चित्र लिपि को गर्भावस्था प्राप्त होकर चित्र लिपी को जन्म मिला ऐसा पाश्चात्य पंडितों के भाषा धर्म शास्त्र में लिखा है। यह अति पुराण भाषा प्राचीन काल में कैसी लिखी जाती थी यह जानने को पाठक गण कदाचित् उत्सुक होंगे तो पाठकों के मनोरंजन के लिये एक अलास्का कुटी में मिले हुवे लेख में से निम्निलिखित उदाहरण लेवेंगे। एक अलास्का इन्डियन मछली और दूसरे समुद्र के प्राणी की शिकार करने को गया था उसका वर्णन उसने लिखा है। (१) [चित्र] मैं नौका से गया हूँ। मैं लिखने के वास्ते एक मनुष्य का चित्र निकाल कर जिस साधन से जाना चाहता था वह बतलानेके वास्ते हात लम्बा करके	और ईट आदि पदार्थों पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे। भूगर्भशास्त्रवेत्ताओं का मत है कि सबसे पहले पत्थरों और शिलाओं पर हथियारों से खोद कर लोग अपने मन की बात लिखते थे। संसार के कितने ही अति प्राचीन ग्रन्थ चित्र-लिपि द्वारा हड्डी, पत्थर और शिला आदि पर लिखे गये हैं। पाठक शायद यह जानना चाहें कि यह चित्र-लिपि क्या चीज है। यह वह लिपि है जिसमें मनुष्य अपने मन के भाव चित्रों द्वारा व्यक्त करते थे। इस लिपि का एक नमूना आप को हम बतलाते हैं। अलास्का प्रान्त में एक इस तरह का लेख मिला है। उसका संक्षिप्त वर्णन सुनिए। एक असभ्य मनुष्य मछली का शिकार करने गया था। उसे यह बतलाना था कि मैं नाव से गया था। इसलिए पहले उसने एक मनुष्य का चित्र बनाया फिर एक और मनुष्य का चित्र बनाकर उसके दोनों हाथों पर एक हाड़ रख दिया। पहले मनुष्य चित्र का हाथ दूसरे की तरफ उठा कर उसने यह सूचित किया कि इस तरह मैं नाव पर शिकार खेलने गया था। रात को वह दो झोपड़ी वाले एक टापू में

मूल	संशोधित
दूसरे चित्र के तरफ बतलाया और नौका से जाना चाहता हूँ यह बतलाने के वास्ते दोनों हातों में वल्हे वल्हे शब्द मराठी इंग्लिस Paddle है कृपया योग्य हिन्दी शब्द लिखना) लेकर जाने की दिशा बतला रहा है। (२) [चित्र] में रात को दो कुटी वाले द्वीप में सोया (इस चित्र में कानको हात लगा कर सोने का चिन्हाक्षर लिखा और एक वर्तुल निकाल कर द्वीप लिखा और उसमें दो कुटी बतलाने को दो बिन्दु दे दिये। (३) [चित्र] मैं दूसरे द्वीप में गया था इस (इस चित्र में मै के वास्ते (१) के समान, और द्वीप के वास्ते (२) के समान अक्षर है।) (४) [चित्र] वहां पर दो सोय (दो हात के दो उंगलीयों से) (५) [चित्र] दोनों ने समुद्रमछली मारी (मछली का चित्र) (६) [चित्र] और धनुष्य से भी मारा लौटे (धनुष्य का चिन्ह मछली के तरफ करके और लौटने का मार्ग बतलाया।) [चित्र] नौका से घर को लौटे (नौका का चित्र निकाल कर अलास्का के घर का चित्र निकाला) सम्पूर्ण वाक्य का मतलब है कि मैं नौका से गया था, रात को सोया था दो कुटी के द्वीप में, फिर दूसरे द्वीप गया था, वहाँ पर दो सोये, दोनों ने समुद्र मछली मारी—तीर और लाठी से, नौका से घर को लौट आये। यह उदाहरण एक पाश्चात्य संशोधक ने दिया है। इससे प्राचीन लिपी की योग्य कल्पना होती है। ईजिप्त प्रदेश के लेख भी इस ही तरह के लिखे गये हैं। इस प्रणाली को चीनी लोकों ने बहुत बढ़ाकर सुधारी है। और ऐसी ही लिपी जापान, कोरिया, तिब्बत आदि देशो में है। जापान में दूसरी एक लिपी प्रचलित है जिसको इरोहा कहते है। इरोहा वा काताकाना का इतिहास मनोरंजक है परन्तु यह विषय विस्तीर्ण होने के कारण सन्धि मिलने से भविष्यत मे कभी लिखेंगे। इतना यहाँ कह देना ठीक होगा कि जापानी भाषा, लिपी, समाज दन्त कथा आदि भारतवर्ष के प्राचीन अवस्था से बहुत मिलती है। जापाम के मेरे एक साल तक रहने से इस विषय पर थोड़ा अध्ययन करने को मेरे को सन्धि मिली	सोया। इस बात को उसने इस तरह जाहिर किया। एक एक मनुष्य का चित्र बनाकर कान पर हाथ लगाया। इससे सोना सूचित हुआ। फिर एक गोल दायरा खींचकर उसके भीतर दो बिन्दु दे दिये। इससे उसने दो झोपड़ों के टापू का ज्ञान कराया। इसके अनन्तर वह एक और टापू में गया। इसे बताने के लिए उसने फिर एक मनुष्याकृति बनाई और उसके आगे एक दायरा खींचा। वहाँ पर उसे एक और आदमी मिल गया वे दोनों उस टापू में सोये। अतएव एक हाथ को कान पर रखकर दूसरे हाथ की दो अंगुलिया उठाकर उसने इस बात को दिखाया और ऐसा ही चित्र भी उसने बनाया। उन दोनों ने मछली मारी। इसके लिए उसने मछली का चित्र बनाया और मनुष्याकृति खोदकर उसकी दो अंगुलियां उठाई। मछलो का शिकार उन्होंने धनुष बाण से किया था। अतएव मनुष्य का आकार खींचकर धनुप उसके हाथ में दिया। इसी तरह उसने और भी कई चित्र खोद कर अपने मन का भाव प्रकट किया। इसी का नाम है चित्रलिपि। ईजिप्ट में इस

मूल	संशोधित
थी, उससे मेरी ऐसी श्रद्धा होते चली की **जापान के प्राचीन इतिहास से और भारत के प्राचीन इतिहास से कुछ ना कुछ सम्बन्ध था।** सन्धि मिलने से आगे इस विषय पर कभी लिखेंगे। अमेरिकन इण्डियन अभी भी चित्रित लिपी में लिखा करते हैं यह चित्र लिपी लिखित ग्रन्थ जगत् के इतिहास में क्राति कर रहे हैं और करेंगे। यह ग्रन्थ शीला तथा इष्टिका आदि पर लिखे गये होने के कारण बहुत दुष्प्राप्य है। चित्रलिपी ग्रन्थ इष्टिका, शीला आदि पर लिखे हुये सबसे जादा मिसर (इजिप्त) देश में है। इजित के शीला ग्रन्थों का संशोधन पाश्चात्य पंडित अति परिश्रम से कर रहे हैं। **कारनाक में** विस्तीर्ण स्तम्भों के ऊपर **अनेक** शीला लेख अभी भी **मौजूद** हैं। इनके शीला ग्रन्थों से मालूम होता है कि कम से कम इनके शीला ग्रन्थों का काल इसा से ४००० साल पहिले का होगा। इजित का इतिहास ईसा–मसी के ४५०० साल के पहिले से मिलता है। इजित में मेनेस अलेक भ्भाडर के आक्रमण तक इजिप्शियन राजाओं ने राज्य किया। तदनन्तर परराज्य रूपी अन्धकार में इजित डूबने लगा। यह काल ४५००से ३३२ तक ईसा के पहले होता है। इसका रम्य इतिहास इष्टिका ग्रन्थों के ऊपर चित्रलिपी से लिखा है। जगत में **इस ग्रन्थ भंडारसे स्पर्धा करने** को दूसरे **कौन से भी देश में शक्ति नहीं है।**	तरह के हजारों लेखों का पता लगा है। **विद्या की** वह एक जुदा शाखा ही हो गई है। **अनेक विद्वान** इस विषय की योग्यता सम्पादन करने और प्राचीन चित्रलिपि पढ़ने के लिए बरसों परिश्रम करते हैं। चीन वालों ने इस चित्रलिपि को विशेष उन्नत किया है। जपान, कोरिया और तिब्बत आदि में भी, चीन से सम्पर्क होने के कारण, यह लिपि प्रचलित थी। जपान में इसी तरह की एक और लिपि का प्रचार था। उसे इरोहर कहते हैं। उसका इतिहास बड़ा मनोरंजक है। उस पर मै फिर कभी कुछ लिखूँगा। मैं एक साल तक जपान में था। उस समय इस विषय की कुछ छानबीन भी मैंने की थी। उससे मेरी यह धारणा हुई है कि जपान के इतिहास का भारत के प्राचीन इतिहास से कुछ न कुछ सम्बन्ध अवश्य था। अमेरिका के आदिम निवासी, जिन्हें असभ्य इंडियन कहते हैं, अब तक इस चित्रलिपि का व्यवहार करते हैं। ईंटों और पत्थरों पर लिखे हुए चित्रलिपि ग्रन्थ सबसे अधिक मिश्र देश में हैं। कारनाक में बड़े बड़े खंभों के ऊपर अनेक शिलालेख अब तक मौजूद हैं। ये ईसा के ५००० वर्ष पहले के हैं। इस देश का प्राचीन इतिहास ईंटों के ऊपर चित्र लिपि में लिखा हुआ है। इस ग्रन्थ भांडार से स्पर्धा करने योग्य दूसरे किसी भी देश में शक्ति नहीं है। मिश्र वालों में अद्भुत ग्रन्थ लेखन शक्ति थी। इन लोगों को सरस्वती ने इतना पागल कर दिया था कि वृक्ष, पाषाण, ईंट व चमड़ा इत्यादि जो कुछ मिला है सब पर इन्होंने लिख मारा है।

मूल	संशोधन
इन लोगों में ग्रन्थ लेखन शक्ति अद्भुत थी। इन लोगों को सरस्वती ने इतना पागल किया था कि वृक्ष, पाषाण, पर्वत, इष्टिका, चर्म इत्यादि जो कुछ मिला वहीं पर लिख मारा। ऐसे सरस्वती के भक्तों को और सभ्यता के प्रचारक देश को जिस काल चक्र ने नीचे गिराया और उस समय से राजकीय तथा सभ्यता में भी गुलाम बनाया उसको "कालाय तस्मै नमः" इतना ही कहना बस्स है।	
अलास्का के इन्डियन लोगों के अक्षर का नमूना उपर देदिया है। पाठकों के परिचय के लिये तथा उपरि निर्दिष्ट भाषासिद्धान्त के पुष्टी के वास्ते इजिप्शियन लोगों के कुछ चिन्ह देता हूँ। [चिन्ह] इन चिन्हों का अर्थ चित्र से सहज मालूम हो जायगा। जिस समय यह चित्रलिपी लिखना अत्यन्त त्रासदायी मालूम होने लगा उस समय इजिप्शियन लोगों ने उस ही से सुलभ सुलभ चिन्ह लिपी बनाई। तत्पश्चात् इन लोगों ने सुगम अक्षर बनाये। इन लोगों के बहुत ग्रन्थ ऐसे ही तीनो मिश्र लिपी से लिखे हुए है। ध्वनी लेखन प्रणाली का जन्म भी इन लोगों ने ही किया।	धीरे धीरे जब इन्हें बहुत लिखने की जरूरत पड़ने लगी तब यह चित्रलिपि त्रासदायी मालूम होने लगी। अतएव इन लोगों ने उस लिपि का संशोधन करके कुछ सुलभ चिन्ह निर्माण किये। तत्पश्चात् इन्होंने कुछ समय बाद अक्षर बनाये। इन लोगों के बहुत से ग्रंथ इन तीनों प्रकार की मिश्र-लिपियों में लिखे हुए हैं।
चीन देश में अति प्राचीन काल में चित्रित भाषा थी यह उपर लिख दिया है। उदाहरणार्थ [चिन्ह] प्रभात, [चिन्ह] पर्वत [चिन्ह] वृक्ष (दरख्त) [चिन्ह] घोड़ा, [चिन्ह] आदमी। अर्वाचीन उदाहरणार्थः [चिन्ह] प्रभात [चिन्ह] पर्वत, [चिन्ह] वृक्ष, [चिन्ह] घोड़ा, [चिन्ह] आदमी चीनी लोकों ने लिपी में सुधार किया परन्तु ध्वनी:लेखन के स्थान में इन्हो ने विस्तृत चिन्ह लेखन का ही प्रचार किया। चिन के सर्वग्रन्थ उपरि लिखित चिन्हांकित भाषाओं में हैं।	
३ धीरे धीरे लिपी विस्तार होने लगा और इस कारण से ग्रन्थ साहित्य की आवश्यकता लोगों को अधिकतर मालूम होने लगी असेरिया, ग्रीस आदि देशों में ध्वनी लेखन प्रणाली का जन्म होते ही लोक लेखनेच्छु हो गये परन्तु साधन हीन होने के कारण उनको इष्टिका या शीला व्यतिरिक्त अन्य साधन ढूँढ़ने का प्रयोजन	धीरे धीरे लिपि-विस्तार होने लगा। इसका कारण ग्रन्थ साहित्य की आवश्यकता लोगों को अधिकाधिक मालूम होने लगी। फल यह हुआ कि कुछ दिनों में आसारिया, ग्रीस

मूल	संशोधित
पड़ा। मिट्टीके तख्ते बनाना, लिखना और भूंजना त्रासदायी होने के कारण लोगों ने मृदु लकड़ीयों के ऊपर लिखना शुरू किया। वंश वृक्ष पर लिखने में चीनी लोक कुशल बन गये। बुद्धकालीन अनेक लेख भारत वर्ष में शालाओं के ऊपर है परन्तु लकड़ीयों के ऊपर लिखे हुये लेख भी पाये हैं। अशोक महाराजा के समय के इन लेखों से ही भारतवर्ष का प्राचीन इतिहास का संशोधन करने को सुभीदा हुआ। लकड़ी पर लिखने का तरीका भारतवर्ष में अभी अभी तक था। मेरे पितामह जिनके मृत्यू थोड़े महीनों के हि पहले हुवा, मुझे हर हमेश पूर्वकालीन विद्योपार्जन के कष्टता के बारे में उपदेश पर अनुभव कथन करते थे। उनका उपदेश था हम लोगों ने लकड़ीके ऊपर का ईंट चूर्ण डालकर बांस के लकड़ी से श्रीगणेशायनमः से इति तक अध्ययन कष्टतापूर्वक किया। भोसलेशायी में कागज महँगे थे करके शिवाय लकड़ी तख्ते के दूसरा मार्ग नहीं था। आज तुम्हारे समान लड़कों के पढ़ने के वास्ते विद्यालय, पुस्तक, लेखणी, स्लेट आदि साधन होकर भी विद्योपार्जन में तुम लोक पुराने जमाने के लोगों के समान कष्ट नहीं उठाते हो। मैंने मारवाड़ियों के दुकानों में रंगीन तख्ते पर रंग से लिखने का तरीका बहुत जगह पर देखा। यदि साधननों के दुष्प्रायता के कारण अभी तक यह शोचनीय स्थिति थी तो पुराण काल के लोगों की क्या हालत होगी? तो भी धन्य है उन महात्माओं को जिन्होंने भोज पत्र पर भारतवर्षीय अमूल्य ग्रन्थ भांडार लिख डाला है। लकड़ी पर लिखे हुये ग्रन्थ ग्रीस और रोम आदि देशों में भी पाये जाते हैं। लकड़ी, भोजपत्र के पश्चात् लोगों ने अन्य वृक्षों के पत्तों पर लिखना शुरू किया। ताड़पत्र पर भारत के कितने ग्रन्थ लिखे गये होंगे यह	आदि देशों में ध्वनिके अनुसार लेखन प्रणाली का जन्म हुआ। इस समय पत्थरों और ईंटों पर लिखने से लोगों को तकलीफ होने लगी। इससे अन्य साधन ढूँढने का प्रयोजन हुआ। तब लोगों ने नरम नरम लकड़ियों के तख्तों के ऊपर लिखना शुरू किया बांस पर लिखने में चीनी लोगों ने बड़ी कुशलता प्राप्त की। बुद्धकालीन अनेक लेख भारतवर्ष में लकड़ी के ऊपर लिखे हुए पाये गये हैं। चीन की तो बात ही नहीं। वहां तो ऐसे असंख्य लेख मिलते हैं। लकड़ी पर लिखने का रवाज भारतवर्ष में अभी तक था। मेरे पितामह पूर्वकालीन विद्योपार्जन की कष्टदायकता के विषयमें मुझसे बहुधा बातें किया करते थे। वे कहते थे कि हम लोगों ने तख्ते के ऊपर ईंट का चूर डाल कर बांस की लकड़ी से श्रीगणेशायनमः से प्रारम्भ करके अन्त तक अध्ययन किया था। मैंने मारवाड़ियों की दूकानों पर रंगीन तख्तों पर रंग से लिखने का रवाज बहुत जगह देखा है। यदि साधनों की दुष्प्राप्यता के कारण अब तक यह दशा थी तो पुराने समय की असुविधाओं का क्या पूछना है। अतएव धन्य है उन भारतवर्षीय महात्माओं को जिन्होंने भोज पत्र पर अमूल्य ग्रन्थ लिख डाले हैं। लकड़ी पर लिखे हुए ग्रन्थ ग्रीस और रोम आदि देशों में भी पाये जाते हैं। लकड़ी और भोजपत्र के पश्चात्

मूल	संशोधित
यदि हम निश्चयात्मक नहीं जानते तो भी पाठक इसका तर्क कर सकते हैं। जिस समय जगत की सभ्यता इतने उच्च स्थिती प्रत आ गइ उस ही समय ग्रन्थों का रूपान्तर पुस्तकों में होने चला। ४ ताम्रपत्रादि धातू अन्य साधन इष्टिका लेखों के पहिले से ताम्रादि धातूओं पर भारतीय लेख लिखे गये है। इष्टिका या मिट्टी पर लिखने का तरीका भारतवर्ष में बाबिलोनिया से आया था ऐसा सिद्धान्त Dr. Holy को मिले इष्टिका लेख पर से अनेक विद्वान करते हैं। जो सत्य हो सो हो परन्तु यह बात निश्चित है की भारतवर्ष में सुवर्ण पत्र तथा ताम्रपत्र अति प्राचीन काल से मौजूद हैं वेदों में भी इसका वर्णन किया गया है बुद्धकालीन अनेक लेख ताम्रपत्र तथा लोहपत्र इन पर लिखे गये हैं। तक्षिला में अनेक ताम्रपत्रों पर जो लेख पाये गये इन पर से यह सिद्ध होता है कि धातूपत्रों पर लेख लिखने का तरीका भारत वासी आर्यों ने ही निकाला है। भारतवर्ष से ही धातूपत्र पर लिखने का तरीका अन्य देशों में प्रसृत हुआ ऐसा अनुमान करने को और अन्य कारणों से स्थान है। अस्तु चीन जपान आदि देशों में भी धातूपत्र पर लेख लिखने का प्रणाली थी और है। इजिप्त असेरिया, ग्रीस आदि पाश्चात्य पुराण देशों में भी एक काल में धातूपत्र के उपर ग्रन्थ थे। जिस काल का हमने वर्णन किया है वह ग्रन्थालयों के इतिहास में अति उपयोगी काल है। शीला, हड्डीये, काष्ट लकड़ी इष्टिका इत्यादि ग्रन्थों के पृष्ट थे तो ऐसे वस्तूओं के उपर लोग कैसे लिखा करते थे यह प्रश्न साहजिक उपस्थित होता है। अति प्राचीन लेख कठीण पदार्थों से खोदकर लिखे गये है। कठीण शीला के टूटकड़ों पर अच्छा कारागिरी का काम करने में प्राचीन लोक हुशार हो	लोगों ने अन्य वृक्षों के पत्तों पर भी लिखना शुरू किया ताड़पत्र पर भारत में लाखों ग्रन्थ लिखे गये हैं। जिस समय संसार की सभ्यता इतनी उच्च स्थिति पर पहुँच गई उस समय लेखों का समूह पुस्तकों का रूप धारण करने लगा। भारतवर्ष में सोने और तांबे के पत्रों का प्रचार बहुत पहले से था। वेदों में भी इस बात का उल्लेख है। बुद्धकालीन अनेक लेख तांबे और लोहे पर भी लिखे गये मिले हैं। तक्षशिला में अनेक ताम्रपत्रों पर लेख पाये गये हैं। भाडगावं में सुवर्णपत्रों पर लेख मिले हैं। इसते यह सिद्ध होता है कि धातुपत्रों पर लेख लिखने का तरीका भारतवासी आर्यों ने निकाला है। भारतवर्ष से ही यह तरीका अन्य देशों में पहुँचा है। चीन, जपान आदि देशों में भी धातुपत्रों पर लेख की प्रणाली थी और अब भी है। ईजिप्ट, आसीरिया, ग्रीस आदि पाश्चात्य देशों में भी किसी समय धातुपत्रोके ऊपर ग्रन्थ लिखे जाते थे। कुछ विद्वानों का खयाल है कि भारत ने यह तरीका बाबुलवालों से सीखा था पर मेरी सम्मति इसके विपरीत है।

मूल	संशोधित
गये थे। नंतर कठीण धातू का शोध हुआ। लोक ऐसे धातू पर या काष्ट पर धातू से लिखने लगे। लोगों ने धातू के तीव्र शस्त्र बनाना जब सीख लिया तब धातू पर लिखने के वास्ते उन्होंने अच्छे शस्त्र भी बना लिये। ऐसे प्राचीन शस्त्र प्राय: सब प्राचीन देशों में पाये जाते हैं। भारतवासी शस्त्र बनाने में बहुत ही निपुण हो गये थे। लढणे के शस्त्र तो भारतवासियों ने बना लिये ही थे परन्तु शस्त्रवैद्यकी के वास्ते भी उत्तम शस्त्र उन्होंने बना लिये थे। यह अनुमान नही है तो भारतीय विद्वानों ने इस विषय पर ग्रन्थ लिखकर सिद्ध किया है। बुद्धकाल में भी लिखने के साधन पूर्णत्व को नहीं आये होंगे और लेख लिखने को उनको बहुत तखलीफ त्रास होते होगा कारण बुद्धकालीन विनय ग्रन्थ में एक स्थान में लिखा है कि वह यदि लेखक बनेगा तो उसको सुख और समाधान होगा परन्तु उससे उसकी उंगलीयें दरद करती रहेंगी यह वाक्य पुत्र के भविष्यत जीवन के वास्ते पिता ने निकाला है। उस समय में उनको लिखने में जरूर त्रास होता होगा। भारतवर्ष में रासायनिक द्रव्यों का भी उपयोग लेखन में किया गया है। नार्थिकाम्ल (नैट्रिक आसिड H. No 3) गन्धकिकाम्ल (सल्फ्यूरिक आसिड H 2 So 4) हमारे पूर्वजों को मालूम थे और लेखन में इसका भी उपयोग किया गया होगा। ऐसा तर्क करने को स्थान है कारण अन्य देशों में इनका लेखन के वास्ते उपयोग किया गया है यह सुप्रसिद्ध है। इजिप्सियन लोगोंके ग्रन्थ भी भिन्न भिन्न रंगों से लिखे गये हैं। रंग के साथ ब्रस और ब्रस के साथ लेखन शुरू हो गया। चिनी, जपानी लोक अभी भी ब्रस से लिखते हैं। लकड़ी के रंग लगाने के तरीके से लेखणी का जन्म हुआ। लेखणी को अच्छा स्वरूप आते चला। कोयले से लिखने का तरीका भी शुरू हो गया। और कोयले से शाई भी बनने लगी। धान्यादि जलाकर शाई बनाने का तरीका अभी तक प्रचलित है। इसका जन्म भी कोयले की शाई से ही है। जगत के ब्रश कलम लेखणी शाई आदि के प्रचार से पुस्तक लिखना अधिक सुलभ हो गया।	
	पत्थरों, हड्डियों, तांबे और लोहेके तांबे पर लोग लोहे की शलाकाओं और औजारोंसे अक्षर

मूल	संशोधित
	खोदते थे। यह बड़ी मेहनत का काम था। कुछ लोग यही पेशा करते थे। इससे अभ्यास के कारण वे यह *काम बहुत अच्छा और बहुत जल्दी करते थे।* कुछ विद्वानों का अनुमान है कि भारतवर्ष में धातु पत्रों पर लेख उत्तीर्ण करने वाले कारीगर गन्धक क्षार आदि रसायनों का भी उपयोग करते थे। इनके उपयोग से अक्षरांकन में विशेष सुभीता होता था। प्राचीन समय से ही भारत में चित्र कला का प्रचार चला आता है। सुन्दर रंगों से जैसे चित्र बनाये जाते हैं वैसे ही अक्षर लिखने और उत्कीर्ण करने में भी रंग काम में लाया जाता था। चित्र बनने में ब्रस का प्रयोग करना पड़ता है। ब्रश बनाना भी प्राचीन भारतवासी जानते थे। गिलहरी की पूंछ के बालों से प्राय. ब्रश बनाये जाते थे। इन ब्रशों से धीरे धीरे लिखने का भी काम लिया जाने लगा। परन्तु ब्रश से लिखने में देर लगती थी। इस कारण लेखनी का जन्म हुआ। कलम का आदिम रूप ब्रश ही है। चीनी और जापानी लोग अब भी ब्रश से ही लिखते हैं। *कुछ दिनों बाद कोयले से तख्ते आदि पर लोग* लिखने लगे। तब उन्हे स्याही बनाने की सूझी। पहले कोयले से ही स्याही बनी होगी, उसके बाद और चीजों से।
६. वृक्ष के पत्र छाली आदि:- श्रीरामायण काल में वल्कल की कितनी महती थी यह वल्मिकी तुलसीदास आदि महर्षि कह गये हैं। भारत वर्षीय प्राचीन ग्रन्थ ताड़पत्रों पर पाये जाते हैं। गोसिंग **बिहार में भारतवर्ष के अति प्राचीन बुद्धकालीन ग्रन्थ भोज पत्र पर लिखे हुए पाये गये हैं। इन ग्रन्थों के** भाग पारिस तथा **सेटपिटसेबर्ग में अभी** भी	जब से भोज पत्र और ताड़पत्र पर लोग लिखने लगे तब से लेखन कला का विशेष प्रचार हुआ। गोसिंह बिहार में भारतवर्ष के अति प्राचीन कितने ही बुद्धकालीन ग्रन्थ भोजपत्र पर लिखे हुए पाये गये हैं। इन ग्रन्थों के कुछ अंश पेरिस और सेंटपिटर्स बर्ग में अब तक रक्खे हैं। ये ग्रन्थ कम से कम ५०० वर्ष ईसा के पहले लिखे गये होंगे। इतने प्राचीन होने पर भी ये ग्रन्थ स्याही से लिखे गये हैं, और स्याही अच्छी है। प्राचीनता के कारण भोज पत्र और ताड़पत्र भारतवासियों को इतने पूज्य हो गये हैं। यंत्र मंत्र बहुधा इन्ही पर लिखे जाते हैं।

मूल	संशोधित
मौजूद है। यह ग्रन्थ इसामसी के पहिले कम से कम ५०० वर्ष पहीले लिखा गया होगा ऐसा विद्वानों का तर्क है इसमें बुद्धोपदेश लिखा हुवा हैं। आश्चार्य यह है कि ग्रन्थ इतने प्राचीनकाल के होकर भी शाई से लिखे गये हैं और शाई भी अच्छी है। क्याप्टन बवर को कुचरके नजदीक भिंगाइ स्थान में ऐसे ही भोजपत्र पर लिखे हुए ग्रन्थ मिले हैं। ये ग्रन्थ भारतवर्ष के इतिहास में अति मूल्यवान हैं.कारण इनमें अनेक औषधीयों का वर्णन है, सर्पदंश दुरुस्त करने का भी मार्ग इन ग्रन्थों में लिखा है। इस ग्रन्थ से भारतवर्षीय आयुर्वेदिक तथा रासायनिक इतिहास जानने को सुभीदा होने वाला है शोक है कि यह संशोधन का काम केवल पाश्चात्य लोगों के ही हात में है। यदि भारतीय विद्वान इस संशोधन के विषय में ध्यान देवेंगे तो भारतवर्ष पर और भारतीय साहित्य पर इनके अनन्त उपकार होंगे। भोजपत्र और ताड़पत्र इस प्राचीनता के कारण साधारण लोगों को इतने पूज्य हो गये कि वे अभी भी बहुत से धार्मीक संस्कारों में औरधार्मिक प्रसंगों में उनका व्यवहार करते हैं इन पत्रों के तावीज बनाकर धारण करने में लोगों की अभी भी श्रद्धा है इस पर से भी इनके प्राचीनता तथा पवित्रता का अनुमान पाठक कर सकते हैं।	
७ पार्चमेंट या चमड़ा जगत के ग्रन्थों में तथा पुस्तकों में चमड़े ने अपने तरफ से बहुत सेवा किये है और अभी भी कर रहा है। एक समय जगत के सर्व प्राचीन देश चमड़े पर लिखा करते थे परन्तु अहिंसा परमों धर्मः का प्रचार जोर शोर से शुरू होने के कारण चमड़े का व्याहार लिखने के काम में कम होते चला व्याघ्र, सिंह, हरिण आदि जानवरों के चमड़े का पवित्र काम में अभी भी प्रचार अच्छा है परन्तु चमड़े के सर्वसाधारण अपवित्रा के कारण लोक चमड़े का व्यवहार पुस्तकों में करना पसंत नही करते हैं। विश्वविद्यालय या महाविद्यालय के पदवीरत्न (Diploma), तथा अन्य सरकारी कामों में इसका व्यवहार होने चमड़े को फिर श्रेष्टता आते चली। मुसलमान भाइयों ने चमड़े का ग्रन्थ या पुस्तक के काम में	एक समय था जब चमड़े पर भी पुस्तकें लिखी जाती थीं। विद्वानों का अनुमान है कि किसी समय संसार के सारे प्राचीन देश चमड़े पर लिखा करते थे। भारतवर्ष में भी प्राचीन समय में चमड़े का उपयोग इस काम के लिए होता था। पर 'अहिंसा परमों धर्मः' का उपदेश शुरू होने के कारण चमड़े का व्यवहार लिखने के काम में कम हो चला तथापि व्याघ्र, सिंह, हरिण आदि जानवरों के चमड़े का उपयोग पवित्र कामों में अब भी होता

मूल	संशोधित
प्रचार फिर भारतवर्ष में किया था। आज कल चमड़े की जिल्द बांधना, या टोपियों के अन्दर के चमड़े पर या अन्य चमड़े के वस्तू पर छापना आज कल देश में प्रसृत हो रहा है यह धंदे के ख्याल से आनंद की बात है। इजिप्त देश में चमड़े पर लिखना प्राचीन काल से पसंत करते थे। चमड़े पर लिखने का तरीका मिसर देश के परगामस राजा ने सब से पहले निकाला था और उस राजा की कीर्ति बढ़ाने के लिये उस समय से चमड़े के कागज को पार्चमैंट (Parchment) कहने को शुरू किया। इस पार्चमैंट की कहानी पाठकों को मनोरंजक मालूम होगी इस आशा से उसका वर्णन संक्षेपतः नीचे करता हूँ—जगत में नूतननगर बनाने में सिरिया देश का सेल्यूकस निकेटर नाम का एक महा विख्यात राजा हो गया। इसके मरने के बाद परगामम् नाम का निकेटर के आधीनता में पश्चिम आशिया मायनर में एक संस्थान था वह स्वाधीन हो गया। परगामम् के राजा के योग्यता के कारण ग्रीस आदि देशो के सभ्यता में परगामम् यह एक सुप्रसिद्ध केन्द्र स्थान हो गया। वहां पर एक विख्यात पुस्तकालय और विश्वविद्यालय संस्थापित हो गया। यह पुस्तकालय जगत में सबसे बड़ा बनने की इच्छा परगामम् के राजा के दिल में थी और उसने इजिप्तसे प्यपीरस कागज मंगाना शुरू किया परन्तु इजिप्त नरेशों ने कागज को परगामम में भेजने को अपने राज्य में मना किया। इजिप्त के इस अदूरदर्शित्व के कारण जगत की सभ्यता कभी भी पीछे रहने वाली नहीं थी। परगामम के राजा ने अपनी सम्पूर्ण पुस्तकें पार्चमेंट चमड़े के ऊपर लिखवायी। यह इतिहास इसाके पहले २८१ का है पार्चमेंट शद परगामम' शद् से निकला है। परगामम् से परगामेंट और परगामेंट से आर्चेमेंट बन गया। चमड़े की मजबूती	है। परन्तु अपवित्रता के ख्याल से लोग चमड़े का व्यवहार पुस्तक लिखने में करना अब पसन्द नहीं करते। विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों के पदवीदान पत्रों (Diploma) में चमड़े का व्यवहार गवर्नमेंट इस समय भी करती है। पुस्तकों की जिल्द बांधने में तो चमड़े का व्यवहार सार्वत्रिक सा है। ईजिप्ट देश में प्राचीन काल से चमड़े पर लोग लिखते थे। चमड़े पर लिखने का तरीका वहां परगामस के राजा ने सबसे पहले निकाला। उस राजा की यादगार मे उस समय से चमड़े के कागज को लोग पार्चमेंट कहने लगे। पार्चमेंट की कहानी बड़ी मनोरंजक है। उसे थोड़े में मैं सुनाता हूँ। सीरिया देश का सिल्यूकस निकेटर बहुत विख्यात राजा हो गया है। उसके मरने के बाद पश्चिमी एशिया माइनर का परगामम् नाम का एक संस्थान स्वाधीन हो गया। परगामम् का राजा बड़ा योग्य था। इससे वहां पर एक बहुत बड़ा पुस्तकालय और विश्वविद्यालय संस्थापित था। इस पुस्तकालय को जगत में सबसे बड़ा पुस्तकालय बनाने की इच्छा परगामम् के राजा की थी। अतएव उसने ईजिप्ट से पापीरस (Papyrus) नामक कागज मंगाना शुरू किया। परन्तु ईजिप्ट के राजाओं ने परगामम् में कागज भेजना रोक दिया। यह देखकर इस परगामम् के राजा ने

मूल	संशोधित
और अनेक वर्षों तक की कीड़ा इत्यादी से खराबा नहीं होता इन कारणों से चमड़े का प्रचार पाश्चात्य देशों में जादा हुवा । पाताल के अमरीका के रक्त इन्डियन चमड़े का उपयोग लिखने के काम में अति प्राचीन काल से करते थे । इन की मनोहर चित्रलिपी और चित्र अभी भी आल्हादकारक है इनके चमड़े के ग्रन्थ चित्र विचत्र अक्षरों में लिखे गये हैं। अति प्राचीन हिब्रयू पुस्तकें भी चमड़े पर पार्चमेन्ट पर लिखी गई है एक समय युरोप निवासी अन्य प्राचीन लोकों में चमड़े पर लिखना बहुत ही पसंत करते थे । ८ कागज या पापिरस (Papyrus) सबसे पहले कागज का शोध चीनी लोकों ने १३५२ साल में चीन में कागज बनाना शुरू हो हो गया था भारत में कागज चीन से आया ऐसा बहुत विद्वानों का कहना है । युरोप में कागज का प्रसार इजिप्त से हुवा। भारतवर्ष में गंगा जी के किनारे पर तपश्चर्या कर के महर्षों लोगों ने जैसी भारत में सभ्यता फैलाई उस ही समान युरोप की सभ्यता नाईल नदी के पवित्र तीर्थ से हुयी । इस नदी के पवित्र जल में पापिरस नाम को एक वनस्पति पैदा हुवा करती थी इस ही से पुराण इजिप्शोयन लोगों ने कागज बनाया था । इस पापिरस कागज के ही इजिप्त के अतिप्राचीन ग्रन्थ बने हैं। इन लोगों का सुप्रसिद्ध पुराण ग्रन्थ मृत लोगों का ग्रन्थ (Book of the Dead) पापिरस पर ही लिखा गया है वेदों से भी यह ग्रन्थ अति प्राचीन है ऐसा पाश्चात्य पंडितों का कथन है । सत्य निर्णय कठीण है । यह बात सत्य है कि यह मृत लोगों का ग्रन्थ इन लोगों का गरुड़ पुराण था । पापिरस का बनाना और सम्पूर्ण वाणिज्याधिकार (monopoly) केवल इन लोगों के ही हाथ में था करके	अपनी सम्पूर्ण पुस्तकें पार्चमेंट चमड़े के ऊपर लिखवाई । यह बात ईसा के पहले २८०८ वर्ष की है । पार्चमेंट शब्द परगामम् शब्द से निकला है । परगामम् से परगामेंट और परगामेंट से पार्चमेंट बना है । अमरीका के रक्तवर्ण असभ्य इंडियन लिखने के काम में चमड़े का उपयोग अति प्राचीन काल से करते आये हैं । इनकी मनोहर चित्रलिपि और चित्र बड़े आह्लादकारक हैं। इनके चमड़े के ग्रन्थ चित्रविचित्र अक्षरों में लिखे हुए हैं। हिब्रयू भाषा की अति प्राचीन पुस्तकें भी चमड़े पर लिखी हुई हैं । सबसे पहले कागज का आविष्कार चीन वालों ने किया । १३७२ ई० में चीन में कागज़ बनना शुरू हो गया था । विद्वानों का मत है कि भारत में कागज चीन से ही आया । यूरोप के कागज का प्रचार ईजिप्ट से हुआ । गंगा के किनारे तपश्चर्या करने वाले महर्षियों ने जैसे भारत में सभ्यता फैलाई वैसे ही नील नदीके पवित्र तटसे यूरोपमें सभ्यता फैली इस नदी के जल में पापिरस नाम की एक वनस्पति पैदा होती थी। इसी से ईजिप्ट के निवासियों ने कागज बनाया । ईजिप्ट के अतिप्रचीन ग्रन्थ इसी पापिरस कागज पर हैं। इनका सुप्रसिद्ध पुराण मृत मनुष्यों का ग्रन्थ (Book of theDead) पापिरस पर ही लिखा हुआ था । यह ग्रन्थ इन लोगों का गरुड़ पुराण है ।

मूल	संशोधित
ही परगामम् में इन लोगों ने कागज भेजा नहीं। इस पापी रस से ही अंगरेजी पेपर (Paper) शब्द बना है। खिस्त शास्त्र का बैबल (Bible) शब्द भी इजिप्शियन के बिब्लस (Byblas) नाम के वनस्पती से आता है। यह एक आश्चर्य है। जगत की सभ्यता कागज, शाई कलम लेखणी तक आ गई। बस इस ही समय में ग्रन्थ पिता से पुस्तक पुत्र इस जगत में अवतीर्ण हुआ। यहां पर पुस्तक जन्म का इतिहास खतम हो गया। इस ही बालक ने सरस्वती युग आरंभ किया। यहां पर हम 'श्रीगणेशायनमः' करते हैं। अभी तक जिस उत्क्रमण (Evolution) का वर्णन किया उसका सारांश यह है कि प्रारम्भ में मनुष्य के बुद्धिविकास के कारण विचार प्रकट करने की भाषा व्यतिरिक्त साधन की आवश्यकता हुयी और तन्निवारणार्थ स्मृति ग्रन्थ, स्मृति ग्रन्थों से शीला, इष्टिका, लकड़ी, धातू, पत्रे, चमड़ा, कागज आदि के ग्रन्थ बन गये। इन ग्रन्थों पर धातू, शीला, लकड़ी, अम्ल, रंग, शाई, लेखणी आदि साधनों से लिखा गया। जगत की भिन्न भिन्न लीपी चित्र लीपी से निकल कर उनको प्रचलित स्वरूप प्राप्त हुआ। पुस्तकों का जन्म भी इन प्राचीन ग्रन्थों से हुआ। मैंने ग्रन्थ की व्याख्या ऊपर दे दियी है उससे और उपरि लिखित विस्तार से पुस्तक की व्याख्या पाठकों के ध्यान में आ गई होगी परन्तु विद्वान लोगों के कियी हुयी व्याख्या देना उचित समझ कर नीचे लिखता हूँ:— १—बेबर साहब की व्याख्या पुस्तक उसको कहना चाहिये कि जिसमें अनेक कागज या तत्समान दूसरे लिखित, मुद्रित या अन्य पत्रों को बांधकर संग्रह हो, सामान्यतः नियमित आकार देकर बांधे हुए लिखित वा मुद्रित पत्रों की क्रमशः ग्रथित कियी हुयी जिल्द। २—पुस्तक की विशिष्ट व्याख्या शास्त्रीयः वाङ्मयात्मक विचार परम्परा कायमर खकर लिखे हुए विस्तीर्ण लेख की जिल्द जो कि छोटी छोटी पत्रिकाओं से भिन्न हो।	पापिरस कागज ईजिप्ट ही में बनता था। सम्पूर्ण पश्चिमी वाणिज्य भी इन्हीं लोगों के हाथ में था। इसी से इन लोगों की इच्छा के विरुद्ध परगामम् में कागज न पहुँच सका। इस पापिरस से ही अंगरेजी शब्द पेपर बना है।

मूल	संशोधित
3 Standard Dictionary में कियी हुयी व्याख्या १ सामान्य— अनेक कागजके पृष्ट जो एकत्रित या ग्रथित, किंवा लिखे या छापे गये हों। २ Copyright Law के अनुसार जिस वस्तू से विचार या बुद्धिमत्ता प्रकट होती हो फिर वो वस्तु भाषा, गद्य में हो—उसको पुस्तक कहना। ४ प्रचलित व्याख्या: वाङ्मयात्मक जिसको कि साहित्य में स्थान मिले–एक विषय के उपर विचार परंपरा बिना छोड़े जिल्द के स्वरूप में मुद्रित किया हुवा जो विस्तीर्ण लेख हो उसको पुस्तक कहना। ग्रन्थालय की व्याख्या ज्ञानवृद्धि करने के लिये ग्रन्थों का तथा पुस्तकों का चिरस्थायिक संग्रह जिस स्थान में हो उसको ग्रन्थालय कहते है। और जिस स्थान में उपरि निर्दिष्ट विचार से केवल पुस्तकें रखी जाती है उसको पुस्तकालय कहना। प्रकाशक या विक्रय करने वालों के दुकानों में पुस्तकें चिरस्थायिक नहीं होतीं उसका मूल उद्देश प्रथम अर्थार्जन और पश्चात् ज्ञानवृद्धि–ज्ञानप्रसार है करके उनको ग्रन्थालय या पुस्तकालय नहीं कह सकते। पुस्तकालय या ग्रन्थालय केवल ज्ञान प्रसारार्थ है। पांडुरंग खानखोजे	संसार की सभ्यता की वृद्धि कागज, स्याही और कलम ने जितनी की है उतनी और किसी बात ने नहीं। यादि लिखने के ये साधन प्राप्त न होते तो संसार का इतिहास आज कुछ और ही तरह का होता। पाण्डुरङ्ग खानखोजे (कारनवालिस, अमरीका)

परिशिष्ट ४

(क)

केरल कोकिल पुस्तक १६वें १९०२—विषयानुक्रमणिका

(ख)

महाराष्ट्र कोकिल

दात्यूहा: सरसं रसंतु सुभगं गायन्तु केकामृत: ।
कादम्बा: कलमालपन्तु मधुरं कूजन्तु कोयष्टय: ॥
दैवाद्या वद सौरसाल विटपिच्छायामनासादयन ।
निर्विण्ण: कुटजेषु कोकिल युवा संजात मौनव्रत: ॥

पुस्तक १ लें	मे सन् १८६२	अंक ११ वां

विषयानुक्रम

(ग)

प्रवासी

द्वितीय भाग, नवम्-संख्या पौष १३०६

[सम्पादक—रामानन्द चट्टोपाध्याय एम० ए०]

(घ)

मर्यादा

भाग २, खंड २, संख्या २, मई, १९११ ई०

(ङ)

प्रभा

वर्ष ३, खंड १, संख्या १ जनवरी, १६२२.

(च)

माधुरी

वर्ष २, खंड ६, सं० १, माघ, ३०० तु० सं०

मनुष्य अमर हो सकते हैं, ४. रेडियो द्वारा शिक्षा, ५. मस्तिष्क मन्दिर—रमेशप्रसाद

२३. महिला-मनोरंजन—१. विश्वभारती में नारी विभाग २. स्त्रियों का द्रव्योपार्जन, ३. विधवा-विवाह-सहायक सभा, ४. महिला कार्य-कारिणी परिषद् ५. कन्या गुरुकुल, ६ पार्लियामेंट में स्त्रियां, ७. स्त्री क्या है, ८. नारी।

२४. पुस्तक-परिचय

२५. नायिका (रंगीन चित्र)

२६. साहित्य-सूचना

२७. विविध विषय—१. माधुरी पुरस्कार २. चतुर्दश हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, ३, कवि-सम्मेलन, ४. भारत में खनिज सामग्री, ५. साहित्य-दर्पण की एक सुन्दर टीका, ६. बायस्कोप के अभिनेताओं की आमदनी, ७ एक लिपि का प्रश्न, ८. केनिया की समस्या, ९. महापुरुष लेनिन का देहान्त, १०. महात्मा जी का कारा से छुटकारा, ११. चतुर्दश हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रस्ताव, १२. बम्बई की विकट हड़ताल, १३. डा० उडरो विल्सन की मृत्यु, १४. भारत में रुई और कपड़ा, १५. ग्राम सुधार समस्या, १६. हिन्दुओं के मन्दिरों और पवित्र स्थानों की रक्षा, १७. कौंसिल में हिन्दी का अपमान, १८. बाजपेई जी का स्मारक, १९. हिन्दू जाति का क्षय रोग, २०. भारत में अविद्या और निर्धनता, २१. हिन्दू महासभा का संतोषजनक निर्णय, २२. बंगाल का हिन्दू मुस्लिम ऐक्ट।

२८ चित्र-चर्चा

(छ)
चांद

वर्ष २, खंड २, संवत् ४, अगस्त, १९२४ ई०

१. भक्ति-विनय (कविता) — वैद्यनाथ जी विह्वल

२. सम्पादकीय बिचार—खत्री कांफरेंस, अमेरिका के राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियां, संरक्षण-गृह, वर्तमान स्थिति और परदा

३. उस पार (कविता) — महादेवी वर्मा

४. संकल्प (कहानी) — चंडी प्रसाद हृदयेश

(জ)

The Modern Review

Volume 1 Number 1

A monthly Review and Miscellany Edited by

Ramanand Chatterjee.

Jan, 1907

Contents

List of Illustrations

सहायक-पुस्तक-सूची

English Books[1]

1. Criticism in the making — Cazamian
2. Essays and Essayists — Walker
3. History of Sanskrit Literature — Keith
4. History of Sanskrit Poetics — Kane
5. Indian Press; History of the growth of public opinion in India — Barns
6. Introduction to Indian Textual Criticism — Katre
7. Journalism — Clarke
8. Living by the pen — Hunt
9. Methods and Materials of Literary Criticism — Cayley and others
10. Principles of Literary Criticism — Abercrombie
11. ,, ,, ,, — Richards
12. (The) Principles of criticism — W. B. Worsfold
13. Representative Essays — Dunn and Jha
14. Sanskrit Poetics — S. K. De
15. Some Aspects of Literary Criticism in Sanskrit — A. Sankaran

---

१. प्रस्तुत सहायक ग्रन्थ-सूची समाप्त नहीं है। 'हिन्दीके निर्माता', 'भारतीभूषण', 'साकेत' आदि बहुसंख्यक ग्रन्थ इसमें परिगणित नहीं हो सके हैं। भूमिका में वर्णित सामग्री का भी यहां उल्लेख नहीं हुआ। द्विवेदी जी की रचनाओं की सूची वर्णानुक्रमसे 'परिशिष्ट २' में अलग से दी गई है। अतः उसका भी पुनः परिगणन निष्प्रयोजन समझा गया। इस सूची में उन्हीं ग्रन्थों को स्थान दिया गया है जो प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रणयन में विशेष सहायक हुए हैं।

16. Studies in Dhwanyaloka — P. S. Pattar
17. Modern Review

संस्कृत-पुस्तकें

१. अभिनवभारती — अभिनवगुप्त
२. ऋतुसंहार — कालिदास
३. कविकंठाभरण — क्षेमेन्द्र
४. कादम्बरी — बाणभट्ट
५. काव्यप्रकाश — मम्मट
६. काव्यमीमांसा — राजशेखर
७. काव्यादर्श — दंडी
८ काव्यालंकार — भामह
६ काव्यालंकारसूत्र — वामन
१०. किरातार्जुनीय — भारवि
११. कुमारसम्भव — कालिदास
१२. गीतगोविन्द — जयदेव
१३. चंडीशतक — बाणभट्ट
१४. चित्रमीमांसा — अप्पय दीक्षित
१५ चित्रमीमांसाखंडन — पंडितराज जगन्नाथ
१६, दशकुमारचरित — दंडी
१७. दशरूपक — धनंजय
१८. ध्वन्यालोक — आनन्दवर्द्धन
१६. ध्वन्यालोकलोचन — अभिनवगुप्त
[पट्टाभिराम शास्त्री की टीका सहित चौखम्बा संस्कृत सिरीज़, १६४० ई०]
२०. नैषधीयचरित — श्रीहर्ष
२१. भर्तृहरिशतक — भर्तृहरि
२२. भामिनीविलास — पंडितराज जगन्नाथ
२३. महिम्नस्तोत्र — पुष्पदन्ताचार्य
२४. मालतीमाधव — भवभूति
२५. रघुवंश — कालिदास
२६. रसगंगाधर — पंडितराज जगन्नाथ
[मथुरानाथ शास्त्री की टीका के सहित निर्णयसागर प्रेस, १६३६ ई०]
२७. व्यक्तिविवेक — महिमभट्ट
२८. साहित्यदर्पण — विश्वनाथ
२६. सूर्यशतक — मयूर
३०. शिशुपालवध — माघ
३१. हर्षचरित — बाणभट्ट

हिन्दी-पुस्तकें

१. आचार्य रामचन्द्र-शुक्ल — शिवनाथ एम० ए०
२. आधुनिक कवि — महादेवी वर्मा
३. आधुनिक कवि — सुमित्रानन्दन पन्त
४. आधुनिक कवि — रामकुमार वर्मा
५. आधुनिक कवि — गोपालशरण सिंह
६. आधुनिक काव्यधारा — डा० केसरीनारायण शुक्ल
७. आधुनिक हिन्दी साहित्य — डा० वार्ष्णेय
८ आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास — कृष्ण शंकर शुक्ल एम० ए०
६. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास — डा० श्रीकृष्ण लाल
१० आलोचनादर्श — डा० रसाल
११. काव्यकल्पद्रुम — कन्हैया लाल पोद्दार
१२. काव्य में अभिव्यंजनावाद — लक्ष्मी नारायण-सिंह सुधांशु

१३. गुप्त जी की कला– सत्येन्द्र
१४. गुप्त जी की काव्यधारा–गिरीश
१५. चिन्तामणि रामचन्द्र शुक्ल
१६. जायसीग्रन्थावली ,,
१७. तुलसीग्रन्थावली ,,
१८. त्रिवेणी ,,
१९. देव और बिहारी-कृष्णबिहारी मिश्र
२० द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ संकलन
२१. द्विवेदी-मीमांसा प्रेम नारायण टंडन
२२. नवयुगकाव्यविमर्ष ज्योतिप्रसाद निर्मल
२३. नवरस गुलाब राय
२४. निबन्धकला राजेन्द्र सिंह
२५. पत्र और पत्रकार कमलापति शास्त्री और पुरुषोतम दास टंडन
२६. पत्रकारकला विष्णुदत्त
२७. पत्रसम्पादनकला नन्दकुमार देव
२८. प्रसाद जी के दो-नाटक कृष्णानन्द गुप्त
२९. प्रियप्रवास हरिऔध
३०. प्रेमचन्द की-उपन्यासकला द्विज
३१. बिहारी और देव कृष्णबिहारी मिश्र
३२. बिहारी की सतसई पद्मसिंह शर्मा
३३. बिहारी-रत्नाकर जगन्नाथदास रत्नाकर
३४. भारतेन्दु-हरिश्चन्द्र श्यामसुन्दर दास
३५. भारतेन्दु-युग डा० रामविलास शर्मा
३६. भ्रमरगीत-सार रामचन्द्र शुक्ल
३७. महाकवि हरिऔध गिरीश
३८. मिश्रबन्धु-विनोद मिश्रबन्धु
३९. रूपक-रहस्य श्यामसुन्दर दास और बड़थ्वाल
४०. वाङ्मयविमर्श विश्वनाथप्रसाद मिश्र
४१. विश्वसाहित्य बख्शी
४२. साहियालोचन श्यामसुन्दर दास
४३. साकेत–एक अध्ययन नगेन्द्र
४४ हिन्दी-गद्यगाथा सद्गुरुशरण अवस्थी
४५. हिन्दीगद्य का-निर्माण लक्ष्मीधर वाजपेयी
४६. हिन्दीगद्य का-विकास रमाकान्त त्रिपाठी
४७. हिन्दीगद्यशैली का-विकास जगन्नाथप्रसाद शर्मा
४८. हिन्दी नवरत्न मिश्रबन्धु
४९. हिन्दी भाषा-और साहित्य श्यामसुन्दरदास
५० हिन्दी भाषा और-साहित्य का विकास हरिऔध
५१. हिन्दी भाषा के-सामयिक पत्रों का-इतिहास राधाकृष्ण दास
५२. हिन्दी-व्याकरण कामताप्रसाद गुरु
५३. हिन्दी साहित्य-का इतिहास रामचन्द्र शुक्ल
[संशोधित और प्रवर्द्धित संस्करण, सं १९९७]
५४. हिन्दी साहित्य-की भूमिका हजारी प्रसाद द्विवेदी
५५. हिन्दी-साहित्य-बीसवीं शताब्दी नन्ददुलारे बाजपेयी

पत्र-पत्रिकाएँ

१.	आज	२३.	युगान्त
२.	आनन्दकादम्बिनी	२४.	रसिकवाटिका
३.	इन्दु	२५.	रसिकरहस्य
४.	उपन्यास	२६.	लक्ष्मी
५.	कमला	२७.	विशालभारत
६.	कविवचनसुधा	२८.	विश्वमित्र
७.	केरलकोकिल	२९.	वीणा
८.	चांद	३०.	वेंकटेश्वरसमाचार
९.	छत्तीसगढ़मित्र	३१.	संस्कृतचन्द्रिका
१०.	जासूस	३२.	समालोचक
११.	नागरीप्रचारिणी पत्रिका	३३.	सम्मेलनपत्रिका
१२.	परोपकारी	३४.	सरस्वती
१३.	प्रभा	३५.	साहित्यसन्देश
१४.	प्रवासी	३६.	सुकवि
१५.	बालक	३७.	सुदर्शन
१६.	ब्राह्मण	३८.	सुधा
१७.	भारत	३९.	सुधानिधि
१८.	भारतमित्र	४०.	हंस
१९.	भारतेन्दु	४१.	हरिश्चन्द्रचन्द्रिका
२०.	मर्यादा	४२.	हरिश्चन्द्रमैगज़ीन
२१.	महाराष्ट्रकोकिल	४३.	हिन्दीप्रदीप
२२.	माधुरी	४४.	हिन्दीवंगवासी

नामानुक्रमणिका*

रचनाकार—

---

*पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' का नाम इस ग्रन्थ में इतनी बार आया है कि अनुक्रमणिका में उनका उल्लेख सर्वथा अनपेक्षित है।

रचनाएँ और संस्थाएँ—



शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पैंशन	पेन्शन	१	४
मांहि·	चाहि	१	१६
एशोसियेशन	एसोशिएशन	३	६
वाध्य	बाध्य	५	४
१८७५	१८५७	८	१४
मद्यपान	मद्यपान आदि पर	९	५
Market	Molakat	९	२९
Baba	Bahar	९	३१
रागनियों	रागिनियां	१२	९
मूर्तिमता	मूर्तिमत्ता	१२	१४
प्रमघन	प्रेमघन	१२	२३
में	×	१३	४
मुक्तकां	मुक्तकों	१३	११
चीर	चौर	१६	१५
कहानियां	कहानियों	१८	२२
शैक्सपियर	शेक्सपियर	१९	८
कुप्रभाओं	कुप्रभावों	१९	२८
कारंण	कारक	२०	१
हैं	है	२०	१
स्वागत	स्वगत	२०	६
पत्रानुसार	पात्रानुसार	२०	६
देवी	दैवी	२०	१७
षडयन्त्र	षड्यन्त्र	२०	१८
सतसैवा	सतसैया	२१	७
साहित्यक	साहित्यिक	२१	१२
आनन्द	आनँद	२३	२५
कार्य	कार्य	२५	६
कावपामृत	काव्यामृत	२५	२५
पश्मिोत्तर	पश्चिमोत्तर	२६	२३
	को	३१	८
चिन्तनीय विषयां के विषयानुकूल	चिन्तनीय विषयों के विवेचन में संस्कृत पदावली का प्रयोग हुआ है। नाटकों में प्रयुक्त प्रसन्न गद्य विषयानुकूल	३१	२८
की	को	३४	११

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
बलर्क	क्लर्क	३६·	८
भई	मई	४३	२
के	से	४७	२५
में	ने	५०	१५
की	को	७४	२२
सवास्थ्य	स्वास्थ्य	७५	७
करते	कराते	८१	८
स्नातकर्वन्धुमता	स्नातकैर्ब···	८१	१८
मार्जणा:	मार्गणा:	८२	२०
प्राइमारी	प्राइमरी	८६	१६
शरीर	शरीरं	९३	२०
सविस्वास	सविश्वास	९५	२०
अप्रस्तुन	अप्रस्तुत	९८	६
वर्णाभरण	वर्णाभरणा	१०२.	२
वर्षरोन	कर्षरोन	१०२	१७
गुजेरीस्तन	गुर्जरीस्तन	१०३	२१
प्रधनता	प्रधानता	१०५	२४
प्रबन्ध मुक्तकां	(प्रबन्ध-मुक्तकों)	१०६	३
मिश्र छन्दोमय	मिश्रछन्दोमय	१०७	३
हार्नाली	हार्नली	११४	३१
काव्य-	काव्या-	११७ पा० टि०	१
नाटकार	नाटककार	११९	३२
आलचनाओं	आलोचनाओं	१२०	१०
,,	सरस्वती	१२६ पा० टि०	१
वर्ता	कर्त्ता	१३०	१६
‘आलोचक	आलोचक	१३२	९
रच	रचना	१३२	९
अध्ययन	अनध्ययन	१३५	११
आलोच	आलोचना	१३५	३०
पूर्णतय	पूर्णतया	१३६	२२
भाव	भव	१५६	२१
क	की	१५९	२५
साहित्यक	साहित्यिक	१६०	२
वारनिश	वारनिश	१७९	१२
सांड	साँड़	१८०	११

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पत्रपठं	पत्रपठन	१८१	१५
'पड़ेगा',	'पड़ेगा'	१६२	१८
'विज्ञानी'	'विज्ञानी'	२११	१६
प्रत्यत्न	प्रत्यय	२१२	१२
गुरू	गुरु	२५१	१
··· त्यग	···त्यग	२५१	१४
भक्तयेव	भक्त्यैव	२५४	२
प्रख्यार्पितगुणै:	प्रख्यार्पितैर्गुणैः	२५५	७
भिखारिण	भिखारिणी	२६२	१६
कबरिहा	यकरिहा	२६७	२७
वाङ्मय	वाङ्मय	२६८	६
के	में	२७३	८
तैलीम	तेली	२७४	२६
मूर्त	मूर्त्त	२७६	१७
हर्षचरित्र	हर्षचरित	२८४	१२
कर	शर	२८६	७
जा	जग	२६६	२७
शान	शान	२६६	२८
अन्धेरा	अन्धेर	२६६	३०
घर घर	घर घर	२६८	६
के	में	३०१	३१
क्रान्तितारी	क्रान्तिकारी	३०२	६
ग्रहस्थ···बने थे	गृहस्थ···बने हुए थे	३०४	१
सर्राटे	सराटे	३०७	१६
दर्शना	दर्शन	३०८	२५
विभिन्न	विपन्न	३१३	३
सहित्यिक	साहित्यिक	३१३	३
कथोद्धात	कथोद्घात	३१३	१३
'कृष्णार्जुन'	'कृष्णार्जुनयुद्ध'	३१३	२७
चुँगी	चुंगी	३१४	१५
गीत	गीति	३१५	६
प्रकार	प्रकार क	३१६	१४
रायकृष्ण	रामकृष्ण	३१७	८
पेरणा	प्रेरणा	३१७	१०
जात	जगत	३१६	१३
नाटकी	नाटकीय	३२०	११
दैनन्दनी	दैनन्दिनी	३२०	१४
योग	प्रयोग	३२०	१
शर्मा	वमा	३२०	११
उर्वसी	उर्वशी	३२१	८
प्रसस्त	प्रशस्त	३२२	१५
आर्श्य	आश्चर्य	३२३	७
बलात्मक	कलात्मक	३२४	२
चैतन्य	चेतन	३२५	१
अरोप	आरोप	३२५	१
सामंजम	समंजम	३२५	१८
अर्न्तगत	अन्तर्जगत्	३२५	२२
आकर्षण	आकर्षक	३२६	६
आत्मराम'	'आत्माराम'	३२६	१६
काउसका	का	३२६	२१
काव्यात्मकी	काव्यात्मक	३२७	६
सरीख	सरीखी	३२७	१२
उप	उपधा	३३१	५
निबन्ध	निर्बन्ध	३३१	१३
अक्षेप	आक्षेप	३३४	२२
शैली	इस शैली	३३६	१२
कोष्टक	कोष्ठक	३३६	१४
१६ ई०	१६०१ ई०	३३७	१५
साहित्यकार	साधिकार	३३७	१८
चिन्तनाजनक	चिन्तनात्मक	३३६	२१
''इन	इन	३४०	८
उसका	उसका नायक	३४०	१३
भीड़	मींड़	३४०	२०
दसरूपक	दशरूपक	३४१	१२
काव्यमय	काव्य में	३४२	४
भी	भाव	३४२	२७
मो	मा	३४३	२६
पद्म कोपा	पद्मकोषा	३४३	२७

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
नन्द दिवाकेरण	नन्ददिवाकरेण	३४३	२८
प्रशांत्मक	प्रशंसात्मक	३४६	३
तिदशन	निदर्शन	३४७	२१
अनाहिरता	अनस्थिरता	३४७	२७
की	को	३५०	१
तदन्त्र	तदनन्तर	३५१	२२
अवश्यमात्र	अवयवमात्र	३५२	१७
आलचोक	आलोचक	३५४	२०
ही	कुछ ही	३५५	१३
वाले	वाले कर्म	३५६	१८
अर्न्तदृष्टि	अन्तर्दृष्टि	३५८	६
भारतीयपि	भारतीय	३५८	८
विविधि	विविध	३५८	१४
अप्रस्तु	अप्रस्तुत	३५८	२४
भ्रमरगीता	भ्रमरगीत	३५६	३१
तावरो	तौंवरो	३५८	२७
भाषाओं	अन्य भाषाओं	३६०	२४
अन्य		३६०	२५
आलोचनां	आलोचनाओं	३६२	२७
आवश्क	आवश्यक	३६३	२४
तत्त्वत:	तत्वत:	३६४	१६
प्रचीन	प्राचीन	३६८	२४
भोम	भौम	३६८	२५
१ ,,	१ मंडल	३७३	१
४६७	४६४	३७४	१४
सरोजनी	सरोजिनी	३७५	५
की	को	३७६	२८
की	को	३८०	३
प्रकार	प्रचार	३८१	३२
हिन्दूभाषा	हिब्रू भाषा	३८१	३४
इसको	इस	३८६	३१
आसारिया	असीरिया	३८६	३५
भाडगावं	माड़गावं	३८८	१५
तांबे	टुकड़ों	३८६	३२
उत्तीर्ण	उत्कीर्ण	३६०	५
त्रस	त्रश	३६०	११
विचत्र	विचित्र	३६३	१३
प्रन्चीन	प्राचीन	३६३	३०
याद	यदि	३६५	२८
केश	केस	४००	१
माहियालोचन	साहित्यालोचन	४०८	६
कृष्णविहारी मिश्र	लाला भगवान दीन	४०८	२३